ISSN 2321-4945

UGC CARE LIST approved Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 7/8 ● अक्टूबर/नवंबर, 2022

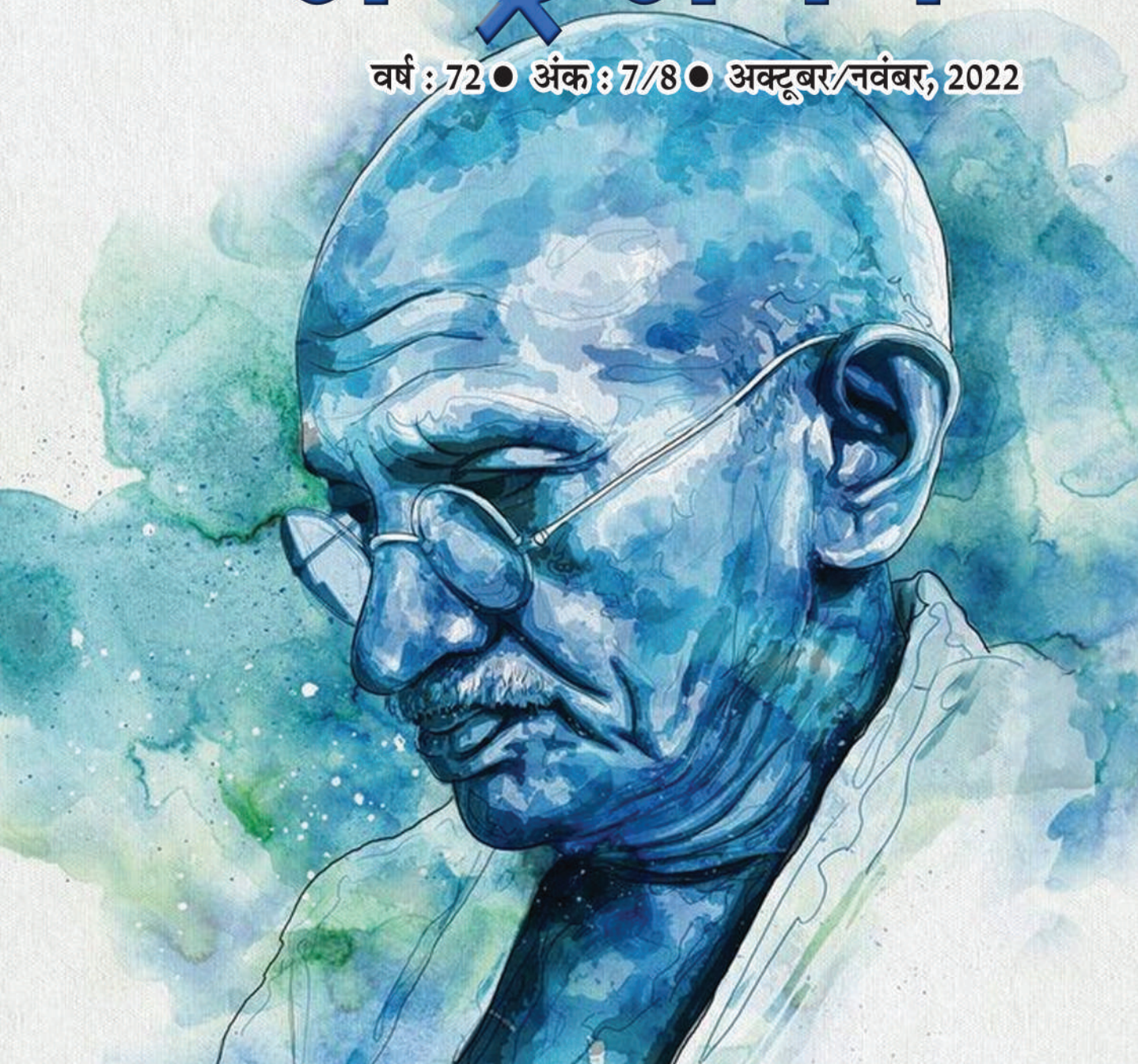

समिति के 84वें स्थापना दिवस समारोह की एक झलक

मंच पर आसीन समिति के कोषाध्यक्ष श्री प्रफुल्ल चंद्र बरा, असम पाठ्यपुस्तक निर्माण एवं प्रकाशन निगम के प्रबंध निदेशक श्री शाहनवाज चौधरी, उच्च शिक्षा शोध संस्थान, चेन्नई के कुल सचिव प्रो. प्रदीप के शर्मा, असम के पूर्व शिक्षा मंत्री एवं माननीय विधायक श्री सिद्धार्थ भट्टाचार्य, समिति के कार्याध्यक्ष श्री भारत भूषण महंत, उपाध्यक्ष डॉ. अंजलि काकति और मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया (क्रमशः बायें से दायें)।

समारोह में उपस्थित अतिथिगण, हिंदी प्रचारक, शिक्षक और विद्यार्थी।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Research Journal

वर्ष : 72 अंक : 7/8 अक्टूबर/नवंबर-2022

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

मूल्य : रु. 50/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्टियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

हिंदी विभाग

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संपादकीय		4
1.	नित्य, सत्य हैं गाँधी	✍ डॉ. सुनील देवधर	5
2.	बहुमुख प्रज्ञावान : गाँधीजी	✍ के.एन.एल.वी. कृष्णवेणी	9
3.	गाँधीमार्ग के साधक 'अनुपम' पर्यावरणविद्	✍ श्रुति	15
4.	भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचना की सौंदर्य-दृष्टि : परस्पर प्रभाव	✍ डॉ. सोनू जेसवानी	19
5.	समकालीन हिंदी उपन्यासकार मृदुला गर्ग और असमीया उपन्यासकार अनुराधा शर्मा पुजारी के उपन्यासों में चित्रित नारी चेतना	✍ जया गोगोई	24
6.	रघुवीर सिंह 'अरविन्द' की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ	✍ राजू सिंह	29
7.	मोहन राकेश के नाटकों में चित्रांकित स्त्री-पुरुष संबंध : एक अध्ययन	✍ संगीता कुमारी पासी	35
8.	हिंदी कहानियों में हास्य-व्यंग्य के स्वरूप	✍ अर्जुन पासवान/ ✍ डॉ. कुसुम कुंज मालाकर	41
9.	छायावाद और नवगीत	✍ सुनील साहनी	46
10.	भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' : एक समीक्षात्मक अध्ययन	✍ डॉ. संजीव मंडल	52
11.	भारतीय सामाजिक व्यवस्था और आधुनिक स्त्री (21वीं सदी की कहानियों के संदर्भ में)	✍ दीपक कुमार मिश्र	58
12.	भारतीय मूल्य और संस्कृति के व्यामोह में भटका प्रवासी स्त्री जीवन (उमा प्रियंवदा के उपन्यासों के संदर्भ में)	✍ चंचल मेहरा	64
13.	श्रीगुरुनानक देव जी का चिंतन और दार्शनिक विचार	✍ डॉ. अमित कुमार सिंह कुशवाहा	69
14.	कविता (बालपन)	✍ रघुनंदन महापात्र	73

অসমীয়া বিভাগ

14.	ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা	✍ ড° পল্লৱিকা শর্মা	74
15.	লোকনাট্যানুষ্ঠান 'কুশান গান' ঃ পৰম্পৰা আৰু পৰিৱর্তন	✍ ড° গোবিন্দ বৈশ্য	81
16.	বড়োসকলৰ খেৰাই উৎসৱ আৰু ইয়াৰ ধর্মীয় তথা সামাজিক তাৎপর্য্য ঃ এক অৱলোকন	✍ বনশ্রী ভাৰদ্বাজ/ ✍ ড° পল্লবী বৰা	86
17.	ভাৰতীয় ধ্রুপদী ভাষা ঃ এক চমু বিশ্লেষণ	✍ ফেঞ্চী চুতীয়া	93
18.	ভাসৰ কাল্পনিক নাটক 'অবিমাৰক' আৰু 'চাৰুদত্ত'ৰ প্রাকৃতভাষী নাৰী চৰিত্র ঃ এক অধ্যয়ন	✍ দীপামণি বৈশ্য	99
19.	অসমৰ টাই ফাকেসকলৰ লোকগীতৰ এক পৰিচয়মূলক আলোচনা	✍ ৰেবিকা হাজৰিকা/ ✍ ড° দিলীপ ৰাজবংশী	105

संपादकीय

गाँधी और हिंदी

दो अक्टूबर को देशभर में गाँधी जयंती मनाई जाती है। एक दिन किसी सामान्य घटना की तरह ही एक व्यक्ति हमारे बीच जन्म लेता है। देखते-देखते किसी असामान्य घटना की तरह समष्टि में बदल जाता है। उसका प्रभामंडल देश की सीमा ही नहीं वरन् काल की गति को भी हैरत में डालते हुए प्रत्येक सीमा का अतिक्रमण करके आगे निकल जाता है। वह किसी एक देश की सीमा में नहीं रहता। पूरी दुनिया का हो जाता है। वह किसी एक कालखंड में नहीं बँधता बल्कि आने वाले समूचे समय को बाँध लेता है। यह मोहपाश है उस व्यक्ति का, जो अपने दर्शन, चिंतन और जीवन की त्रयी पर खड़ा किसी महात्मा सरीखी दिव्य आभा में हमें दिखाई देता है। अहिंसा उसकी विरासत है। सत्य उसका दर्शन है और कर्म उसका जीवन। इस तरह से सूत के कच्चे सिरों को जोड़ते हुए गाँधी कुछ जोड़ते हुए चले जाते हैं। जन को, मन को, जीवन को, भाव को और यहाँ तक कि विचार को भी। उनके इस जोड़ने में एक सपना जाग रहा होता है। यह सपना खुली आँखों का है। यह संगठित भारत का सपना था। एक ऐसा भारत, जहाँ सैकड़ों धाराएँ मिलकर साथ-साथ बह रही हों। तमाम जातिगत, वर्गगत, पूँजीगत और भाषाई अवरोधों को तोड़ते हुए। उनको एक ऐसे भारत की कल्पना थी, जो एकजुट, अखंड और अविभाज्य हो। इस स्वप्न को सत्य में बदलने की सबसे प्रभावी युक्ति उनको भाषा के रूप में मिली। एक ऐसी भाषा, जो सबको राष्ट्रीयता के एक मजबूत सूत्र में पिरो सके। राष्ट्र को अखंडता में बाँधने वाले दो प्रतीक उन्होंने चुने - खादी और हिंदी।

'राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी' में महात्मा गाँधी लिखते हैं, ''समूचे हिंदुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको हमारी भाषाओं में से एक ऐसी जबान की जरूरत है, जिसे अधिक से अधिक संख्या में लोग जानते और बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। इसमें कोई शक नहीं कि हिंदी ही ऐसी भाषा है।'' महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा के लिए बहुत सोचे ढंग से 'हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया। उन्हें इस बात का पूरा अहसास था कि राष्ट्रभाषा का गौरव वही भाषा पा सकती है, जिसमें सांस्कृतिक समन्वय की क्षमता हो। जो तमाम भेदभावों को बौना करके राष्ट्रीय अखंडता स्थापित कर सके। ये तमाम संभावनाएँ उन्हें हिंदी में मिलीं। स्वराज और सपनों की छवि कागज पर उकेरते हुए उन्होंने कहा कि अगर हिंदुस्तान को राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिंदी ही बना सकती है, क्योंकि हिंदी को जो स्थान प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता। अगर स्वराज करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, दलितों व अंत्यजों को और हम सबके लिए हो तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है। महात्मा गाँधी ने 'हिंद स्वराज' में लिखा है कि, ''भारत के एकता की कड़ी में जोड़ने के लिए हिंदी ही उपयोगी भाषा है।'' आचार्य केशवचंद सेन ने महात्मा गाँधी का समर्थन करते हुए कहा कि, ''अगर हिंदी को भारत की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज में ही एकता संपन्न हो सकती है।''

महात्मा गाँधी अहिंसा में विश्वास करते थे। अहिंसा की धारणा उन्हें महात्मा बुद्ध की ओर ले जाती है। साँची (बिदिशा) में बने स्तूप को देखिए, उसमें व्यक्ति बुद्ध का कोई चित्र नहीं है। उसमें पेड़-पौधे और अन्य प्राणी हैं। बुद्ध को इसके जरिए उद्घाटित किया गया है। गाँधी के लिए अहिंसा मनुष्य का सहज स्वभाव है और हिंसा उसके ऊपर आरोपित तथ्य है। शेर जब भूखा रहता है तभी दूसरों पर झपटता है। जब उसका पेट भर जाता है तो हिरण भी चौकड़ी भरता है। महात्मा गाँधी की अहिंसा केवल मनुष्य केंद्रित नहीं है। उनकी प्रजा में जड़ और चेतन भी बसेरा करते हैं। अहिंसा ही सत्य का रूप है। यह अद्वैत आरंभ से अंत तक गाँधी के प्रयोगों में भी देखा जा सकता है।

अक्टूबर-नवंबर का यह संयुक्तांक आपको सौंपते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के लेखकों को हार्दिक धन्यवाद।

(प्रो. मोहन)

नित्य, सत्य हैं गाँधी

''मोहन से तुम हुए महात्मा, जग में अमर कहानी है,
वंदनीय है बापू तेरी गिरा, अमर कल्याणी है ।''

डॉ. सुनील देवधर

A–101 कुणाल बेलेजा,
एल. एम. डी. चौक
बावधन, पुणे – 411021
मो. 9823546592
ई-मेल : sunilkdeodhar@gmail.com

साहित्य और साहित्यकार अपने समय और समाज से प्रभावित होते हैं, यानी उस समय में उपस्थित व्यक्ति और परिस्थिति की अनुगूँज साहित्य में अवश्य सुनाई देती है। साथ ही अपने समय से आगे आकर सर्वकालिक हो जाती है।

भारतीय समाज और साहित्य को, और न केवल साहित्य को, बल्कि विचार, कला, संस्कृति, शिक्षा आदि को जिस एक व्यक्तित्व ने सर्वाधिक प्रभावित किया, वे हैं महात्मा गाँधी।

1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे तो उनके साथ वहाँ के सफल अहिंसक आंदोलन की, सत्याग्रह की शक्ति और कीर्ति साथ थी। 1909 में उन्होंने हिंद स्वराज्य लिखा था, उनका दृष्टिकोण न केवल नया था, बल्कि सर्वथा भिन्न था। अस्त्र और रणनीति नई थी, जो अंतिम व्यक्ति तक जा मिलती थी, जुड़ती थी। उन्होंने अपनी राजनीतिक स्वाधीनता के लिए सत्य और अहिंसा के साथ संघर्ष का मार्ग चुना। साथ ही समाज के लिए साधनों की शुचिता, आत्मशुद्धि, सेवा, सहनशीलता की संकल्पनाओं के साथ वे समाज मन में जा बसे। शायद यही कारण था कि केरल के मलयाली महाकवि वल्लतोल नारायण मेनन ने गाँधी के विषय में कहा, ''सारा विश्व ही उनका घर है, वृक्ष, पेड़-पौधे, कीट-पतंगे भी उनके परिवार के अंग है। त्याग ही उनकी प्राप्ति है, नम्रता में ही उनका महात्मा बसा है, ऐसे हैं मेरे ईष्ट, विलोभनीय। गाँधी जी ने शस्त्र के बिना धर्मयुद्ध जीता, ग्रंथ के बिना लोगों को शिक्षित किया और औषधी के बिना रोगियों का उपचार किया।

असमीया लेखक वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य पर महात्मा गाँधी के विचारों का व्यापक प्रभाव था। उनका विश्वास था कि ''यदि हमारा मार्ग और साधन अनुचित नही हैं तो एक-न-एक दिन अपना ध्येय और धारणा हम अवश्य प्राप्त करेंगे।'' वीरेंद्र भट्टाचार्य के उपन्यास 'मृत्युंजय' को 1979 का ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। ये उपन्यास 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन पर आधारित है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक युग की जीवंत कथा ये उपन्यास हमारे सामने रखता है।

गाँधी के व्यक्तित्व से संपूर्ण रूप से प्रभावित गुजराती के कवि उमाशंकर जोशी ने 1930 के असहयोग आंदोलन में हिस्सा लिया और जेल गए। स्वातंत्र्य प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद किसी कार्यक्रम में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था, ''आज कुछ लोग अति उत्साह में स्वतंत्रता का ही मजाक बना रहे हैं, हमने ऐन जवानी में स्वतंत्रता का मोल जाना, लेकिन आज ये स्वतंत्रता कुछ लोगों को कौड़ी दो कौड़ी की लगने लगी है। अपना पेट भरा कि बस! मनुष्य के पेट में जैसे भूख लगती है वैसे ही आत्मा की भी भूख होती है। आत्मा की भूख समाप्त होने पर मनुष्य और पशु का भेद मिट जाता है। राज्यसभा यानी वरिष्ठ सदन। 'एल्डर्स हाउस' कहते हैं उसे। कहा जाता है, न सा सभा यत्र न संति वृध्दा : न तेन वृध्दा : येन वदन्ति धर्मम् यानी जहाँ वृद्ध न हों वह सभा ही नहीं और जो सत्य से कतराते हैं वे वृद्ध ही नहीं, श्रेष्ठ ही नहीं। आज गाँधी की तरह सत्य को निर्भिकता से कहने वाले और उस पर चलने वाले कितने हैं।'' उमाशंकर जोशी जी ने अपनी कविताओं में रवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी द्वारा संरक्षित और अपेक्षित मूल्यों की संरचना की।

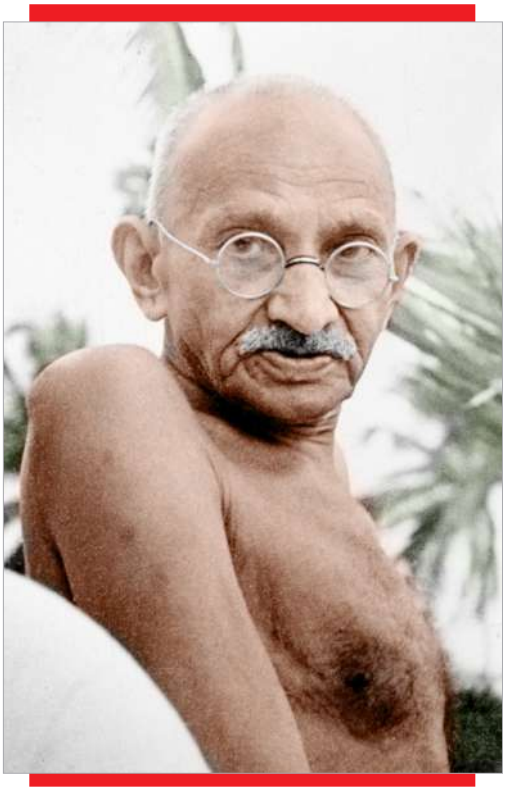

बंगला लेखक ताराशंकर बंदोपाध्याय का उपन्यास 'गणदेवता' 1942 में ही प्रकाशित हुआ। 1941-42 में भारत भी अप्रत्यक्ष रूप से ही दूसरे विश्व युद्ध में घसीटा गया था। लेकिन उसी समय हमारे भारतीय स्वाधीनता का आंदोलन भी चल रहा था। इस सारे वातावरण का प्रभाव ताराशंकर बंदोपाध्याय के मन पर हुआ और उसी व्यथा कथा का प्रतिबिंब 'गणदेवता' में झलकता है।

गाँधी जी का भारत की राजनीति में प्रवेश ऐसे समय में हुआ, जब हिंदी एक भाषा के रूप में अपना आकार ले रही थी और उसके साहित्य में लोकजीवन का सत्य अपनी जगह बना रहा था। भारतीय जनजीवन को उपनिवेश की दासता से मुक्ति के लिए एक भाषा की तलाश थी, जो संपूर्ण भारत को, उसके मन को समझ सके। और हिंदी उसकी पूर्ति कर रही थी और गाँधी सहित उस समय के लगभग सभी प्रमुख नेताओं ने स्वीकार किया कि हिंदी राष्ट्रव्यापी संपर्क भाषा के रूप में अपना कार्य कर रही है और राष्ट्रीय आंदोलन की संवाहक बनी है।

प्रेमचंद हिंदी के ऐसे कथाकार हैं, जिनकी लगभग 25 कहानियाँ प्रत्यक्ष रूप से गाँधी दर्शन एवं गाँधी आंदोलन पर आधारित हैं। प्रेमचंद ने 1916 से हिंदी में लिखना आरंभ किया। उससे पहले वे उर्दू में लिखते थे। 1920 में गाँधीजी के भाषण को सुनकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी और असहयोग आंदोलन में हिस्सा लिया। सन 1920 से लेकर 1936 तक के 16 वर्ष पूरी तरह गाँधी के प्रभाव के वर्ष थे। और यही बात प्रेमचंद को गाँधी का साहित्यिक संस्करण का दर्जा देती है। हम उन्हें गाँधी का साहित्यिक संस्करण कह सकते हैं। जो बात राजनीति के क्षेत्र में गाँधी कह रहे थे, वही बात साहित्य में प्रेमचंद कह रहे थे। उन्होंने कहा भी है, ''जितना मैं महात्मा जी को समझता था उससे कहीं ज्यादा वे मुझे मिले, उनका उद्देश्य है मजदूर और किसान सुखी हों। वे इनके लिए आंदोलन चला रहे हैं और मैं लिखकर उन्हें उत्साह दे रहा हूँ।''

उनका उपन्यास 'प्रेमाश्रम' तो पूरी तरह से गाँधीवाद का खुला बयान है, जिसमें किसान, गाँव, पश्चिमी सभ्यता, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, अस्पृश्यता, ट्रस्टीशिप के ताने-बाने हैं। कथा के पात्र प्रेमशंकर और मायाशंकर गाँधी विचार को ही प्रस्तुत करते हैं। 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक अंधा भिखारी तो गाँधी का ही प्रतीक है। 'कर्मवीर गाँधी' में प्रेमचंद ने लिखा, ''भारत में महात्मा गाँधी के पदार्पण से हमारे राष्ट्रीय जीवन में अद्भुत स्फूर्ति, सजीवता और व्यावहारिक उद्योग का विकास हुआ है।''

महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय और सामाजिक विचार प्रेमचंद के साहित्य का आधार हैं। रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान, प्रेमाश्रम जैसे उपन्यास और कहानियों में, सुहाग की साक्षी, सत्वरक्षा, मंदिर-मस्जिद, इस्तीफा, कातिल, रहस्य, ठाकुर का कुआँ जैसी कहानियाँ पाठक के मन में दासता से मुक्ति और स्वराज्य प्राप्ति का महाभाव जगाती हैं।

महाप्राण निराला का उपन्यास 'अलका का संवाद' गाँधी के स्वराज्य को ही रेखांकित करता है, जहाँ बुधवा कहता है, ''सुराज क्या है, तो मंहगू जवाब देता है, किसानों का राज। विष्णु प्रभाकर की कहानियों में गाँधी के सत्य और शुचिता को हम देख पाते हैं। इनमें 'वापसी' की चर्चा की जा सकती है। हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद के समानांतर जैनेंद्र की मूल चिंता में हैं गाँधीवादी विचार और मूल्य, जो उनके साहित्य सृजन में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। सुखदा, व्यतीत, सुनीता जैसे उपन्यासों में इसे साफ देखा जा सकता है। जैनेंद्र जी के उपन्यास 'जयवर्धन' पर गाँधी के राजनीतिक, सांस्कृतिक विचार और विमर्श का प्रभाव है।

'अकाल पुरुष गाँधी' जैनेंद्र कुमार के गाँधी पर लिखे लेखों, निबंधों और संस्मरणों का संकलन है। महात्मा गाँधी नामक लेख में वे जो लिखते हैं उससे हमारी विचार संवेदना गहरे तक हमें झकझोरती है। शब्द है, ''तब अर्थी उठी और सड़कों पर, मैदानों में जितने समा सके, आदमी साथ हुए, और उसको भस्मीभूत कर आए जो आत्मीभूत हो गया।''

उस समय जिन अन्य कथाकारों पर गाँधी विचार और दर्शन का प्रभाव दिखता है -उनमें अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल', गिरिराज किशोर का बहुचर्चित उपन्यास 'पहला गिरमिटिया', अमरकांत का 'इन्हीं हथियारों से' और रमेशचंद्र शाह का 'किस्सा गुलाम' में गाँधीवादी किरदार हैं, जो कथानक में उपस्थित हैं और पर्याप्त जगह भी घेरते हैं।

''आप जब बच्चे थे तो गाँधीजी आपके कंधे पर हाथ रखकर साबरमती आश्रम से जेल तक रोज सुबह-शाम घूमने जाते थे। आपके कंधे को गाँधी ने छुआ है उस पर गाँधी का हाथ लगा था तो उस हाथ को पकड़कर वो उस वाइब्रेशन को महसूस करना चाहता है इतना रिलेवेन्ट हैं गाँधी।''

मॉरीशस के हिंदी लेखक अभिमन्यु अनथ ने शोषण और अत्याचार के विरुद्ध भारतीयों के आंदोलन की पृष्ठभूमि पर केंद्रित उपन्यास लिखा, 'गांधीजी बोले थे'।

न केवल कथा-साहित्य, कविता में भी गाँधी उतनी ही तीव्रता से उपस्थित हैं, बल्कि कथा-साहित्य में तो प्रतीक रूप में गाँधी हैं, लेकिन कविताओं में तो सीधे गाँधी ही प्रत्यक्ष हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने 'बापू' शीर्षक से चार कविताओं का संकलन प्रकाशित किया। **''बापू ने राह बना डाली/चलना चाहे संसार चले/ डगमग होते हों पाँव अगर/तो पकड़ प्रेम का तार चले।''**

भवानी प्रसाद मिश्र ने 'गांधी पंचशती' में 500 कविताएँ लिखीं और इन कविताओं में गाँधी की करुणा, विचार, प्रेम, अहिंसा आदि सूत्रों को पिरोने का प्रयास किया। एक उदाहरण है -

है शपथ तुम्हें करुणाकर की / है शपथ तुम्हें उस नंगे की / जो भीख स्नेह की मांग मांग मर गया कि उस भिखमंगे की / हे सखा बात से नहीं / स्नेह से भरा

काम लेकर देखो / अपने अंतर में नेह, अरे, देकर देखो।

इसके अलावा सियारामशरण गुप्त की कविता 'बापू', रामनरेश त्रिपाठी की 'पथिक' पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की 'नि:शस्त्र सेनानी', बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'तुम युग परिवर्तन कालेश्वर' के अलावा सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा नंदन पंत, बच्चन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन आदि ने भी बापू पर केंद्रित कविताएँ रचीं।

निराला की कविता 'बापू यदि तुम मुर्गी खाते' अन्य कारण से भी चर्चित रही। साहिर लुधियानवी ने 1970 में गाँधीजी के शताब्दी वर्ष पर एक नज्म कही। वो गालिब की 100वीं पुण्यतिथि का भी वर्ष था।

गालिब हो कि गांधी हो
खत्म हुआ दोनों का जश्न
आओ इन्हें अब कर दें दफ्न
बन्द करो तहजीब की बातें
खत्म करो कल्चर का शोर
सत्य अहिंसा सब बकवास
तुम भी कातिल हम भी चोर
खत्म हुआ दोनों का जश्न
आओ इन्हे अब कर दें दफ्न
वो बस्ती वो गाँव ही क्या
जिनमें हरिजन हो आबाद
वो कस्बा वो शहर ही क्या
जो न बने अहमदाबाद,
खत्म हुआ दोनो का जश्न
आओ इन्हे अब कर दें दफ्न

'जिसमें हरिजन हों आबाद' में दलितों के लिए गाँधी की करुणा और शहर अहमदाबाद में सामुदायिक हिंसा पर गाँधी की चिन्ता स्पष्ट होती है।

यहाँ उस प्रसंग का उल्लेख जरूरी है कि जब उड़ीसा के किसी गाँव में कस्तुरबा किसी झोपड़ी में जा-जाकर पूछती हैं, गाँधी जी आए हैं, प्रार्थना सभा होनी हैं, आप लोग आएँगे? उत्तर मिलता है, आने की इच्छा है पर नहीं आ पाएँगे। पहनने को कपड़े नहीं हैं। कोई एक ही आ सकता है। कस्तुरबा ने गाँधी जी को बताया। कुछ बोले नहीं, पर उन दिनों के मद्रास यानी आज के चेन्नई की सभा में बहुत अटक रहे थे। दो दिन बाद मदुरै में सभा हुई तब उस सभा के लिए निकले तो लोगों ने देखा कि सारे कपड़े निकल गए थे और एक छोटी धोती आ गई थी, साफा पहनते थे वो भी छोड़ दिया था। तब उन्होंने बताया कि ''मैं मद्रास की सभा में ही सोच रहा था कि मैं लोगों से कहूँ कि सादा रहना चाहिए और खुद वैसा न रहूँ जहाँ लोगों के पास इतना दारिद्रय है कि एक कपड़ा भी नहीं, और मैं पंचपसार पहने हूँ, ये कैसे हो सकता है !'' यही प्रसंग है उनका लंगोटी नुमा धोती में आने का।

न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि समूचे भारतीय साहित्य में गाँधी के सत्ता और सत्य, सत्ता और सुख, सत्ता और सुराज, सत्ता और सत्व, सत्ता और सत्याग्रह, सत्ता और समन्वय, ग्रामचेतना, संस्कृति रक्षा, दलितोद्धार, धर्म और नीति, कर्म और प्रीती के अनेक संदर्भ हैं। ऐसा नहीं कि वे तत्कालीन थे, वे आज भी हैं। गाँधी कितने प्रासंगिक हैं, इसका एक उदाहरण नारायणभाई देसाई (गाँधी विचार और दर्शन के प्रवक्ता) सुनाते थे, ''एक्वाडोर देश के एक छोटे शहर क्वेटो में वे गाँधी के विषय में बोल रहे थे। वे अंग्रेजी में बोलते थे और दुभाषिया उसे स्पेनिश में अनुवाद करता। सभा के बाद 35-40 की उम्र का एक भाई आया और नारायणभाई का हाथ पकड़कर थैंक्यू-थैंक्यू कहता हुआ उसे छोड़ता ही न था, तब उन्होंने पूछा दुभाषिए से कि ये हाथ छोड़ता क्यूँ नहीं। तब दुभाषिए सज्जन ने कहा, आपने अपने भाषण में कहा, ''आप जब बच्चे थे तो गाँधीजी आपके कंधे पर हाथ रखकर साबरमती आश्रम से जेल तक रोज सुबह-शाम घूमने जाते थे। आपके कंधे को गाँधी ने छुआ है उस पर गाँधी का हाथ लगा था तो उस हाथ को पकड़कर वो उस वाइब्रेशन को महसूस करना चाहता है इतना रिलेवेन्ट हैं गाँधी।''

गाँधी की मृत्यु के बाद पैदा हुआ व्यक्ति, जिसने गाँधी को तो क्या, गाँधी का देश तक देखा नहीं, उस आदमी के लिए भी गाँधी कितना और कैसा अनुभूतिपरक है, आप सोचें !

जब तक सत्य है, तब तक गाँधी हैं। ❑

बहुमुख प्रज्ञावान : गाँधीजी

के.एन.एल.वी. कृष्णवेणी

प्रशासन सहायक (राजभाषा)
राजभाषा विभाग
राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड
विशाखपट्टणम इस्पात संयंत्र
विशाखपट्टणम-530 031
मो : 9000696971
ई-मेल : knlvkv@yahoo.com

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

x x x

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

ऐसे विश्वजनयुक्य विशाल भावनाएँ मात्र भारत में ही उदित होती हैं। समस्त कोटि की भलाई की चाह मात्र भारत में ही गूँज उठती है। अपने इस विशेष तत्व से ही केवल भारत के लिए ही नहीं, समस्त विश्व के सम्मुख विशेष आदर्श स्थापित करके दुनिया में भाईचारे की भावना का मार्गदर्शक बना भारत। महान ऋषि एवं योगी अरविंद के अनुसार प्रत्येक देश की एक सामुदायिक आत्मा रहती है, जिसे ग्रुपपोल कहते हैं। वह उस देश के आचार-विचारों में रीति-रिवाजों में लोगों की जीविका के प्रत्येक पार्श्व पर प्रतिबिंबित होती रहती है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा की चेतना को पहचानकर, उसे अखंड आत्मा की चेतना से संयोजित करके अग्रसर होता है, वह अपने स्थान के साथ पूरी दुनिया का पथ प्रदर्शक बनेगा। इसके लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने व्यक्तित्व और चरित्र पर नियंत्रण अपेक्षित है। आध्यात्मिक मार्ग में अपनी देशभक्ति से विवेकानंद, आत्मशक्ति के साथ देश भक्ति से भगत सिंह, अपनी आशयस्फूर्ति से महात्मा जैसे कई महान पुरुष इस देश के दिशा-निर्देशक बने और पराधीन भारत को स्वतंत्रता दिलाने में अपने-अपने मार्ग में अग्रसर होकर एक विशेष व्यक्तित्व से न मात्र भारत जाति, बल्कि पूरी दुनिया के सम्मुख एक उत्कृष्ट पथ का प्रदर्शन किया। ये महान पुरुष भारत के अत्यंत प्रिय संतान बनकर आज भी अपनी विशिष्ट व्यवहार से कई लोगों को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे महान पुरुषों में गाँधीजी की विशिष्ट पहचान है। उन्होंने अहिंसा मार्ग पर विश्वास रखा और उसी को अपना आयुध बनाकर पूरे भारतीयों को एकजुट बनाकर स्वतंत्रता की प्राप्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आदर के साथ महात्मा, बापू के नाम से विशेष पहचान रखने वाले

गाँधीजी आज भी हमारे सामने अपने अनुपम व्यक्तित्व से प्रभावित कर रहे हैं।

आज की हमारी प्राणशक्ति का आधार, जो आहार हमें प्राप्त हो रहा है, क्या उसके बारे में आपने कभी सोचा कि हमारी तक उसके पहुँचने में कितने लोगों का श्रम है ? आज जिसके श्रम से प्राप्त आहार हम खा रहे हैं, क्या वह किसान या श्रमिक अपना पेटभर खा पा रहा है ? उसके पीछे उसका कितना कष्ट है ? ठीक इसी प्रकार आज की पीढ़ी को स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष हुआ, उसके बारे में पता नहीं है। इस स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए कई लोगों का आत्मार्पण है। कई अनगिनत लोगों के त्याग से ही यह स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उन अमर वीरों के त्याग के बारे में स्मरण करना इस अमृत फल का आनंद ले रहे हमारी जिम्मेदारी बनती है। विशेषकर सबके लिए अपनी अहिंसा पद्धति में व्यक्तित्व, सादगीपन, निष्ठा, अनुशासन आदि विशेष गुणों से पथप्रदर्शक तथा महात्मा गाँधीजी के बहुमुख प्रज्ञा का स्मरण करना अनिवार्य है। आइए, आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर उनके जीवन का दर्शन करें।

मेड इन दक्षिण अफ्रीका :

वर्ष 1893 में एक प्रवासी भारतीय के रूप में गाँधीजी अपने देश से सात समंदर पार कर दक्षिण अफ्रीका में वकालत करने गए। वह व्यक्ति 21 बरस बाद अपने देश में एक सफल वकील नहीं, एक 'महात्मा' और 'सत्याग्रही' बनकर लौटा है। वहाँ नस्ली हिंसा के शिकार भारतवंशियों के अधिकारों के लिए 'अहिंसक सफल लड़ाई' लड़ने की गाथाएँ सुन-सुन कर भारतीयों ने उसके आगमन पर कई उम्मीदें लगा रखी हैं। उनके आगमन पर उपस्थित लोगों के जय-जयकार से ही इसका पता चला। उन्हें आम लोगों के अलावा, गोखले, जिन्ना, टाटा जैसे बड़े लोगों का सादर स्वागत भी प्राप्त हुआ। भारत में आगमन के पश्चात कहीं-न-कहीं सम्मान और सभाओं में अतिथि वक्ता के रूप में निमंत्रण से गाँधीजी बहुत व्यस्त हो गए। उस समय उनके राजगुरु श्री गोपालकृष्ण गोखले जी ने उन्हें सलाह दी कि 'तुम्हारे मन में कई विचार होंगे। लेकिन पहले सभाओं में भाषण देना छोड़ दो। जनता के प्रश्नों का उत्तर देना बंद करो। सर्वप्रथम मौन व्रत स्वीकार कर कान खोलकर पूरे भारत का भ्रमण करो। भारत की स्थिति समझने का प्रयास करो।' अपने राजनीतिक गुरु गोखले जी की बातों को सहर्ष मानकर गाँधीजी ने पूरे भारत का दर्शन किया और मानसिक रूप से उत्कृष्ट कार्ययोजना से एक महात्मा के रूप में अपने आप को आविष्कृत करके भारतीयों के मार्गदर्शक बने।

किसान बंधु :

गाँधीजी का और किसानों का अटूट रिश्ता रहा है। पहले से गाँधीजी किसानों के सखा बनकर उनके लिए हमेशा खड़े रहे। उन्होंने किसानों के लिए ही चंपारण सत्याग्रह में नील की खेती के लिए किसानों के संग अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया। अंग्रेजों ने अपने व्यापार के लिए, दैनिक जीवन हेतु आवश्यक आहार पदार्थों के खेती के विरुद्ध नील की खेती करने पर किसानों को सताया। उचित दर भी नहीं दिए जाने के कारण कई किसान भूखे से मरने लगे। किसानों की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर विचलित गाँधीजी ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध युद्ध किया और विजय प्राप्त की।

गुजरात का एक गाँव खेड़ा बुरी तरह बाढ़ की चपेट में आ गया। साथ ही विविध संक्रामक महामारी से पीड़ित स्थानीय किसानों ने शासकों से कर माफ करने की अपील की। लेकिन शासकों की ओर से कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं प्राप्त हुई। वहाँ की स्थिति से खिन्न गाँधीजी ने एक हस्ताक्षर अभियान शुरू किया, जहाँ किसानों ने करों का भुगतान न करने का संकल्प लिया। उन्होंने ममलतदारों और तलतदारों के सामाजिक बहिष्कार की भी व्यवस्था की, जिसके कारण 1918 में सरकार ने अकाल समाप्त होने तक राजस्व कर के भुगतान की शर्तों में ढील दी।

नमक से आजादी की आग :

अंग्रेजी सरकार ने वर्ष 1929 में प्रस्ताव रखा कि भारत में राजनैतिक संस्तुति तथा अधिकार युक्त कानून

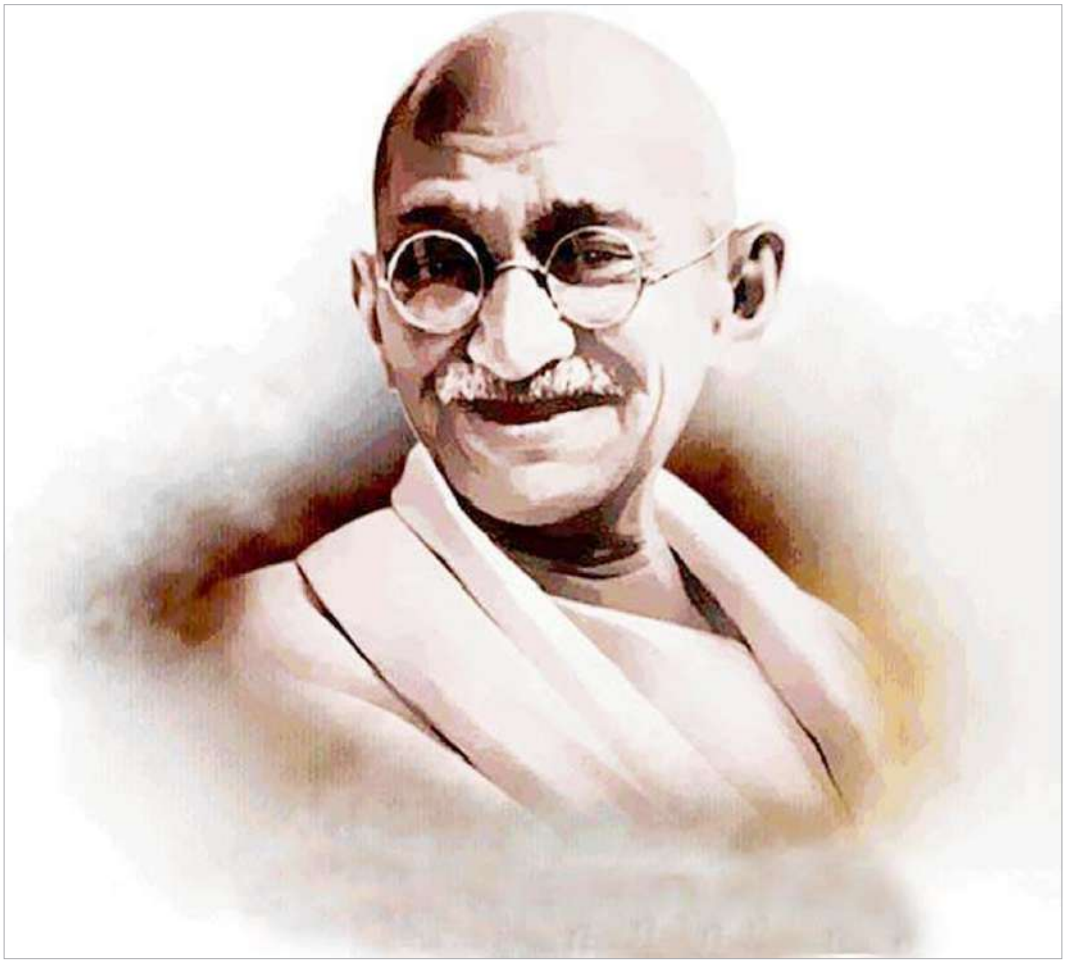

लागू किया जाएगा। लेकिन वास्तव में बनाए गए कानून भारतीयों के अपेक्षितानुसार नहीं थे। इससे वर्ष 1930 में लाहौर में आयोजित काग्रेस सभा में नेताओं ने निर्णय लिया कि संपूर्ण स्वराज्य ही भारत का एकमात्र संकल्प है। उसकी प्राप्ति ही हमारा लक्ष्य है। उसके लिए हमें लड़ना चाहिए। इसी क्रम में गाँधीजी ने अत्यंत आवश्यक खाद्य पदार्थ नमक पर लगाए गए कर और प्रतिबंध के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते हुए 'नमक आंदोलन' का श्रीगणेश किया। अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से दांडी तक 388 किलोमीटर पैदल यात्रा करके अंग्रेजी शासन के विरुद्ध नमक बनाया। इसमें पूरे भारतीय गाँधीजी के साथ रहे। कई लोग अंग्रेजों के दंड के शिकार बने। यह भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में एक कीर्तिस्तंभ बना। सरकार के विरुद्ध गाँधीजी के 24 दिनों की इस लड़ाई के बारे में दुनिया भर के 1350 पत्रिकाओं में छपा और इस सत्याग्रह को जनता के अधिकार प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में उल्लेख किया।

रॉलेट अधिनियम :

देश में गूँज रही स्वतंत्रता की आवाज को दबाने के लिए अंग्रेजों द्वारा वर्ष 1919 में रॉलेट अधिनियम पारित किया गया। यह काले कानून के नाम से भी जाना जाता है। इस कानून में वायसराय को प्रेस को नियंत्रित करने और किसी भी समय किसी भी राजनीतिज्ञ को बिना वांरट ही गिरफ्तार करने का अधिकार देने का प्रावधान था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में पूरे देश में इसका विरोध किया गया।

असहयोग आंदोलन :

महात्मा गाँधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन चलाया गया था। इस आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई जागृति प्रदान की। गाँधी जी का मानना था कि ब्रिटिश हाथों में उचित न्याय मिलना असंभव है। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध एक कार्य योजना बनाई। भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ विदेशी वस्तुओं के बहिष्करण हेतु आवाज उठाई। इससे अंग्रेजों के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ा।

भारत छोड़ो आंदोलन :

महात्मा गाँधी ने अगस्त 1942 में अंग्रेजों के खिलाफ 'भारत छोड़ो' आंदोलन की शुरुआत की। इस आंदोलन के माध्यम से भारत छोड़ कर जाने के लिए अंग्रेजों को मजबूर किया गया। इसके साथ ही एक सामूहिक नागरिक अवज्ञा आंदोलन, करो या मरो भी आरंभ किया गया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप देश में आजादी की नींव पड़ी।

बुनियादी शिक्षा :

शिक्षा के संबंध में गाँधीजी के स्पष्ट उद्देश्य हैं। गाँधीजी व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को प्राथमिकता देते हैं, जिसका एक मात्र साधन शिक्षा है। शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास में वास्तविक सहायक शिक्षा है। शिक्षा के द्वारा बालक और बालिकाओं में निहित समस्त गुणों का विकास होता है। देश के सभी लोगों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। उचित नागरिकों के निर्माण में शिक्षा सहायक होती है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे छात्रों में आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न करने की क्षमता हो। विद्यालय निष्क्रिय रूप से मात्र ज्ञान प्राप्त करने का स्थान नहीं होना चाहिए, बल्कि वह सक्रिय रूप से अनुभव के साथ प्रयोग पद्धति में ज्ञान प्राप्त करने का स्थान होना चाहिए। उसमें प्रयोग और कार्य की खोज होनी चाहिए। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि बालक जिस समुदाय का सदस्य है, उस समुदाय के सामान्य हित के अनुसार अपनी क्षमताओं का विकास कर सके। गाँधीजी का उद्देश्य था कि विद्यालय से बाहर निकलते ही विद्यार्थी को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की क्षमता शिक्षा में होनी चाहिए।

आत्मनिर्भर गाँव :

वस्तुत: गाँधीजी ने पूरे भारत के गाँवों को एक आदर्श माहौल अपनाने की प्रेरणा दी। वे चाहते थे कि भारत के सभी गाँव स्वच्छ, साफ-सुथरे हों। अक्सर गाँधीजी अपने लेखों के जरिए बार-बार इन बातों की तरफ ग्रामवासियों का ध्यान आकृष्ट करते रहे। मई, 1936 के 'हरिजन' पत्रिका में भी उन्होंने लिखा- 'हमें गाँवों को अपने चंगुल में जकड़ रखने वाली त्रिविध बीमारी यानी सार्वजनिक स्वच्छता की कमी, पर्याप्त और पोषक आहार की कमी और ग्रामवासियों की जड़ता का इलाज करना है।' गाँधीजी यह भी चाहते थे कि प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के मामले में स्वावलंबी हो। तभी वहाँ सच्चा ग्राम-स्वराज्य कायम हो सकता है। उन्होंने ग्रामोद्योग की उन्नति के लिए कुटीर उद्योग बढ़ाने पर बल दिया। इसी के अंतर्गत उन्होंने चरखा तथा खादी का प्रचार किया। गाँधी का मानना था कि चरखे के जरिए ग्रामवासी अपने खाली समय का सदुपयोग करते रहें तो रोटी के साथ कपड़े के मामले में भी स्वावलंबी हो सकते हैं। ग्रामोद्योगों की प्रगति के लिए ही उन्होंने मशीनों के बजाय हाथ-पैर के श्रम पर आधारित उद्योगों को बढ़ाने पर जोर दिया, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ सकें।

स्वास्थ्य और स्वच्छता :

महात्मा गाँधी ने डॉक्टरी की पढ़ाई तो नहीं की, पर स्वास्थ्य और जीवन शैली पर उनके प्रयोग, अध्ययन और विचार किसी पेशेवर चिकित्सक से कम नहीं हैं। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा और संयमित जीवन शैली पर जोर दिया। उनका पहला लक्ष्य गाँव और वहाँ रहने वाले ग्रामीण लोगों का स्वास्थ्य था, जिनके पास संसाधन और सुविधाओं की कमी है। पर उनके नियम सभी वर्ग के लोगों पर बखूबी लागू होते हैं। गाँधीजी के

अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वह है, जो सभी तरह की बीमारियों से मुक्त है, जो अपनी नियमित क्रियाएँ बिना थकावट के पूरी करता है, जो प्रतिदिन 10 से 12 मील आसानी से चल सकता है, सामान्य भोजन को आसानी से पचा सकता है और जिसके मन और इंद्रियों के व्यवहार में तालमेल है। गाँधीजी ने स्वच्छता, पैदल चलना, सप्ताह में एक दिन उपवास, न्यूनतम खुराक और शाकाहार को अपने जीवन में अपनाया। यहीं उनके स्वास्थ्य की कुँजी है।

गाँधीजी का मानना है कि 'स्वतंत्रता से ज्यादा महत्वपूर्ण है स्वच्छता'। इस कथन से हमें स्वच्छता के प्रति गाँधीजी के विचार स्पष्ट होते है। साथ ही हमें ध्यान देना होगा कि गाँधीजी सिर्फ बाह्य स्वच्छता ही नहीं, मानसिक स्वच्छता के भी प्रबल समर्थक हैं। गाँधीजी ने स्वच्छता को आत्मविकास एवं राष्ट्रविकास का सबसे महत्वपूर्ण मद माना। उनके अनुसार, ''एक पवित्र आत्मा के लिए एक स्वच्छ शरीर का रहना उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि किसी स्थान, शहर, राज्य और देश के लिए स्वच्छ रहना जरूरी होता है, ताकि इसमें रहने वाले लोग स्वच्छ और ईमानदार हों।'' स्वच्छता के संबंध में उनका दर्शन अत्यंत व्यापक था। इस व्यापकता को उन्होंने यह कह कर व्यक्त किया कि यदि कोई व्यक्ति स्वच्छ नहीं है, तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता है और यदि वह स्वस्थ नहीं है तो वह स्वस्थ मनोदशा के साथ नहीं रह पाएगा। स्वस्थ मनोदशा से ही स्वस्थ चरित्र का विकास होगा। गाँधीजी कहते हैं कि 'यदि धन गया तो कुछ नहीं गया, यदि स्वास्थ्य गया तो कुछ गया, लेकिन यदि चरित्र गया तो मानना है कि सब कुछ गया।'

शारीरिक व्यायाम और खेल :

गाँधीजी बचपन में शारीरिक व्यायाम के लिए नहीं जाते थे। उनके विद्यालय के साथी श्री रतिलालगेलाभाई मेहता के कथन से पता चलता है कि गाँधीजी क्रिकेट खेलने में बड़ी दिलचस्पी दिखाते थे। यहीं नहीं, अंपायर के रूप में व्यवहार करने में भी बहुत आसक्ति दिखाते थे। बड़े होकर अपनी आत्मकथा में गाँधीजी ने स्वयं उल्लेख किया कि शारीरिक व्यायाम के प्रति बचपन में मेरे विचार बहुत गलत थे। सब को अनिवार्यत: शारीरिक व्यायाम करना चाहिए। बचपन से ही इस आदत को अपनाना चाहिए।

शायद कई लोग चकित हो जाएँगे कि क्रिकेट पर भी गाँधीजी का प्रभाव था। उस समय अंग्रेजों की कूटनीति के परिणामस्वरूप अपने-अपने धर्म के अनुसार खिलाड़ियों के बीच क्रिकेट मैच का आयोजन होता था। आजकल के आईपीएल की तरह उन्हें भी बहुत आदर के साथ देखा जाता था। प्रारंभ में उनका प्रभाव उतना नहीं था, लेकिन जब देश में राजनैतिक, सामाजिक उद्यम चल रहा था, तब उसका प्रभाव खिलाड़ियों पर भी पड़ने लगा था। ऐसे माहौल में हिंदू जिमखाना के आयोजक गाँधीजी के विचार माँगने आए तो उन्होंने सुस्पष्ट बताया कि वास्तव में मैं क्रिकेट नहीं देख रहा हूँ। लेकिन एक आम व्यक्ति के रूप में मेरा विचार स्वीकार कीजिए। वास्तव में टूर्नामेंट रद्द करने से क्रीड़ाओं के प्रति रुचि दिखाने वालों को निराशा होगी। मैं यह जानता हूँ। लेकिन आज की स्थिति में पूरी दुनिया में युद्ध का माहौल है। भारत में भी कई लोग जेल में हैं। ऐसी स्थिति में हमें अपनी प्राथमिकताओं के दृष्टिगत व्यवहार करना होगा। अत: इन क्रिकेट खेलों के आयोजन को बंद करना चाहता हूँ। साथ ही, धर्म के आधार पर टीमों के विभाजन और खेलों के आयोजन की परंपरा से बाहर निकलकर महाविद्यालयों और संस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्द्धा रखते हुए खेलों का आयोजन करना अच्छा होगा। कई वाद-विवादों के पश्चात धर्म के आधार पर टीमों का विभाजन करते हुए खेलों के आयोजन की परंपरा बंद की गई।

नारी शक्ति :

गाँधीजी ना सिर्फ शांति और अहिंसा के पक्षधर रहे, बल्कि महिलाओं के प्रति उनके विचार भी काफी प्रभावी हैं। उनकी बातों, उनके कामों और उनके विचारों का समाज में काफी महत्व था। गाँधी महिलाओं को लेकर

अपने समय से आगे की सोच रखते थे। वे महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक ही मानते थे। गाँधीजी की सहयोगियों में महिलाएँ खासतौर पर शामिल रहती थीं। इनमें पत्नी कस्तूरबा के अलावा मनुबेन, सुशील नायर, आभा बेन, मीरा बेन, सरलादेवी चौधरानी जैसी कई महिलाएँ शामिल थीं। गाँधीजी कई मंचों पर महिलाओं से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ खुलकर आवाज उठाते थे। उन्होंने अपने राजनीतिक आंदोलनों में भी महिलाओं के आगे आने पर जोर दिया। साथ ही, उन्होंने हर आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्होंने चरखा चलाना भी सिखाया। साथ ही, महिलाओं के शिक्षा हासिल करने और नौकरी करके आत्मनिर्भर होने के भी पक्षधर थे।

निष्कर्ष :

समय के प्रति पाबंद रहना, अनुशासन युक्त जीवन बिताने वाले गाँधीजी का जन्म एक साधारण व्यक्ति की तरह ही हुआ। लेकिन अपने अनुभवों से, संस्कारों से आदर्श बनाकर उनके प्रति अपने आप को बाध्य बना लिया। परिणामत: एक सामान्य व्यक्ति से लेकर बहुत कम समय में अपनी विशेष छाप से महान व्यक्ति के रूप में परिवर्तित हुए। ऐसे परिवर्तित व्यक्ति किसी ऋषि से कम नहीं होते है। उनका दैनिक व्यवहार अत्यंत सरल है। इस दौरे में अपने आचरण, प्रवृत्ति के प्रति अत्यंत जागरूक होना चाहिए।

जो व्यक्ति एक विशेष आचरण को अपना कर अनुशासनपूर्ण जीवन बिताता है, मात्र वही परिपूर्णता की स्थिति प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अत्यंत विरले होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति तो महान स्थिति प्राप्त करने तथा महान कहलाने की इच्छा रखता है। लेकिन जब वह आचरण में त्रिकरणों को अपनाकर, निरपेक्ष भावना से सब के हित से अपने कार्यक्षेत्र में पदार्पण करता है, तब यह दुनिया उसके पीछे चलती है और नेता बनाती है। गाँधीजी ऐसे ही एक ऋषि हैं, जो अपनी सादगी, निष्ठा, प्रतिबद्धता के साथ देश के लिए अपना जीवन समर्पण किया और महात्मा गाँधी तथा पूरे देश के बापू बनकर भारतीयों के हृदय में शाश्वत स्थान प्राप्त किया। उनके समग्र जीवन का दर्शन करने से हम यह नहीं कह सकते हैं कि गाँधीजी केवल स्वतंत्रता आंदोलन में रहे या उन्हें किसी खास विषय की जानकारी नहीं है। गाँधीजी ने 'भगवान' को 'सत्य' के रूप में उल्लेख किया था। उनका कहना था कि ''मैं लकीर का फकीर नहीं हूँ।''

गाँधीजी चाहते थे कि सभी धर्म के लोग अपने धर्म के साथ-साथ दूसरे धर्म के ग्रंथों के परमार्थ को समझकर उन ग्रंथों के साथ उनके अनुयायियों का भी आदर करें। मातृभाषा, कला, आदिवासी लोग, घुड़दौड़ इस प्रकार प्रत्येक विषय के प्रति उनका गहरा विचार और ज्ञान है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचारों और उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया पर है। दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला से लेकर अमरीका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर तक उनके विचारों के प्रशंसक थे। अमरीकी अश्वेत नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों के आंदोलन के अगुवा मार्टिन लूथर गाँधीजी को अपना नायक मानते थे और एक शिष्य के रूप में महात्मा गाँधी के विचारों को आत्मसात करते थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गाँधीजी प्रत्येक भारतीय के हृदय में अमर स्थान रखते हैं। ❑

गाँधीमार्ग के साधक 'अनुपम' पर्यावरणविद्

श्रुति

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-100001
मो. 9990746476

गाँधी के सघन हिमनद से निरंतर प्रवाहित सदानीरा धाराएँ, समय और भौगोलिक सीमा के पार पहुँचकर विश्व को 'गाँधीमार्ग' का विकल्प प्रस्तुत करती रही हैं। इतिहास के पन्ने पर बीसवीं सदी राजनीतिक उथल-पुथल, असहिष्णुता, युद्ध के गहराते संकट के साथ ही पर्यावरणीय असहयोग के लिए जाना जाएगा।

'गाँधी' ने एक सूत्र दिया था, असहयोग। इस सूत्र का सूक्ष्म विस्तार हम कितना कर पाए, इसकी चर्चा फिर कभी, पर इसका स्थूल अर्थ हमने ले लिया। हम जिस डाल पर बैठे उसको सिर्फ काटा ही नहीं, बल्कि गाजे-बाजे के साथ काटा। ढोल और डंके की चोट पर काटा। जब धम्म से गिरे तो ढोल की थाप इतनी तेज थी कि अपने गिरने की आवाज जाती रही। यह थाप पश्चिमी थाप थी। इस अर्थ में विशेष तो थी ही। 'गाँधी' के आह्वान पर इस थाप से बचने के लिए पूरा भारत 'सत्याग्रह' आंदोलन में कूद पड़ा। 'गाँधी' की लाठी थामे भारत ने अपनी जड़ता का ओढ़ना निकाल फेंका था। 'गाँधी' का मानना था कि भारत की प्रगति 'पश्चिमी मॉडल' पर संभव नहीं। 'पंचायती राज' में विश्वास रखते गाँवों की जीवन पद्धति ही 'भारतीय गणतंत्र' को सच्चा स्वराज दिला सकती है। 'गाँवों' पर आस्था अर्थात अपनी जड़ों की ओर लौटना।

'जड़ें' मतलब मिट्टी-पानी में सनी हुई। थोड़ी ऊपर की ओर उठती हुई, लेकिन नीचे पाताल तक गहरी पैठ। 'गाँधी' को इन्हीं जड़ों को आधार देने वाली मिट्टी-पानी पर गहरी आस्था थी। अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में वो कहते हैं - ''किसी मित्र ने मुझे जुस्टकी 'रिटर्न टु नेचर' (प्रकृति की ओर लौटो) नामक पुस्तक दी। उसमें मैंने मिट्टी के उपचार के बारे में पढ़ा। सूखे और हरे फल ही मनुष्य का प्राकृतिक आहार हैं, इस बात का भी इस लेखक ने बहुत समर्थन किया है। इस बार मैंने केवल फलाहार का प्रयोग तो शुरू नहीं किया, पर मिट्टी का उपचार तुरंत शुरू कर दिया। मुझ पर उसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। उपचार इस प्रकार था - खेत की साफ लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें प्रमाण से पानी डालकर साफ, पतले, गीले कपड़े में उसे लपेटा और पेट पर रखकर उस पर पट्टी बाँध दी। यह पुलटिस रात को सोते समय

बाँधता था और सवेरे अथवा रात में जब जाग जाता तब उसे खोल दिया करता था। इससे मेरा कब्ज जाता रहा। उसके बाद मिट्टी के ये उपचार मैंने अपने पर और अपने अनेक साथियों पर किए और मुझे याद है कि वे शायद ही किसी पर निष्फल रहे हों।''[1]

मिट्टी-पानी की तपस्या कभी निष्फल नहीं हो सकती। 'गाँधी' मिट्टी की बात करते रहे, संभवत: इसीलिए हमें हमारी मिट्टी दिला गए। 'गाँधी' की परिधि निराकार थी, बहुत बड़ी। ठीक सौरमंडल की तरह। इसी सौरमंडल के एक सदस्य थे, अपनी जड़ों और अपने पर्यावरण के प्रति कृतज्ञ, गाँधी मार्ग के तपस्वी 'अनुपम मिश्र'। गाँधी की तरह अनुपम ने कभी अपने काम का ढोल नहीं बजाया। बस समाज ने जो दिया उसे अँजुरी में भरकर वापस करते रहे। अपने पर्यावरण के प्रति उदासीन समाज को चेताते रहे। उनमें आई जड़ता को हटाने के लिए आग्रही रहे। समाज को बहुत दिया, पर मूक साधक की तरह। वे स्वयं को समाज का मुंशी कहते थे। अपने पर्यावरण की क्लर्की करते हुए उसकी अच्छाई को दर्ज करते रहे। कुछ नए मान लिए गए शब्द विकास, उदारीकरण के बदले उन्हें अपनी जड़ों पर विश्वास था। ये शब्द तो पत्तियाँ थीं, तने थे, जो समय के चक्र में टूट सकते थे, झड़ सकते थे पर जड़ें तो अक्षुण्ण थीं। अपने एक व्याख्यान में वे कहते हैं - ''ऐसी विचित्र भगदड़ में फँसा समाज अपनी जड़ों को खोज पाएगा, उनसे जुड़ पाएगा, ऐसी उम्मीद रखना बड़ा कठिन काम है। लेकिन ये शब्द हमारा पीछा आसानी से नहीं छोड़ने वाले। जड़ें शायद छूटेंगी नहीं। दबी रहेंगी मिट्टी के भीतर। ठीक हवा मिलने पर वे फिर से हरी हो सकेंगी और उनमें नए पीके भी फूट सकेंगे। हमें अपने को उस क्षण के लिए बचाकर रखना होगा।''[2]

अपने अतीत के प्रति यह गहरी आस्था ही उन्हें पानी के काम के पास खींच ले गई। गाँधी जिस स्वराज की बात करते थे वही स्वराज 'अनुपम' को मरुप्रदेश तक लेकर गई। पानी के मामले में हमारा अपना राज था, एक संगठित इकाई थी समाज की, जो इसे पुण्य का काम समझकर इसकी संभाल में लगे थे। अंग्रेजी राज आने से पहले भारत में कुल बीस लाख तालाब थे, अकेले मैसूर राज्य में चालीस हजार तालाब थे। फिर अंग्रेज आए हमारा स्वराज जाता रहा, गुलामी के दिन आए। अपने काम के प्रति अपने लोगों के काम के प्रति ममत्व कम हो गया। राज और समाज के बीच समभाव की तार चटक गई। पुरखों ने जो पानी-संग्रह की विशाल परंपरा का निर्माण किया था, उससे संवाद टूट गया। 'अनुपम' कहते भी थे - ''मृतकों से नहीं, पुरखों से संवाद होता है। मृतक हमें मृत्यु तक ले जाते हैं। फिर वहाँ संवाद नहीं रह जाता। पुरखे हमें जीवन में वापस लाते हैं। हमारे जीवन को पहले से बेहतर बनाते हैं।''[3]

हमारे पुरखों की ही यह दूरदर्शिता थी कि रेत से भरे राजस्थान में उन्होंने पानी की भव्य परंपरा खड़ी कर दी। राजस्थान भारत का वह हिस्सा, जहाँ तक बादल भी भार मुक्त होकर आते हैं। नतीजा यह कि बादलों के पास बरसने के लिए पानी ही नहीं रह जाता। लेकिन वहाँ के समाज ने कृपण बादलों के भी कई नाम रखे। ''बादल यहाँ सबसे कम आते हैं, पर बादलों के नाम यहाँ सबसे ज्यादा निकलें तो कोई अचरज नहीं। खड़ी बोली और बोली में ब और व के अंतर से, पुलिंग, स्त्रीलिंग के अंतर से बादल का बादल और बादली, वादली, बादली है, संस्कृत से बरसे जलहर, जीमूत, जलघर, जलवाह, जलधरण, जलद, घटा, क्षर (जल्दी नष्ट हो जाते हैं), रगरंग व्योम, व्योमचर, मेघ, मेघाडंवर, मेघमाला, मुदिर, महीमंडल जैसे नाम भी हैं।''[4]

मरुभूमि के समाज ने वर्षा को मिलीमीटर या सेंटीमीटर में नहीं बूँदों में जाना। अब ये बूँदें एक-दो की संख्या में तो थी नहीं, सैंकड़ों-लाखों की संख्या थी इनकी। तो इन सैंकड़ों-लाखों को समेटने में लग गया, वहाँ का समाज। इन बूँदों को समेटने वाले लोगों को राज और समाज दोनों सम्मानित करते थे। ये संसार सागर के नायक सबको तारते थे। बिना किसी नियमित पढ़ाई के, बिना कोई संस्थान गए इन्होंने तालाब की लंबी, विशालकाय श्रृंखला खड़ी कर दी। इन्हीं अनाम हो चले नामों में से एक है गजधर।

''गजधर एक सुंदर शब्द है, तालाब बनाने वालों को आदर के साथ याद करने के लिए। राजस्थान के कुछ भागों में यह शब्द आज भी बाकी है। गजधर यानी जो

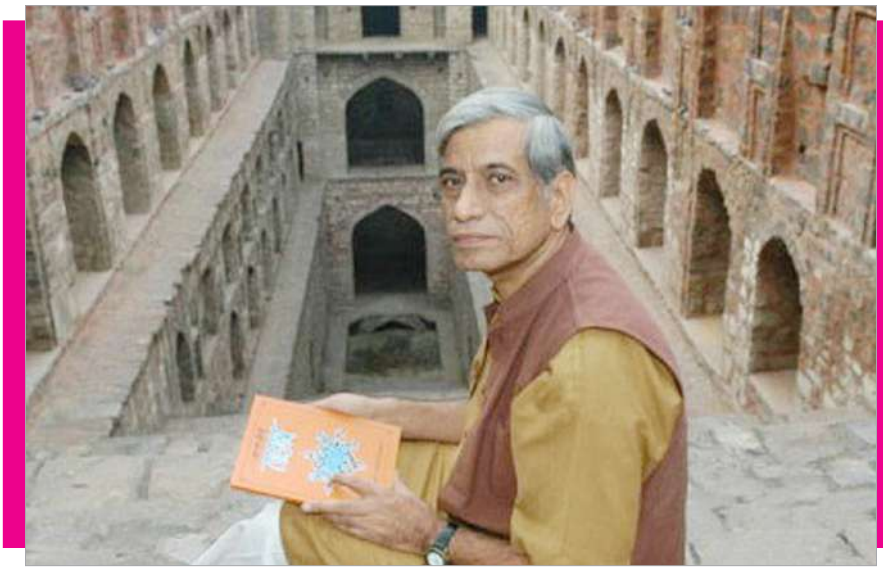

गज को धारण करता है और गज वही जो नापने के काम आता है। लेकिन फिर भी समाज ने इन्हें तीन हाथ की लोहे की छड़ लेकर घूमने वाला मिस्त्री नहीं माना। गजधर तो समाज की गहराई को नाप ले – उसे ऐसा दर्जा दिया गया है। काम पूरा होने पर पारिश्रमिक के अलावा गजधर को सम्मान भी मिलता था। पगड़ी बाँधने के अलावा चाँदी और कभी-कभी सोने के बटन भी भेंट दिए जाते थे। जमीन भी उनके नाम की जाती थी।''[5]

'अनुपम' गाँधी मार्गी थे, उनका अपना कुछ नहीं था। जो था वह समाज का था, देश का था। देश के लिए काम करते हुए ही उन्होंने 'आज भी खरे हैं तालाब' जैसी पुस्तक हमें भेंट कर दी। उन्होंने कहीं नहीं कहा कि तालाब की हालत खराब हो गई है, तालाब सड़ गए हैं, उन्होंने कहा – तालाब आज भी खरे हैं। बस जरूरत है तो थोड़ी मरम्मत की, थोड़ी साफ-सफाई की। वही मुंशी वाली भूमिका। समाज ने जिस पर्यावरण के पाठ को भुला दिया, जिस गौरवशाली परंपरा को विस्मृत कर दिया, उसे जगाने का काम उन्होंने अपने हाथ लिया।

पानी के सरकारी और अकादमिक बहसों में वे कभी नहीं फँसे। बस नींद में चल रहे समाज को थोड़ा जगाने के लिए प्रयत्नशील रहे। 'गाँधी' की तरह हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते हुए। अपनी पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' में वे कहते हैं – ''सैंकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैंकड़ा-हजार बनाती थी। लेकिन पिछले 200 बरसों में नए किस्म की थोड़ी-सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैंकड़ा, हजार को शून्य ही बना दिया। इस नए समाज के मन में इतनी भी उत्सुकता नहीं बची कि उससे पहले के दौर में इतने सारे तालाब भला कौन बनाता था। उसने इस तरह के काम को करने के लिए जो नया ढाँचा खड़ा किया है, आई.आई.टी. का, सिविल इंजीनियरिंग का, उस पैमाने से, उस गज से भी उसने पहले हो चुके इस काम को नापने की कोई कोशिश नहीं की।''[6]

समाज की कोशिश में कमी आई, सरकार की तरफ से भी कमी रही, इसीलिए संभवत: हम पानी के मामले में थोड़े कमजोर हो रहे हैं। पानी तो बरसता खूब है, पर उसका संग्रहण नहीं हो पाता। उसके बहाव क्षेत्र में हमने मकान, दुकान, हवाई अड्डा, स्टेडियम और दूसरी कई चीजें बना दी हैं। पानी का तो धर्म है बहना, उसकी नियति है यह। पर उसके राह में जब मानव निर्मित वस्तुएँ आती हैं तो उसे बाढ़ का नाम दे दिया जाता है। 'अनुपम मिश्र' पानी के स्वभाव को समझने पर जोर देते रहे। अब जबकि सब टाइल्स हो गया, पानी मिट्टी में

जज्ब ही नहीं हो पाता है, ऐसे में लगता है हमारा माथा भी टाइल्स हो गया है। उसके अंदर कुछ समा ही नहीं पा रहा है, शायद इसीलिए वह द्वार तक पहुँचे पर्यावरण के संकट को भाँप नहीं पा रहा है। और जब कोई तबाही आती है तो हम ऐसे व्यवहार करते हैं जैसे यह अचानक आ गई हो। 'अनुपम मिश्र' कहते हैं – ''बाढ़ अतिथि नहीं है। यह कभी अचानक नहीं आती। दो-चार दिन का अंतर पड़ जाए तो बात अलग है। इसके आने की तिथियाँ बिल्कुल तय हैं।''[7]

'पर्यावरण' की बात कोई नई बात नहीं है, यह पश्चिम से आई कोई नायाब वस्तु नहीं, यह तो हमारे जीवन पद्धति का अहम हिस्सा रही थी। बस उसके प्रति हम जरा विमुख हो गए हैं। अनुपम मिश्र 'भाषा और पर्यावरण' नामक अपने आलेख में कहते हैं – ''किसी समाज का पर्यावरण पहले बिगड़ना शुरू होता है या उसकी भाषा – हम इसे समझ कर संभल सकने के दौर से अभी तो आगे बढ़ गए हैं। हम 'विकसित' हो गए हैं।''[8] हम इतने विकसित हो गए हैं कि 'उपभोक्ता' की भूमिका में आ गए हैं। गाँधी तो समाज को उत्पादक की केंद्रीय भूमिका में देखना चाहते थे। 'गाँधी' ऐसे विकास के पक्षधर थे, उदारीकरण वाले विकास के नहीं। 'अनुपम मिश्र' भी 'गाँधी' के इसी सपने को सजीव होते हुए देखना चाहते थे। खादी का कुरता पहने वह विश्व को पर्यावरण का पाठ पढ़ा गए। समाज से अपील करते रहे, हमारा कल्याण उपभोक्ता की भूमिका में नहीं, उत्पादक की भूमिका में है।

'अनुपम' कहते थे – ''इस दुनिया में हम कितने भी बड़े उद्देश्य को लेकर, लक्ष्य को लेकर दीया जलाते हैं, तेज हवा उसे टिकने नहीं देती। हम तरह-तरह से कोशिश करते हैं उसे अपनी हथेलियों से बचाने की, पर यह हवा है कि हमारी सारी कोशिशों पर पानी फेरती है। शायद हमारे जीवन के दीये में पानी ही ज्यादा होता है, तेल नहीं। स्नेह की कमी होगी, इसलिए जीवन बाती चिड़चिड़-तिड़तिड़ करती है, एक-सी संयत होकर जल नहीं पातीं। न हम अपना अँधेरा दूर कर पाते हैं, न दूसरे का।

समाज के सदस्य होने के धर्म से हमारा यह कर्तव्य है कि हम 'गाँधी' के अनुपम सपने को पूर्ण करें और विश्व पर आए पर्यावरण के अँधेरे को कम करने के लिए आशा का दीपक जलाएँ। ❑

संदर्भ :

1. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, मो.क.गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ.242
2. अच्छे विचारों का अकाल, अनुपम मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 49
3. अच्छे विचारों का अकाल, अनुपम मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 53
4. राजस्थान की रजत बूँदें, अनुपम मिश्र, राजस्थान ग्रंथागार, पृ. 18
5. आज भी खरे हैं तालाब, अनुपम मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ. 18
6. आज भी खरे हैं तालाब, अनुपम मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ. 17
7. साफ माथे का समाज, अनुपम मिश्र, पैंगुइन बुक्स, पृ. 41
8. साफ माथे का समाज, अनुपम मिश्र, पैंगुइन बुक्स, पृ. 1

दृष्टिकोण

भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचना की सौंदर्य-दृष्टि : परस्पर प्रभाव

डॉ. सोनू जेसवानी

सह आचार्य, हिंदी विभाग
वृ.म.वृ. महाविद्यालय
नागपुर, महाराष्ट्र- 7
मो. 9834520028
ई-मेल : jeswanisonu@gmail.com

शोध सार :

काव्य-कला और ललित-कलाओं को लेकर विभिन्न प्रकार की सौंदर्य-दृष्टियाँ अवतरित हुईं। साम्य-वैषम्य से परिपूर्ण इन सौंदर्य-दृष्टियों में देश-काल वातावरण की युगीन संस्कृतियों की विशेष दखल रही। प्राचीन भारतीय आचार्यों ने इस सौंदर्य-दृष्टि को 'ब्रह्मानंद सहोदर आनंद' कहते हुए अलौकिकता की परिधि में आबद्ध किया तो वहीं पाश्चात्य प्राचीन विचारकों ने कलाओं की सौंदर्य-दृष्टि को आंशिक अलौकिक और प्रमुखत: 'लौकिक आनंद' की सीमाओं में विवेचित किया। 'काव्य की आत्मा' संबोधित करते हुए भारतीय आचार्यों ने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि तत्वों को प्रधानता दी और इन्हें आनंद के प्रमुख कारक-तत्व सिद्ध किया तो पाश्चात्य विचारकों ने 'सौंदर्य' के संबोधन से लय, अनुपात, अनुकरण, औदात्य, अभिव्यंजना, बिंब-प्रतीक, निर्वैयक्तिकरण आदि तत्वों को आनंद-निर्मिति के कारक-तत्व मानते हुए स्वीकृति दी। भारतीय आचार्यों ने विविध सिद्धांत और संप्रदायों की स्थापना की और पाश्चात्य जगत ने सौंदर्य के अनुसंधान हेतु विविध आंदोलन किए । आज हिंदी साहित्य की आधुनिक दृष्टि जहाँ पाश्चात्य प्रभाव से आपूरित दिखलाई पड़ती है तो वहीं यह जानकार हमें सुखद आश्चर्य भी होता है कि पाश्चात्य जगत भी भारतीय आचार्यों का ऋणी रहा है।

पाश्चात्य जगत में रोमांटिसिज्म, मार्क्सिज्म, न्यू क्रिटिसिज्म आदि अनेकानेक सौंदर्यमूलक आलोचना-दृष्टियाँ एक-दूसरे के विरोध में अथवा अपनी विशेष दृष्टि की स्थापना में स्थापित, लोकप्रिय होती गईं। हिंदी आलोचना निश्चित रूप से इन पाश्चात्य आलोचना दृष्टियों से प्रभाव ग्रहण करती हुए अग्रसर हुई। अनेक स्थानों पर परंपरा और आधुनिकता के समन्वय के रूप में हिंदी आलोचना ने अपनी प्रवृत्तियाँ स्थापित कीं तो कहीं-कहीं मात्र अंधानुकरण भी हुआ । पुन: हिंदी आलोचना ने अपनी युगीन परिस्थितियों और आवश्यकता के अनुसार पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा आदि की आलोचना

दृष्टियाँ भारतीय भूमि से ही प्राण-शक्ति लेकर विकसित हुईं। पाश्चात्य आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हुए भी हिंदी आलोचकों ने इन नई आलोचना-पद्धतियों का नामकरण भी अपने परिवेश के अनुकूल किया, जैसे- रोमांटिसिज्म के स्थान पर स्वच्छंदतावाद, मार्क्सवाद के स्थान पर प्रगतिवाद, प्रतीकवाद के स्थान पर प्रयोगवाद आदि। पाश्चात्य आलोचना दृष्टि ने भारतीय काव्य-सौंदर्य विवेचन से प्रभावित होते हुए अपनी शैली और अपने कथ्य इन दोनों ही दृष्टियों से आधुनिक हिंदी साहित्य को, आलोचना-दृष्टि को, भाव और विचार सौंदर्य-दृष्टि को अत्यधिक प्रभावित किया है।

बीज शब्द : सौंदर्य-संकल्पना, भारतीय काव्यात्मा, पाश्चात्य सौंदर्य, परस्पर प्रभाव।

मूल आलेख : हिंदी आलोचना में आलोचकों की दो धाराएँ सम्मुख आती हैं- पहली वह धारा जो अपने पूर्ववर्ती प्राचीन भारतीय आचार्यों की स्थापनाओं को आदर्श मानकर उनका अनुगमन करती है। उदाहरणार्थ - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा सृजित 'रस-कलश' तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा विश्लेषित 'रस-मीमांसा' इस श्रेणी के आलोचक तथा उनकी रचनाएँ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित 'लोक-मंगल' का सिद्धांत जो काव्य के प्रतिमान के रूप में स्थापित किया गया, वास्तविक रूप से यह सिद्धांत आचार्य मम्मट के 'कांतासम्मित उपदेश' का ही आधुनिककालीन रूप है। हिंदी आलोचकों की दूसरी धारा वह रही, जिस पर पाश्चात्य आलोचना का प्रभाव पड़ा। ये आलोचक संस्कृत भाषा से अवगत न थे। अत: भारतीय काव्यशास्त्र से उनकी दूरी बनी रही। बाबू श्यामसुंदरदास ने अपनी पुस्तक 'साहित्यालोचन' में अंग्रेजी काव्यशास्त्र के आधार पर काव्य के प्रतिमानों जैसे - भाव, कल्पना, विचार, शैली आदि को विश्लेषित किया। उन्होंने केवल काव्य-कला ही नहीं, अपितु ललित कलाओं को भी पाश्चात्य दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। यह उल्लेखनीय है कि बाबू श्यामसुंदरदास ने 'साधारणीकरण' का सिद्धांत भी विश्लेषित किया। उनका यह विश्लेषण आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रतिपादन की तुलना में अधिक तर्कसंगत और प्रासंगिक था।

भारतीय काव्यशास्त्र की अनभिज्ञता होने के कारण हमारी हिंदी भाषा के कुछ आधुनिक आलोचक पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों की आलोचना-शैलियों यथा- नई समीक्षा, शैली वैज्ञानिक समीक्षा आदि को आधार बनाकर हिंदी काव्य को परखने लगे। हमारे आधुनिक हिंदी आलोचकों के लिए यह जानना भी मुश्किल रहा कि काव्य-भाषा आदि से संबंधित जो विवेचन-विश्लेषण पाश्चात्य जगत में फोन, फोनिम अर्थात् स्वन, स्वनिम आदि के नाम से बीसवीं शताब्दी में किया गया, वह विवेचन भारतीय कव्यशास्त्र में दसवीं शताब्दी में 'ध्वनि सिद्धांत' के माध्यम से कब का स्थापित हो चुका था।

प्लेटो ने दैविक प्रेरणा को काव्य का हेतु माना तो यही साम्यता भारतीय आचार्यों में परिलक्षित होती है । उन्होंने भी 'प्रतिभा' को जन्मजात शक्ति कहते हुए उसे काव्य का हेतु माना है। प्लेटो ने काव्य की देवियों का उल्लेख किया है। हमारे भारतीय आचार्यों ने भी काव्य, कला तथा ज्ञान की देवी माँ सरस्वती को माना है। भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्यों द्वारा स्थायी भाव, संचारी भाव आदि का सूक्ष्म विवेचन बड़े ही व्यापक रूप में किया गया। आधुनिक युग में आई.ए. रिचर्ड्स जैसे विद्वानों ने भाव, आवेग आदि का विवेचन करते हुए आलोचना को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयास किया। टी.एस. इलियट का 'वस्तुनिष्ठ समीकरण' असल में भारतीय आचार्यों के रस-सिद्धांत के भाव-विभाव आदि का ही अनुकरण है। भारतीय काव्यशास्त्र में उल्लिखित रस-सिद्धांत के विशिष्ट उपकरण जब भी, कहीं भी प्रयोग में लाए जाएँगे तो वे काव्य की सम अनुभूति ही कराएँगे। इसी स्थापना को इलियट ने सिद्धांत बनाकर पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रस्तुत किया।

प्लेटो के काव्य-विवेचन को पढ़ने के बाद प्रश्न निर्माण होता है कि प्लेटो की दृष्टि में काव्य प्रकृति का अनुकरण है, और प्रकृति स्वयं ईश्वर के विचारों का अनुकरण है। अत: प्लेटो की दृष्टि से काव्य में निहित विचार 'सत्य' से दुगुना दूर होता है। प्लेटो भारतीय अद्वैतवादियों की भाँति जगत को मिथ्या और विचार रूपी ब्रह्म को सत्य मानते थे। उनकी इस धारणा का प्रभाव उसके राजनीतिक एवं साहित्यिक विचारों पर भी पड़ा।

प्लेटो ने काव्य की अनुभूति का मूल स्वरूप आनंददायक माना और उन्होंने इस आनंद के मूल में भावों के उद्वेलन की प्रक्रिया को स्वीकार किया। काव्य-कला की इस पूर्ण आस्वादन-प्रक्रिया के आधार पर इनसे संबंधित आधार-सूत्रों की स्थापना की। प्लेटो की ये स्थापनाएँ अपने भारतीय रस-सिद्धांत के बहुत पास हैं। आचार्य भरतमुनि और प्लेटो की काव्य संबंधित ये मान्यताएँ समानांतर चलती हुए दिखलाई पड़ती हैं, क्योंकि दोनों महानुभावों ने काव्यानुभूति के द्वारा आनंदानुभूति की उपलब्धि का एकमेव साधन भावोद्वेलन को माना। आचार्य भरतमुनि तथा प्लेटो में यह अंतर रहा कि जहाँ एक ओर आचार्य भरतमुनि ने काव्यानुभूति से प्राप्त आनंदानुभूति को ब्रह्मानंद के निकट मानते हुए काव्य-कला को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया, वहीं अपने युगीन काव्य की दूषित प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण प्लेटो काव्य-कला के महत्व को निष्पक्ष एवं संतुलित दृष्टि से स्थापित नहीं कर पाए। उनका दृष्टिकोण एकांगी और संकीर्ण रहा, किंतु यह भी उतना ही सच है कि प्लेटो के जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आदर्श गणराज्य की स्थापना करना था। ऐसे में अपने उदात्त लक्ष्य से भटके हुए कवि को अगर प्लेटो ने अपने राज्य से निष्कासित किया तो यह उनके द्वारा किया गया युगानुकूल दायित्व-निर्वहन ही था।

बीसवीं शताब्दी में आई.ए. रिचर्ड्स ने 'थियरी ऑफ मीनिंग' का सिद्धांत रखा, जिसे हिंदी में 'अर्थ सिद्धांत' कहा गया। इस संदर्भ में शिवदान सिंह चौहान ने कहा है- ''भारतीय काव्यशास्त्र को आनंदवर्धन की सबसे बड़ी देन उनका 'अर्थ-विचार' संबंधी वैज्ञानिक विवेचन है । यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस 'थियरी ऑफ मीनिंग' का विकास पश्चिम के आलोचकों ने बीसवीं शताब्दी में आकर किया है, उसका आनंदवर्धन ने लगभग ग्यारह सौ साल पहले ही विकास कर दिया था। और वह तब से भारतीय काव्य आलोचना का मूलाधार बना हुआ है; इसलिए 'थियरी ऑफ मीनिंग' का वास्तव में श्रेय आनंदवर्धन को है आई.ए. रिचर्ड्स को नहीं।'' आई.ए. रिचर्ड्स ने प्रयोग के आधार पर भाषा के दो भेद किए - वैज्ञानिक प्रयोग, भावनात्मक प्रयोग। और इन्हीं प्रयोगों के आधार पर अर्थ के भी दो भेद किए - सांकेतिक अर्थ और भावनात्मक अर्थ । आचार्य आनंदवर्धन ने यही बात शताब्दियों पहले स्पष्ट कर दी थी । शिवदान सिंह चौहान इसे आई.ए. रिचर्ड्स पर ध्वनिकार आनंदवर्धन का स्पष्ट प्रभाव मानते हैं । इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से कई शताब्दियों पूर्व भारतीय आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने सिद्धांत 'अभिव्यक्तिवाद' में अभिव्यंजना पर अपने विचार स्पष्ट किए थे। आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा था कि अपने हृदय में वासना रूप अवस्थित स्थायी भाव की ही सहृदय फिर से रस रूप में प्रतीति करता है। विभाव आदि तो केवल अभिव्यंजना साधन मात्र है।

हिंदी आलोचना में विशिष्टवाद के रूप में पाश्चात्य आलोचना के आधुनिक युग का प्रभाव भली-भाँति देखा जा सकता है। हिंदी की सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आलोचना सौंदर्य-दृष्टि पर पाश्चात्य प्रभाव निश्चित रूप से हुआ। हिंदी आलोचकों ने अपनी विद्वता और सद्सद्विवेकबुद्धि के आधार पर भारतीय और पाश्चात्य आलोचना के प्रभाव का औचित्यपूर्ण समन्वय करते हुए हिंदी आलोचना को समृद्ध किया। डॉ. श्यामसुंदर दास कृत आलोचना ग्रंथ 'साहित्यालोचन', डॉ. गुलाबराय कृत आलोचना ग्रंथ 'सिद्धांत और अध्ययन' आदि पर यह समन्वित प्रभाव देखा जा सकता है। हमारे यहाँ काव्य को चौंसठ कलाओं में स्थान नहीं दिया गया, किंतु पाश्चात्य जगत

में काव्य को ललित कलाओं में स्थान दिया गया। पाश्चात्य आलोचकों की स्थापनाओं में अंतर्मन में निहित अतृप्त काम-वासना को काव्य-निर्माण का प्रेरक तत्व माना गया। साथ ही काव्य का लक्ष्य सौंदर्य-निर्मिति अर्थात आनंद प्रदान करना माना गया। हिंदी आलोचना में पाश्चात्य जगत की इस दृष्टि का बहुत प्रभाव लक्षित होता है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने अपने ग्रंथ 'साहित्यालोचन' में भारतीय तथा यूरोपीय आलोचना का तात्विक विवेचन इसी दृष्टि को समझाने के लिए किया।

सौंदर्यवादी पाश्चात्य आलोचक बेनेदत्तो क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का प्रभाव आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कविता को अभिव्यंजना माना। आचार्य शुक्ल ने 'काव्य में लोक मंगल और माधुर्य' नामक अपने लेख में स्पष्ट रूप से कहा-''कविता अभिव्यंजना है। वह अभिव्यक्ति या विकास को लेकर चलती है।'' फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोवैज्ञानिक विचारकों के विचारों से प्रभावित होकर 18वीं सदी में एडिसन ने नवीन आलोचना पद्धति विकसित की। हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर पाश्चात्य जगत के मनोवैज्ञानिक विचारकों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने आचार्य भरतमुनि कृत 'रस सिद्धांत' को मनोवैज्ञानिक आधार पर विवेचित करने का स्तुत्य प्रयास किया। आगे चलकर डॉ. नगेंद्र, डॉ. देवराज आदि ने इस मनोवैज्ञानिक आलोचना को समृद्ध किया। डॉ. नगेंद्र रस-सिद्धांत के विश्लेषण में फ्रायड दर्शन को साधक मानते हैं, बाधक नहीं, क्योंकि रस-सिद्धांत और फ्रायड-दर्शन दोनों ही आनंद के सिद्धांत 'प्लेजर प्रिंसिपल' को लेकर चलते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'रस-मीमांसा' तथा डॉ. नगेंद्र कृत 'रस सिद्धांत' मनोविज्ञान की दृष्टि-भूमि पर रचे गए ग्रंथ हैं। डॉ. नगेंद्र ने तो पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के सभी प्रमुख वादों - अभिजात्यवाद, स्वच्छंदतावाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद, प्रतीकवाद आदि को रस सिद्धांत की व्याप्ति में समेट लिया।

हिंदी आलोचना में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने 'स्वच्छंदतावाद' का प्रवर्तन किया। इस स्वच्छंदतावाद ने हिंदी काव्य में व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता, पुराने बंधनों से मुक्ति, मानवतावाद, प्रकृति सान्निध्य, रहस्यवाद आदि तत्वों की पक्षधरता की। पाश्चात्य की रोमांटिक पोयट्री के समान हिंदी साहित्य में 'छायावाद' का प्रादुर्भाव हुआ। हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग के विरोध में अवतरित यह छायावाद पश्चिमी कवियों के 'रोमांटिसिज्म' के प्रभावस्वरूप हिंदी साहित्य में प्रविष्टित हुआ। छायावाद के चार आधार स्तंभों कवि जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा का काव्य पाश्चात्य कवियों कॉलरिज, वर्डसवर्थ, शेली, कीट्स के काव्य का सुप्रभाव लेकर रचा गया था। प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, ईश्वर-प्रेम के साथ-साथ अपने भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन कवियों ने काव्य-रचना की। छायावाद की प्रवृत्तियों को रेखांकित करने का कार्य स्वच्छंदतावादी आलोचना ने किया।

प्रखर समीक्षक आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धति पर पाश्चात्य आलोचना की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। विलियम वड्र्सवर्थ ने जिस प्रभाववाद की स्थापना अपनी आलोचना पद्धति के माध्यम से की थी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि भी उसी प्रभाव को लेकर भाववाद की स्थापना करती है। उनकी रसवादी दृष्टि भाववाद के समन्वय के साथ आगे बढ़ती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी विलियम वड्र्सवर्थ की भाँति प्रकृति के भावों को महत्ता दी। उन्होंने प्रकृति के वैविध्यपूर्ण रूपों के महत्व को स्वीकारते हुए कविता को 'भावयोग' संबोधित करते हुए ज्ञानयोग और कर्मयोग के समकक्ष लाकर स्थापित किया। कविता में निहित भाव उनके लिए सार्वकालिक और सार्वभौमिक था। वड्र्सवर्थ की दृष्टि से कविता का प्रयोजन 'जन सामान्य को आनंद की प्राप्ति' था। भावों के इस साधारणीकरण की प्रक्रिया को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'लोकसामान्य की भावभूमि' कहकर अत्यंत महत्वपूर्ण माना। ध्यातव्य है कि विलियम वड्र्सवर्थ जहाँ भाव के सौंदर्य तक आकर रुके थे, वहीं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी दृष्टि-यात्रा को 'कर्म के सौंदर्य' और 'लोकमंगल' के लक्ष्य-प्राप्ति तक ले जाकर उसे पूर्णता दी।

आधुनिक हिंदी आलोचना के काल में आलोचकों ने प्रमुखता से भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-साहित्य में निहित सौंदर्य-सिद्धांतों की तुलनात्मक समीक्षा की। इन हिंदी आलोचकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल सर्वप्रमुख माने जाते हैं। भारतीय आचार्य कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत तथा पाश्चात्य आलोचक क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का तुलनात्मक विश्लेषण उन्होंने प्रस्तुत किया। कॉलरिज और इमर्सन पाश्चात्य आलोचना में प्रतीकवाद के प्रमुख सूत्रधार थे । इस प्रतीकवाद का उद्भव फ्रांस में यथार्थवाद और निसर्गवाद के विरोध में सन 1870 में हुआ था। वहाँ प्रतीकवाद की प्रतिष्ठा का श्रेय प्रमुखता से स्टीफेन मलार्मे को दिया जाता है। उन्होंने अलौकिक अनुभव को दृश्य वस्तुओं के माध्यम से प्रकट किया। इंग्लैंड के विचारकों पर भी प्रतीकवाद का प्रभाव हुआ। ब्लैक और शेले की प्रतीक परंपरा को आगे चलकर डब्ल्यू. बी. यीट्स ने अधिक सशक्त किया। प्रतीकवादियों के अनुसार आँखों को दिखाई देता संसार-सौंदर्य मिथ्या होता है। वास्तविक सृष्टि अलौकिक होती है । अत: इस अलौकिक सृष्टि-सौंदर्य के गीतों में रहस्य होना चाहिए। इस प्रतीकवाद का आरंभिक प्रभाव हमारे यहाँ के छायावाद में दिखाई पड़ता है, जहाँ सृष्टि, रहस्य, रोमांच, अलौकिकता को प्रकृति से संबंधित प्रतीकों द्वारा सौंदर्य को मधुर अभिव्यक्ति दी गई। इस प्रतीकवाद का जटिल रूप हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद के रूप में प्रकट हुआ। इन प्रयोगवादी कवियों ने अपने काव्य-शिल्प में जटिल और विचित्र प्रतीकों के द्वारा दुर्बल, निराशाजनक तथा कुत्सित बातों की ही अभिव्यक्ति की। अज्ञेय हिंदी साहित्य के प्रतीकवादी कवि माने जाते हैं। आलोचक शिवदान सिंह चौहान ने प्रतीकवाद के प्रयोगवादी छद्म वेश के बारे में सतर्क करने का प्रयास किया ।

रामचंद्र प्रसाद के शब्दों में - ''यद्यपि हिंदी-आलोचना-साहित्य की श्रीवृद्धि में पश्चिम का महत्वपूर्ण योगदान है, तथापि उसने इसकी स्वीय चेतना निधि को नि:शेष नहीं किया, इसकी सत्ता नहीं मिटाई ..... हिंदी-समीक्षा की जड़ स्वदेश की सबल, सपोषित परंपराओं में ही समाविष्ट होनी चाहिए, यद्यपि पश्चिम से गृहीत उर्वरक इसके संवर्धन के लिए आवश्यक हैं, फिर भी हिंदी भारतीय भूमि से ही अनिवार्य प्राण-शक्ति लेकर पल्लवित-पुष्पित हो सकती है।'' आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा आदि की आलोचना दृष्टियाँ भारतीय भूमि से ही प्राण-शक्ति लेकर विकसित हुईं। पाश्चात्य आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हुए भी हिंदी आलोचकों ने इन नई आलोचना-पद्धतियों का नामकरण भी अपने परिवेश के अनुकूल किया, जैसे - रोमांटिसिज्म के स्थान पर स्वच्छंदतावाद, मार्क्सवाद के स्थान पर प्रगतिवाद, प्रतीकवाद के स्थान पर प्रयोगवाद आदि। ❑

संदर्भ :

1. शर्मा डॉ. ओमप्रकाश, पाश्चात्य साहित्य का सिद्धांत विवेचन, 1997, पुणे, निराली प्रकाशन।
2. जैन निर्मला, काव्य-चिंतन की पश्चिमी परंपरा, 2006, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
3. मिश्र सत्यदेव, पाश्चात्य काव्यशास्त्र अधुनातन संदर्भ, 2003, इलाहबाद, लोकभारती प्रकाशन ।
4. प्रसाद रामचंद्र, आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, 1973, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

स्त्री विमर्श

समकालीन हिंदी उपन्यासकार मृदुला गर्ग और असमीया उपन्यासकार अनुराधा शर्मा पुजारी के उपन्यासों में चित्रित नारी चेतना

जया गोगोई

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलोंग (मेघालय)
मो. 8638620616
E-mail : jayagogoi022@gmail.com

शोध सार :

समकालीन समय में नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व तथा अस्मिता की रक्षा के लिए सदैव सचेत है। आजकल की स्त्री सभी कार्य क्षेत्रों में आगे बढ़कर अपने आपको सफल और सशक्त स्थापित करने का प्रयास कर रही है। वह अपने अथक प्रयासों से सफल भी हो रही है। महिलाओं को सफल तथा आगे बढ़ने में महिला साहित्यकारों के साथ-साथ पुरुष साहित्यकारों का भी विशेष अवदान रहा है। समकालीन हिंदी और असमीया लेखिकाओं ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर कलम चलाई है और साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान बनाने में सक्षम हुई हैं। महिला रचनाकारों ने नारी के विविध पक्षों को विभिन्न कोनों से परखकर, महसूस कर, बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्ति प्रदान की है। दूसरी ओर इन लेखिकाओं ने स्त्रियों को परंपरागत शोषित मान्यताओं से मुक्त करके इन्हें मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। समकालीन हिंदी उपन्यासकार मृदुला गर्ग तथा अनुराधा शर्मा पुजारी ने अपने असमीया उपन्यासों के माध्यम से नारी चेतना को उजागर करने की पूरी कोशिश की है। इस लेखन के माध्यम से हम दोनों भाषाओं की इन दोनों लेखिकाओं के कुछ प्रमुख उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी चेतना को प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

भूमिका :

समकालीन साहित्य की विषय-वस्तु पूरे विश्व में अपनी पहचान बनाने में सक्षम हुई है। सन 1965 के पश्चात लगभग समस्त साहित्य को ही समकालीन कहा गया है। विद्वानों ने समकालीन शब्द को अपने-अपने हिसाब से परिभाषित करने की कोशिश की है। डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार, 'समकालीन' और 'समसामयिकता' अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के 'कोबिल' अथवा 'कन्टेम्रेरी' शब्दों के पर्याय रूप में होने वाली घटना या प्रवृत्ति अथवा एक ही कालखंड में जी रहा व्यक्ति' है।[1]

हिंदी तथा असमीया साहित्य में नारी एवं पुरुष-दोनों कथाकारों ने नारी विषयक रचनाएँ प्रस्तुति की हैं। लेकिन नारी की स्थिति का अगर स्वयं नारी वर्णन करती है तो वह अधिक वास्तविक और प्रभावशाली बन सकता है। समकालीन हिंदी तथा असमीया महिला उपन्यासकारों ने साहित्य की अन्य विधा के साथ-साथ उपन्यासों में भी नारी के जीवन में घटित समस्त समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। समकालीन उपन्यास साहित्य को इन महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नया मोड़ देने की कोशिश की है। इस युग में यह देखा गया है कि भारतीय नारी के जीवन मूल्य में बड़ा-सा परिवर्तन आया है। साथ ही यह परिवर्तन भारतीय नारी समाज में नारी मुक्ति आंदोलन में भी देखा गया है। स्त्री अपने अधिकारों के प्रति यहाँ काफी सजग-सी लगती है। लेकिन इसी परिवर्तन के साथ यह भी देखा गया है कि आधुनिकता का समर्थन करते-करते भारतीय नारी धीरे-धीरे अपनी संस्कृति और मूल्यों को भूलती जा रही है। इसके कारण भी नारी समाज में कई समस्याएँ देखने को मिलती हैं।

समकालीन हिंदी महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, मन्नु भंडारी, कृष्णा सोबती, दीप्ति खंडेलवाल, मंजुल भगत, राजी सेठ, सूर्यबाला, नासिरा शर्मा, दिनेश नंदिनी डालमिया, चित्रा मुद्गल आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। ठीक उसी तरह असमीया उपन्यास साहित्य में निरूपमा बरगोहाईं, मामोनी रायसम गोस्वामी, रीता चौधुरी, अनुराधा शर्मा पुजारी, मनिकुंतला भट्टाचार्य, पूरबी बरमुदई, अनुराधा शर्मा, बंदिता फुकन आदि लेखिकाओं के नाम प्रमुख रूप से आता है। हिंदी तथा असमीया दोनों भाषाओं की लेखिकाओं ने स्त्री संबंधित विविध साहित्य की नींव डालने की कोशिश की है। प्रस्तुत आलेख में हम हिंदी भाषा साहित्य की प्रमुख उपन्यासकार मृदुला गर्ग तथा असमीया भाषा में अनुराधा शर्मा पुजारी के कुछ प्रमुख उपन्यासों में चित्रित नारी चेतनाओं के बारे में आलोचना करेंगे।

मृदुला गर्ग :

मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' उपन्यास में आधुनिक महिला का स्वरूप उभरकर आया है। इस उपन्यास की एक नारी पात्र असीमा पुरुष की विरोधी है। वह पुरुषों द्वारा किया गया अत्याचार बिल्कुल भी सहन नहीं कर पाती है। असीमा सभी पुरुषों को हरामी समझती है। इसीलिए पुरुषों से बदला लेने के लिए वह कराटे सीखती है। असीमा, नमिता पर किए गए अत्याचार का भी विरोध करती है और नर्मदा पर जीजा के द्वारा जबर्दस्ती करने पर पुलिस में रिपोर्ट लिखवाती है। इस काल के उपन्यासों में नारी को कहीं-कहीं दुर्गा के रूप में भी दर्शाता गया है। आज की महिलाएँ अन्याय सहन नहीं करती हैं, बल्कि उसके विरुद्ध आवाज उठाती हैं। 'कठगुलाब' उपन्यास की स्त्री पात्र नर्मदा भी पति द्वारा किए गए अत्याचार का विरोध करती है और वह पति से कहती है- ''टाँगे तोड़कर सड़क पर फेंक दूँगी। तू मेरा रखैल था, कमा-कमाकर तुझे खिलाया मूसटण्डे।''[2] इसी से स्पष्ट होता है कि समकालीन उपन्यास में चित्रित महिलाएँ जागरूक हैं। अब वह पुरुष द्वारा किया गया शोषण का बर्दाश्त नहीं करतीं।

'कठगुलाब' उपन्यास में चित्रित प्राय: महिलाएँ बाँझपन का शिकार हैं। उपन्यास में चित्रित स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार से लांछित और प्रताड़ित हैं। मृदुला गर्ग के हिसाब से विवाह ही नारी उत्पीड़न का मूल केंद्र है। इस उपन्यास के अनुसार शारीरिक मिलन या संतान प्राप्ति के लिए किसी भी सामाजिक बंधन में बाँधना या विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है। कॉन्ट्रेक्ट से भी यह सब कार्य चलता है। इस संबंध में उपन्यास के एक स्थान पर इस तरह उल्लेख मिलता है, ''विवाह या प्रेम का अर्थ था एक अन्य प्राणी का मुझ पर और मेरा उस पर इस तरह

निर्भर होना कि एक के न रहने पर दूसरे को दुख मर्मांतक पीड़ा से गुजरना पड़ता है।''[3] 'कठगुलाब' उपन्यास में चित्रित प्राय: नारी पात्रों का मातृत्व के प्रति मोह दिखाया गया है। स्मिता, असीमा, नीरजा और नर्मदा आदि उपन्यास के नारी पात्र इसी समस्या से जुड़े हैं। स्त्री-पुरुषों के आधुनिक संबंधों की चर्चा करने वाला यह उपन्यास नारी चेतना को नए स्वर और तेवर के साथ प्रस्तुत करता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास 'चित्तकोबरा' की स्त्री पात्र मनु भी आधुनिकता से प्रभावित महिला है। मनु महेश के साथ अपना विवाहित जीवन सुखपूर्वक बिताती है। 'विमेन्स लीव' से प्रभावित मनु यौन-संबंधों की शुचिता का कोई मायने नहीं रखती। एक खुशहाल विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए भी मनु रिचर्ड के साथ शारीरिक संबंध बनाती है और उसके इंतजार में वह वक्त गुजारती है। मनु के लिए विवाहेत्तर संबंध रखना या शारीरिक संबंध रखना कोई बुरा काम नहीं है। उपन्यास में मनु बेझिझक अपने अनुभव का वर्णन करती हुई कहती है - ''अगर मेरा शरीर एक उरोज होता, एक दीर्घकाय विशाल, गुदगुदा उरोज। ग्लोब की तरह गोल, महेश उस पर पसर जाता।''[4] मनु अपने पति से ऐसा भाव रखती है, फिर भी वह रिचर्ड से प्यार करती है, उसके साथ शारीरिक संबंध बनाती है। उससे जुदा होने के बाद भी उससे मिलने की उम्मीद करती है। मनु और रिचर्ड दोनों ही विवाहित व्यक्ति हैं। दोनों ही विवाहेत्तर संबंध में संतुष्टि का अनुभव करते हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने नारी को अपना जीवन अपनी इच्छानुसार सार्थक बनाते हुए दिखाया है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में मनीषा, जितेन की पत्नी है। लेकिन मनीषा जितेन के साथ खुश नहीं रहती। क्योंकि जितेन उसे समय नहीं दे पाता, वह दिन भर ऑफिस के काम में व्यस्त रहता है। जितेन मनीषा से प्रेम करता है और उसकी खुशी के लिए कार्य करता है। लेकिन जितेन के व्यस्त रहने के कारण मनीषा सहकर्मी मधुकर की तरफ आकर्षित होती है। मनीषा और मधुकर शादी कर लेते हैं। मधुकर से विवाह करने के बाद भी मनीषा खुश नहीं रह पाती तो फिर से वह जितेन के पास लौट आना चाहती है। इस उपन्यास में मनीषा का जितेन से तलाक लेना और उसके बाद मधुकर से प्रेम विवाह करना, इधर-उधर आत्मतुष्टि की तलाश करना, आधुनिक नारी का सजीव उदाहरण है। वह अपने परंपरागत संस्कारों से आगे निकलकर स्वतंत्र रूप से जीवन की शुरुआत करना चाहती है। इसीलिए अपनी भावना, अपना प्रेम किसी से नहीं छिपाती है। 'अनित्य' उपन्यास में काजल पति का 'दुर्व्यवहार' सहन करती रहती है। फिर तलाक के बाद वह उसका मानसिक शोषण करता है।

समकालीन हिंदी उपन्यासकार मृदुला गर्ग के उपन्यासों में स्त्री जीवन की विभिन्न समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में स्त्री शिक्षा के साथ-साथ उनकी अस्मिता की खोज भी की गई है। वह स्वयं अपना निर्णय स्थापित करने में समर्थ है। समकालीन समय की नारी पीड़ित, प्रताड़ित शोषित होकर घूट-घूटकर नहीं रहती, बल्कि अपना रास्ता स्वयं बनाने में विश्वास रखती है।

समकालीन असमीया उपन्यास में भी नारी चेतना सक्रिय रूप में दिखाया गया है। समकालीन समय के असमीया उपन्यास साहित्य जगत में अनुराधा शर्मा पुजारी का महत्वपूर्ण स्थान है। हृदय एक विज्ञापन, कांचन, साहेब पुरार बरषूण, मेरेङ; बोरागी नदीर घाट आदि उपन्यास के माध्यम से असमीया उपन्यास साहित्य एक नई धारा को प्रवाहित करने में सफल हुआ है। उनके लगभग सभी उपन्यास नारी केंद्रित रहे हैं। पुजारी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को उजागर करने की कोशिश की है। यहाँ हम अनुराधा शर्मा पुजारी के कुछ प्रमुख उपन्यासों में नारी चेतना के बारे में आलोचना करेंगे।

अनुराधा शर्मा पुजारी :

अनुराधा शर्मा पुजारी ने 'हृदय एक विज्ञापन' उपन्यास में उच्च शिक्षित आत्मनिर्भर नारी का जिक्र किया है। असमीया समाज की नारी स्वतंत्र और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रही है। वह किसी-न-किसी प्रकार से आत्मनिर्भर होना चाहती है। उपन्यास की नायिका भास्वती

एक विज्ञापन कंपनी में काम करती है। भास्वती विवाहित महिला है। उसका पारिवारिक जीवन सुखद होते हुए भी पति की व्यस्तता के कारण दुखी रहती है। पति से दूरियाँ बढ़ने के कारण भास्वती ऑफिस के सहकर्मी चिन्मय की तरफआकर्षित होती है। लेकिन समय रहते वह इस रिश्ते से मुकर जाती है और पति के पास वापस लौट आती है। भास्वती अपनी बहकती भावनाओं पर काबू पा लेती है। प्राइवेट कंपनी में नौकरी करने के कारण भास्वती को किसी भी समय अपनी ड्यूटी निपटाना पड़ता था। दूसरी ओर उसे कंपनी के बॉस से अनेक कटु बातें भी सुननी पड़ती थीं। भास्वती स्वयं कहती है – ''मुझे ऑफिस में विज्ञापन के नाम पर अनेक अनचाहे दृश्य देखना पड़ता था और कभी-कभी अश्लील वाक्य भी सुनना पड़ा था।''[5] इन सब समस्याओं का सामना करते हुए भास्वती अपने कर्म-जीवन में आगे बढ़ती है।

भास्वती के अलावा इस उपन्यास में महुवा और अन्य स्त्री पात्रों का वर्णन है। इनमें कुछ आत्मनिर्भर हैं और कुछ आत्मनिर्भर होना चाहती हैं। अपनी गरीबी को मिटाने के लिए गीता, माया जैसी स्त्रियाँ विज्ञापन के नाम पर देहदान या देहप्रदर्शन करने तक कुंठाबोध नहीं करतीं। असमीया समाज की समकालीन स्त्री अपनी पसंद से पुरुष साथी की कामना करती है। वह अपने आपको पहचानने में समर्थ है।

'कांचन' उपन्यास में भी उपन्यासकार ने गरीब लड़की कांचन के जीवन में आईं विभिन्न समस्याओं तथा घटनाओं का वर्णन किया है। कांचन गरीब घर की मेधावी छात्रा थी। पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह ज्यादा पढ़ाई नहीं कर पाई। हाईस्कूल पास करने के बाद ही कांचन नौकरी की तलाश में शहर चली आती है। सुंदरी कांचन का जीवन संघर्ष, शारीरिक शोषण का प्रारंभ कर्मस्थल से शुरू होता है। लेकिन वह अपने घर-परिवार के लिए अपने ऊपर हो रहे सभी उत्पीड़न, शोषण को सहन करती रहती। इसीलिए कांचन अपने जीवन में किसी मर्द पर विश्वास नहीं कर पाती। उपन्यास में कांचन अपने ऊपर हो रहे अत्याचार का विरोध तो करती है, लेकिन सफल नहीं हो पाती है। वह किसी-न-किसी प्रकार से पुरुषों का शिकार होती है। ननी से लेकर आकाश ज्योति तक- सभी पुरुष कांचन का इस्तेमाल केवल अपने फायदे के लिए करते हैं। आकाश ज्योति के झूठे प्रेम प्रस्ताव पर तंज करती हुई कांचन कहती है – ''मैं प्रेम या मोहब्बत की भाषा को नहीं समझती। लेकिन अगर आप चाहते हो तो दूसरों से कम डिमांड पर मेरे पास आ सकते हो।''[6] जिंदगी से लड़ाई कर करके अंत में कांचन मानसिक संतोलन खो बैठती है और जिंदा लाश बन जाती है। उपन्यास में एक स्त्री की भावना की कदर न करना, नारी का असहाय रूप, जबर्दस्ती अपनी इच्छा के विपरीत एक स्त्री के शारीरिक संबंध बनाने का लेखिका ने वास्तविक चित्रण किया है। कांचन अपनी इन समस्याओं से आगे बढ़ना चाहकर भी उस जंजीर से निकल नहीं पाती है।

अनुराधा शर्मा पुजारी के उपन्यास 'साहेब पूरार बरषूण' (साहेबपूरा की बरसात) की पृष्ठभूमि असमीया उपन्यास साहित्य में एक नया मोड़ लेकर आता है। उपन्यास का मुख्य चरित्र नारी पर केंद्रित है, जो थोड़ा-सा अलग है। उपन्यास की कथावस्तु का प्रारंभ बिहार के एक रेलवे स्टेशन से होता है। वर्षा ट्रेन से अपने भावी पति के साथ दिल्ली से असम आ रही थी। अचानक ट्रेन का एक्सीडेंट हो जाने के कारण रेल यात्रियों को बिहार में फँसे रहना पड़ता है। वर्षा प्रांतिक के न चाहते हुए भी लोगों को पानी देकर मदद करती है। एक लड़की होकर इस तरह अकेले लोगों की मदद करना वर्षा के भावी पति प्रांतिक को बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा था। वर्षा बिल्कुल स्वतंत्र और स्वच्छंद रहना पसंद करती है। इसलिए उसे प्रांतिक का रौब जमाता हुआ स्वभाव बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वर्षा 16 दिन बाद होने वाली शादी को छोड़कर 'इनसाइट' नामक एन.जी.ओ. से जुड़ जाती है। लोगों को अपने हिसाब से अपनी मर्जी से जीना पसंद होता है। कोई भी किसी के साथ जबर्दस्ती नहीं कर सकता। प्रांतिक ने जिस तरह वर्षा को उसकी मर्जी से काम करने के लिए और चलने के लिए कहा तो वर्षा प्रांतिक से कहती है-''सॉरी प्रांतिक, मेरे बारे में तुम

जो सोच रहे हो उसे लेकर मैं तुम्हारी बीवी कभी नहीं बन सकती। अगर मैंने तुमसे शादी कर ली तो मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा।'[7]

विवाह के पश्चात एक स्त्री का जीवन संपूर्ण माना जाता है। उसके बाद एक नारी अपनी स्वतंत्रता, अपना अस्तित्व खो देती है तो उस विवाह का कोई मतलब ही नहीं रहता। अगर विवाह के नाम पर नारी को अपनी स्वतंत्रता, अस्तित्व त्यागना पड़े तो यह एक सजग स्त्री के लिए संभव नहीं है। वर्षा भी इसलिए ऐसे प्रभाव से दूर रहकर स्वतंत्र रहना चाहती है। लेखिका अनुराधा शर्मा पुजारी भी इस उपन्यास में ऐसी ही नारी सत्ता को उजागर करना चाहती हैं, जो अपनी अस्तित्व के साथ जिंदा रहे।

उपन्यासकार अनुराधा शर्मा पुजारी के अन्य उपन्यास जैसे मेरेङ; बोरागी नदीर घाट, नाहरर निरिबिलि आदि में नारी चेतना का यथार्थ चित्रण मिलता है। इनका 'मेरेङ' उपन्यास असमीया समाज की साहसी महिला इंदिरा निरि जी के जीवन पर आधारित है। इसमें स्त्री के जीवन संघर्ष, कर्म जीवन, सामाजिक कार्यों का वर्णन है। बोरागी नदीर घाट तथा नाहरर निरिबिलि आदि में भी आत्मनिर्भर, सचेत नारी का वर्णन मिलता है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन को देखने के बाद हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हिंदी तथा असमीया भाषा के उपन्यास साहित्य में नारी चेतना का यथार्थ वर्णन मिलता है। समकालीन समय की स्त्री सजग है, सशक्त है। वह अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का डटकर का सामना कर सकती है।

दोनों भाषा के उपन्यासों में चित्रित नारी स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनना चाहती है। वह अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध करती है। इसका उदाहरण हमें दोनों भाषा के उपन्यास में मिलता है। हिंदी उपन्यास में कहीं-कहीं स्त्रियाँ को पुरुषों का बहुत अधिक विरोधी दिखाया गया है और उसे बदला लेना चाहती हैं। लेकिन असमीया उपन्यासों में चित्रित प्राय: स्त्रियाँ पुरुषों से बदला लेना नहीं चाहतीं, बल्कि उनसे दूर रहकर वह आगे बढ़ना चाहती है। दोनों भाषाओं के उपन्यासों में चित्रित स्त्रियाँ सचेत हैं, पढ़ी-लिखी हैं। उनमें जो कुछ भी असमानताएँ हमें नजर आती हैं, वह समाज, भौगोलिक परिवेश परिवेश आदि के कारण है। अत: अंत में हम यहीं कह सकते हैं कि समकालीन समय के हिंदी तथा असमीया उपन्यासकार मृदुला गर्ग और अनुराधा शर्मा पुजारी के उपन्यासों में वर्णित नारी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में सजग और सचेत है। वह अपने अधिकार तथा अस्तित्व के लिए लड़ना जानती है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सिंह पुष्पपाल, समकालीन हिंदी कहानी, पृ. सं.-32
2. संपा, बशरी अब्दुल वसीम गजाला माली गणपत बसंत, समकालीन महिला लेखन एवं नारी चेतना, पृ. सं.-120
3. गर्ग मृदुला, कठगुलाब, पृ.सं.-59
4. गर्ग मृदुला, चित्तकोबरा, पृ.सं.-69
5. शर्मा पुजारी अनुराधा, हृदय एक विज्ञापन, पृ.सं.-75
6. शर्मा पुजारी अनुराधा, कांचन, पृ.सं.-65
7. शर्मा पुजारी अनुराधा, साहेब पुरार बरषुण, पृ. 17

रघुवीर सिंह 'अरविन्द' की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

राजू सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय
सिलचर (असम) -788011
मो. 9707555550
ई-मेल:rajusingh.gu@gmail.com

कवि पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते यानी अंग्रेजी की यह कहावत कि Poets are born, not made रघुवीर सिंह 'अरविन्द' पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। प्रतिभा के बिना, अभ्यास के बल पर कवि चार-छह कदम ही चलते हैं, मंजिल तक नहीं पहुँच पाते। निस्संदेह रघुवीर सिंह 'अरविन्द' सहृदय भावुक और प्रतिभा संपन्न कवि हैं, यह बात उनकी विपुल काव्य-रचना के आधार पर सहज ही कही जा सकती है। रघुवीर सिंह 'अरविन्द' अपने जीवन एवं व्यवहार में मानवीय समानता के प्रबल पक्षधर हैं। वह मूल रूप से जाति-पाँति, छुआ-छूत एवं ऊँच-नीच की कलुषित भावना को मानव समाज की प्रगति, उत्थान एवं श्रेष्ठता में बाधक मानते हैं। उनके व्यक्तित्व का यही पक्ष उनके काव्य में मुखरित हुआ है। शताब्दियों से वर्गांतर के कारण शोषित, दलित एवं दीन-हीन दशा में पशुवत जीवन-यापन के लिए बाध्य, समाज के उपेक्षित वर्ग के उत्थान के प्रति दलितों-शोषितों के मसीहा बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर के सार्थक आक्रामक रवैये के फलस्वरूप हुए परिवर्तन का सर्वसाधारण के ज्ञानार्थ रूप को काव्य में दिखाने का प्रयास किया है।

कवि अपने समय के प्रभाव से भी अछूता नहीं रह सका है। वन-संपदा के विवेकहीन विनाश तथा उससे उत्पन्न पर्यावरण-प्रदूषण की स्थिति की ओर भी उसने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। एक सामाजिक अभिशाप को रेखांकित करने के उद्देश्य से दहेज की दावाग्नि में किशोरी-कलियों के जलने के दारुण दृश्य को भी उसने रूपायित किया है तथा 'अछूतोद्धार' जैसे विषय को भी उसने अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। इन सबके ऊपर आज के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में स्वार्थपरता के प्राबल्य एवं हार्दिक प्रेम के अभाव के प्रति भी उसने तीक्ष्ण कटाक्ष किए हैं। कवि ने अपने समसामयिक ज्वलंत समस्या मूलक प्रतिपाद्यों को अकुंठ भाव से स्पर्श किया है; आक्रोश से नहीं, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणिक जैसे प्रदूषणों पर कवि बड़ी शालीनता से प्रहार कर गया है। सामाजिक अभिशापों तथा रूढ़ियों एवं आधुनिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों तथा व्यक्ति की स्वार्थमय प्रीति के ढोंग

पर तीखे कटाक्ष भी किया है। सामाजिक चेतना के साथ ही साथ राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम का स्वर भी उनके काव्य में मुखरित हुआ है। अस्पृश्यता, जाति-पाँति और दलितों के प्रति उनके उद्गार स्थान-स्थान पर मार्मिकता के साथ प्रकट हुए हैं। निराश के अंधकार में से प्रकाश किरण की भाँति फूटता कवि का आशावादी स्वर कहीं आश्वस्त भी करता है कि इस भौतिकतावादी अंधड़ से अलग होकर व्यक्ति अपने नैतिक मूल्यों की रक्षा अवश्य कर लेगा।

'अंक-मालिका' गीत-संकलन में कवि ने अपनी संवेदनाओं के क्षणों को ही इन गीतों में नहीं बाँधा है, अपितु उसने अपने गीतों में समसामयिक समस्याओं, विसंगतियों एवं विषमताओं से भी जोड़ा है। किसी वाद या विचारधारा से कवि प्रतिबद्ध नहीं है, वरन स्वयं के अनुभवों और हृदयगत भावों को ही इन गीतों में आस्था के साथ अभिव्यक्त किया है। एक गीत में कवि अमीरी और गरीबी को लक्ष्य कर समाज में व्याप्त असमानता का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करता है, जो संवेदना से स्तर पर मन को झकझोर देता है -

'' ओढ़ते आसमाँ को हम,
बिछौना है बनी धरती।
क्षुधा से पेट भर जाता,
गरीबी आह क्यों भरती।।
अमीरी से कहो, कुछ दिन
फकीरी-साथ रह लेते ।।''[1]

सामाजिक परिवर्तन के लिए कवि बेचैन है और वह अपनी अंतर्वेदना को सहजता से पाठक के मन से जोड़ देता है। गरीबी की त्रासदी को एक अन्य गीत में मुखरित करते हुए कवि कहता है-

''तन ढकन के लिये घोर संघर्ष हो,
आदमी का कफन ही हमें सौंप दो।
तुम हमें मुक्त गगनी निशा सौंप दो,
टूटते भ्रम-विहग का सपन सौंप दो।''[2]

कवि का ग्रामीण अंचलों से निजी संपर्क है, उन क्षेत्रों की अनुभूति एवं वहाँ के परिवेश के न केवल बहिरंग को, अपितु अंतरंग को भी कवि ने अपने गीतों में संश्लिष्ट करने का स्तुल्य प्रयास किया है। 'गीत-गुंजन' काव्य संग्रह में कवि ने आत्माभिव्यक्ति या वैयक्तिकता

को स्थान दिया है-

''बचपन की तुतली भाषा ने,
घर-घर अलख जगाये।
किन्तु गरीबी की आँधी ने,
जलते दिये बुझाये।
हर प्यासे की प्यास बुझाता,
वह तट कब मिलता है ?
क्वारी के पग लगे महावर,
वह घर कब मिलता है ?''[3]

कवि रघुवीर सिंह 'अरविन्द' के गीतों में वैयक्तिकता ने अपनी परिधि में सामाजिक यथार्थ को भी समेट लिया है। भोला बचपन, भूख-प्यास, गरीबी, मानव-जीवन के अधूरे-टूटे सपने इन पर भी कवि की दृष्टि गई है। गीत सामाजिक संदर्भों से भी अछूते नहीं रहे हैं। 'गीत-गुंजन' में कवि ने चीनी आक्रमण, भारत-पाक युद्ध, बाढ़ की विभीषिका आदि को भी अपने गीतों का विषय बनाकर देश और समाज के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। बाढ़ का एक हृदय-विदारक चित्र इस प्रकार है -

''कितने बहे सिंदूर माँग के,
कितनों के सम्बल टूटे हैं।
सोये शाम कुआरे अँगना,
भोर हुआ अम्बर फूटे हैं।''[4]

भारत में अब भी ऊँच-नीच का भेद-भाव व्याप्त है। जोर-जबरदस्ती, बंधुआ-प्रथा, श्रम का शोषण आदि से भी तो मुक्ति नहीं मिली। भाई-भाई का ही गला काटने पर उतारू है। ऐसी धुएँ भरी राह में कुछ सूझे भी तो जैसे-

''बहुत गहरी जड़ें वाद की हो गई,
काटना अति कठिन है यहाँ।
पास का पग हमें दीखता ही नहीं,
राह में भर दिया है धुआँ।''[5]

आज के बदले-बहके परिवेश में कवि का मन दुखी हो उठता है और उसका दर्द सागर की तरह कविता में उमर पड़ता है। एक गीत में कवि कहता है-

''पात हर बोलता इस चमन का,
जाति से विष हमेशा पिया है।
ऊँच और नीच का, अंध-सागर,
धर्म की आड़ में ही जिया है।''[6]

कवि ने समाज में व्याप्त जाति-पाँति के भेद-भाव और धर्मांधता ने जो विघटन पैदा किया है, उस पर भी नए-नए प्रतीकों के माध्यम से आक्रोश व्यक्त किया गया है। गीति काव्य एक व्यक्तिनिष्ठ काव्य विधा है। इसमें व्यक्ति-मन की एकांत, गहन और रागात्मक अनुभूतियाँ एक लयात्मक परिधान में मुखर हो उठती हैं। संवेदनशील हृदय के पास अतीत की सुधियों की धरोहर होती है। भावुक कवि इनमें प्राय: तल्लीन हो जाता है और भविष्य की ओर देखने लगता है। कवि ने यहाँ इसका मार्मिक व्यंजना की है -

''खोल दिये सुधियों ने द्वार,
नया वर्ष आ ही गया।
जीवन के अँचरा को मैला मत कर देना,
जैसा यह पहना है, वैसा ही रख देना।
दीप जले हर देहरी द्वार,
नया पर्व आ ही गया।''[7]

गीति काव्य की वैयक्तिकता कवि की यथार्थपरक सामाजिक चेतना के प्रतिकूल नहीं पड़ती, क्योंकि व्यक्ति समाज का ही घटक होता है। यही कारण है कि 'गीत-गुंजन' की कई रचनाओं में समष्टिमूलक चेतना का उन्मेष दिखाई पड़ता है। कवि द्वारा संवेदित सामाजिक और राजनीतिक जीवन उसी की रचनात्मक प्रतिभा के बल पर कविता में विस्तार प्राप्त करता है। कवि की समर्पण भावना, निष्ठा तथा विश्वास ही उनके काव्य को जीवंत सरोकारों से जोड़ते हैं। डॉ. सुखदेव ने लोक और चेतना के संबंध को स्वीकार करते हुए कहा है कि - ''समाज में निरंतर परिवर्तनशील और संघर्षशील लोकसत्ता का अभिन्न अंग स्वीकार करना चाहिए।''[8] कविता की सार्थकता इस बात में है कि वह अपने समय को रूपायित करते हुए वर्तमान में भविष्य के संकेत छोड़ जाए। अतीत को इस शैली में आकलित करे कि वह वर्तमान से नितांत अलग-थलग न लगे, बल्कि काल की निरंतरता का एक छोर ही वह मालूम पड़े। मुक्तक-सतसई में कवि ने अपने कवि कर्म को सार्थक करते हुए कविता की इस शर्त को भली प्रकार निभाया है। इस सतसई में केवल रोमान और प्रकृति ही नहीं है, अपितु जीवन का संघर्ष भी है -

''बदचलन जग की हवा से, मनुजता सहमी हुई है।
गाँव-गलियों में किरन की, आस्था भी कम हुई है।।''[9]

किरण की आस्था, ज्ञान की ललक, नैतिक मूल्यों के संरक्षण और मानवतावादी दृष्टिकोण की कमी से वर्तमान युग स्पंदित हो रहा है। इस स्पंदन की निश्च्छल अभिव्यक्ति सतसई-परंपरा में जुड़ी एक और कड़ी रघुवीर सिंह 'अरविन्द' कृत मुक्तक-सतसई में मिलती है। कवि ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों और हादसों को गहराई के साथ कविता में चित्रित किया है। डॉ. ब्रजनाथ गर्ग लिखते हैं कि - ''आज की कविता की बात करते हुए हमें स्वनामधन्य, जाने माने कवियों के साथ-साथ नए और उभरे हुए युवा कवियों की कविताओं को भी दृष्टि में रखना होगा, क्योंकि ये लोग आज की समस्या बहुल जीवन के विभिन्न पक्षों आयामों और संवेद्यों को अपनी कविता का विषय बनाकर एक ओर अपनी रचना-प्रक्रिया का परिचय दे रहे हैं तो दूसरी ओर आज की कविता को बंधे हुए घेरों से निकालकर जीवन और

समाज के बहुरूपीय संघर्ष की अभिव्यक्ति द्वारा उसे तीव्र गति से जीवन की समतल भूमि की ओर अग्रसर कर रहे हैं। आज का कवि राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का केवल हस्र नहीं है, अपितु उसके प्रति जागरूक भी है और इसीलिए वह अत्याचार, अनाचार, अन्याय, आर्थिक विषमता, जातीयता, सांप्रदायिकता, अनुशासनहीनता, युवा आक्रोश तथा मूल्यहीन राजनीति को अपनी कविता का विषय बनाकर अपने साहस और दायित्व बोध का परिचय दे रहा है।''[10] वस्तुत: आम आदमी से अलग होकर न तो सामाजिक अस्तित्व रहेगा और न ही कविता अपने स्थायी महत्व को स्थापित कर सकेगी। इसीलिए महान कवि का कर्तव्य है कि वह साधारण जनता की दैनिक समस्याओं तथा उसके विरुद्ध निर्मित सामाजिक, विषमताओं को वाणी दें। जीवन मूल्य सभ्यता के विकास के साथ-साथ या तो मद्धिम होते जा रहे हैं या विपरीत दिशा की ओर बढ़ते जा रहे हैं। कुरीतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं। स्वयं को परम सत्ता के हाथों की कठपुतली मानने वाला मानव अब स्वार्थवश मानव के हाथों ही नाचने को विवश होने लगा है। अनेक प्रलोभन उसे घेरे हुए हैं। इसी मानसिकता को कवि ने इस ग्रंथ में उकेरा है।

धर्म के नाम पर और धर्म की आड़ में राजनीति-प्रेरित मारकाट एवं शोषण की जो प्रक्रिया चल रही है, उससे विक्षुब्ध हो कर कवि ने 'कर्म' का महत्व प्रतिपादन किया है-

''ईशा अल्ला ईशु का कब, ग्रंथ साहिब भेद देखा।
बस विधाता ने जनम से, कर्म का अभिलेख लेखा।।''[11]

प्रकृति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कर्मरत है। ऐसे में यदि मानव विविध छल-छद्मों से दूर रहकर कर्मलिप्त रहे, तभी जगत का कल्याण संभव है। कवि का मानना है-

''मानवता कर चिथड़े-चिथड़े,
दीन हो गया टुकड़े-टुकड़े।
दर्द आह निस्सार हो गये,
उर के दर प्रासाद हो गये।
पल-पल हो अपमान जाति का,
वंशवाली पुकारती।''[12]

इन गीतों में देश-प्रेम का स्वर पुन: पुन: मुखरित हुआ है। साथ-ही-साथ ही कुछ स्थानों के प्राकृतिक सौंदर्य को भी भावुक कवि ने गीत में पिरो कर उसके साकार-मनोरम चित्र खींचे हैं। कुछ गीतों में कवि-मन की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ शब्दों में ढल आई हैं। देश में स्वतंत्रता के पश्चात मानवता एवं नैतिकता के पतन पर कवि का आक्रोश फूट पड़ता है।

कवि सामाजिक विषमता से चिंतित हैं। जन्म से 'अस्पृश्य' माने जाने की विषम स्थिति की ओर कवि ने बार-बार संकेत दिया है। इसीलिए प्रसिद्ध दलित लेखिका विमल थोरात के अनुसार - ''दलित कविता, दलित जीवन के यथार्थ की कविता है, उसने दलित जीवन के हर क्षण, हर पीड़ा, हर एक वेदना और क्रांति गर्भ संवेदना को साकार किया है। दलित कवि के सामने भावावेग में बहने के अनेक अवसर थे, क्योंकि उन्होंने जीवन की बड़ी घिनौनी तस्वीर देखी है, परंतु उसकी कविता जीवन वस्तुगत यथार्थ को मूलाधार मानती है।''[13] दलित समाज की वेदना दुख तथा जीवन की सभी गतिविधियों को लेकर आज दलित साहित्य अपनी आवाज उठा रहा है। कवि रघुवीर सिंह 'अरविन्द' ने अपनी कविताओं में दलितों एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाई है। 'अस्पृश्यता' की बंजर भूमि पर प्रेम की फसल नहीं लहलहा सकती है। वह मानव-मानव के बीच की खाई को पाटने के लिए बेचैन हैं-

''जाति-बन्धन की समस्या, ज्यों खड़ी सुरसा सयानी।
बढ़ा रही जग में विषमता, फाड़ मुँह कहती कहानी।।''[14]

सतसई में कवि ने श्रम के महत्व को प्रतिपादित किया है। जगत में जो भी दृश्यमान प्रगति है, वह श्रम का ही प्रतिफल है, फिर भी श्रमिक की स्थिति चिंताजनक है। वह विषमता भी दूर होनी चाहिए। श्रम के आधार पर ही इस संसार के अजूबे खड़े हैं। कवि आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विषमताओं और हादसों को गंभीरतापूर्वक लेता रहा है। अत: यह स्वाभाविक है कि उनकी 'सतसई' में परंपरा और आधुनिकता का समुचित सामंजस्य होगा। वे एक ओर जीवन की 'क्षणभंगुरता', 'जरा-मृत्यु' आदि पारंपरिक विषयों

पर कलम उठाते हैं, दूसरी ओर छुआछूत, धर्मांधता, धर्म-राजनीति का गठबंधन, सांप्रदायिकता और अवमूल्यों को उनकी दृष्टि अनदेखा नहीं कर सकी है। दूसरे प्रकार की रचनाओं में न केवल परिवेश की प्रामाणिकता है, अपितु प्रखर जनधर्मी वैचारिकता के दर्शन भी होते हैं। उदाहरण के लिए यह रचना-

''धर्म के साये बन अब क्लांत पागलपन जगत के।
मधु पिलाते थे कभी जो, व्याप्त भय के जाल कल के।
चूमती भी रोज उठ कर, प्रेम-मंचित भावनाएँ।
अब मसल डाला किसी ने अंध होकर धर्म-पथ से।''[15]

इसी प्रकार दलितों को लेकर लिखी गईं रचनाओं में भी ताजगी और प्रासंगिकता है। वास्तव में दलित समुदाय ने भारतीय सामाजिक संरचना के भीतर एक लंबा संघर्ष किया है। इस संघर्ष में वे लगातार हताश और निराश भी हुए हैं, लेकिन उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा है। लंबे संघर्ष के बाद ही दलित समुदाय को केंद्र में थोड़ी सी जगह मिली है, अभी भी उनका संघर्ष जारी है। दलित कविता सदियों की पीड़ा, अपमान और तिरस्कार का गान है। दलित कवियों द्वारा वर्ण व्यवस्था, जातीय शोषण एवं दमन, अछूतोद्धार, जात-पात, छुआछूत के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करना दलित कविता में व्यक्त वह सामाजिक यथार्थ है। बाबूराव बागल इस संबंध में लिखते हैं- ''दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण व्यवस्था अर्थात द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात प्रेम, बंधुत्व, समता, भ्रातृत्वपूर्ण शांति और समृद्धि।''[16] वास्तव में दलित साहित्य में वर्ण व्यवस्था, भेदभाव के प्रति आक्रोश छुपा है, उसका उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना है। कवि को यह देखकर अचरज होता है कि सरस्वती के मंदिर अर्थात साहित्य-क्षेत्र में भी अस्पृश्यता की रूढ़ि बनी हुई है-

''सरस्वती के मंदिरों में, पंक्ति दलितों की अलग है।
तोड़ रिश्ते रेशमी क्या ? कर दिया घर से अलग है।।
रुठती होगी मलिन हो, हंसवाहिनि देख करके।
चन्द्रमा की चाँदनी या, रवि किरन किससे अलग है।।''[17]

कवि यहाँ उस धार्मिक व्यवस्था के प्रति सवाल उठा रहा है, जहाँ पर जन्म के साथ ही दलितों को बहुत से अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। कविता में लिखी बातें भारतीय समाज में ग्रामीण जीवन का यथार्थ हैं।

कवि के अनुसार दहेज-प्रथा का आरंभिक रूप संकट के समय जीवन यापन की आवश्यकता से भले ही जुड़ा रहा होगा, किंतु इधर व्यक्ति ने अपनी जरूरतों को जो अनावश्यक विस्तार और बाध्यता प्रदान की है; उसके फलस्वरूप दहेज-लोभ ने बहू-बेटियों को शर्मनाक और मर्मांतक पीड़ा पहुँचाई है। ये दहेज-लोभी असामाजिक तत्व हैं-

''इन दहेजी भेड़ियों को, रौंद डालो इस बतन से।
फिर दहेजों के अनल में, हो न बलि अवला कहीं पर।।''[18]

सभ्यता के विकास के साथ मानव जाने-अनजाने अनेक संकटों से घिर गया है। प्रदूषण एवं पर्यावरण-चिंता, यांत्रिकीकरण, आम जीवन में राजनीतिक दाँव-पेचों का प्रवेश, धर्मांधता आदि के साथ-साथ तमाम महानगरीय विडंबनाएँ व्यक्ति के सत्व को निचोड़ने में लगी हैं। सुविधावादी मानसिकता ने उसे निरंतर मूल्य-विमुख करने का प्रयास किया है। किंतु सभ्यता के इस प्रहर में भी कहीं-कहीं नैतिक मूल्यों के पावन स्त्रोत आह्लादित कर देते हैं। अभी सब कुछ नष्ट नहीं हो गया है। इसीलिए कवि आशावान है। उसे विश्वास है कि व्यक्ति इस भौतिकवादी अंधी दौड़ से अलग होकर निश्चय ही अपने सत्व की रक्षा करेगा। इसी विश्वास को कवि ने सहज-सरल ढंग से शब्दबद्ध किया है। कहीं-कहीं तत्वों और मनोभावों का विवेचन भी कवि के अनुभवों को उजागर करता है। कवि ने सतसई में सर्वत्र एक ही छंद का निर्वाह किया है। कुछ स्थलों पर विविध तत्वों, मूल्यों भावों और कुरीतियों का स्वरूप, दर्शन तथा कवि की मानवीय चिंता इस सतसई की विशेषता है। मानव जीवन की विविध अवस्थाएँ धर्म, अस्पृश्यता, दहेज-प्रथा, कर्म, प्रदूषण, सभ्यता, विषमता, श्रम जैसे विषयों को न्यायपूर्वक निभाया है। मानव-मन और विविध मनोविकारों जैसे भय, श्रद्धा, क्षमा, दया, क्रोध काम, मद, लोभ, हिंसा आदि सूक्ष्म विषयों पर भी शताधिक मुक्तक लिखे गए हैं। कोई भी युगीन

विषय-प्रसंग कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है। विषय भाषा की दृष्टि से भाव की दृष्टि से सहज ही संप्रेषणीय बन गए हैं। प्रतीकों और बिंबों की सार्थकता सराहनीय है। जटिलता कहीं नहीं है। मुक्तक मन को छूते हैं और विचारों की सात्विकता ने कविता की उदात्तता को गरिमा प्रदान की है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रघुवीर सिंह 'अरविन्द' के गीत भावपूर्ण और सरस तो हैं ही, आत्मानुभूति के साथ-साथ युग-बोध से भी ओत-प्रोत हैं। वे पाठक के मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। कवि ने अपने भावों की सहज रूप में अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। जहाँ तक भाव-पक्ष का प्रश्न है, कवि निश्चित रूप से बहुत धनी है। उनके गीत की लयात्मकता का सीधा-सीधा संबंध छंद निर्वाह से है। आज के युग में जब कविता विजातीयता एवं अपसंस्कृति के पाटों में पिसती दीखती है, तब ऐसी जीवंत एवं सरस कविता का समाज में स्वागत होना चाहिए। कवि रघुवीर सिंह 'अरविन्द' ने अपने कविता संग्रह 'गीत-गुंजन', 'अंक मलिका', और 'मुक्तक सतसई' में सहज सरल ब्रजभाषा और खड़ी बोली का प्रयोग किया है। इस प्रकार सहृदय कवि 'अरविन्द' की इस विविध रस-भावमयी कृति में परंपरा और आधुनिकता का मणि-कांचन योग है। कवि ब्रजभाषा के सिद्धहस्त कवि हैं। उनके कृतियों की भाषा और छंद पर अपना अधिकार का प्रमाण दिया है। गीत-गुंजन से स्पष्ट है कि खड़ी बोली कविता की प्रकृति और संरचना से वे अच्छी तरह अवगत हैं। अत: सहज ही इस आशा को बल मिलता है कि सहृदय कवि रघुवीर सिंह 'अरविन्द' दीर्घ काल तक ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली साहित्य को अनेक बहुमूल्य ग्रंथ-रत्न देने में सक्षम होंगे। ❑

संदर्भ सूची :

1. अंक-मालिका ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द', पृ.सं.-11
2. वहीं, पृ.सं. 32
3. गीत-गुंजन ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द, पृ. सं.-63
4. वहीं, पृ.सं. 75
5. वहीं, पृ.सं. 51
6. अंक-मालिका ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द', पृ.सं.-51
7. गीत-गुंजन ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द, पृ. सं.-53
8. समाजशास्त्र ; डॉ. सुखदेव सिंह, पृ.सं.-45
9. मुक्तक सतसई ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द', पृ.सं.-371
10. वर्तमान साहित्य ; कविता विशेषांक, पृ.सं.-355-356
11. मुक्तक सतसई ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द' पृ.सं.-209
12. गीत-गुंजन ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द, पृ. सं.-80
13. दलित चेतना साहित्य ; रमणिका गुप्ता, पृ.सं.-133
14. मुक्तक सतसई ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द' पृ.सं.-237
15. वहीं, पृ.सं. 208
16. दलित साहित्य, उद्देश्य और वैचारिकी ; बाबूराव बगुल, पृ.सं.-25
17. मुक्तक सतसई ; रघुवीर सिंह 'अरविन्द' पृ.सं.-236
18. वहीं, पृ.सं. 249

आलेख

मोहन राकेश के नाटकों में चित्रांकित स्त्री-पुरुष संबंध : एक अध्ययन

संगीता कुमारी पासी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम-781001
मो : 8486132971
ई-मेल : sangeetapasiv991@gmail.com

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों में एक प्रमुख, सशक्त, जागरूक और चर्चित नाटककार माने जाते हैं। आधुनिक कालजयी नाटककार मोहन राकेश ने अपनी प्रयोगशीलता, नाट्यभाषा, रंगमंचीय कुशलता के बल पर हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध करते हुए इस परंपरा को आगे बढ़ाने का अद्वितीय कार्य किया। उनके द्वारा रचित नाटक हिंदी नाट्य साहित्य के क्षेत्र में कथ्य, शिल्प एवं रंगदृष्टि से मील के पत्थर माने जाते हैं। हिंदी नाट्य साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदानों को रेखांकित करते हुए शीर्षस्थ रंगशिल्पी इब्राहिम अल्काजी ने लिखा है, ''कुछ नाटककारों में बीज बोने की क्षमता होती है। अपने लेखन से वे ऐसे वातावरण का सृजन करते हैं, जिससे दूसरों में प्रतिक्रिया होती है और लिखने की प्रेरणा जन्मती है। मोहन राकेश ऐसे ही नाटककार हैं। उनकी अकाल मृत्यु से भारतीय नाट्य-आंदोलन की तो दु:खद क्षति हुई ही, हिंदी नाट्य की विशेष रूप से हुई।''[1]

इब्राहिमजी का उपरोक्त वक्तव्य हिंदी नाट्य साहित्य के इतिहास में राकेश की युगांतकारी भूमिका को उद्घाटित करता है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में मानवीय संबंधों और उनसे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को पूरी तत्परता से पकड़ने का हर संभव प्रयास किया है। उनका यह प्रयास मूलत: परिवर्तित परिवेश में बनते-बिगड़ते सामाजिक मूल्यों, व्यक्तिगत संबंधों और स्त्री-पुरुष के आपसी रिश्तों में आए विघटन को अलग-अलग रूपों में पहचानने और रेखांकित करने में रहा है। उन्होंने विशेषकर स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। यही कारण है कि राकेश के प्रत्येक नाटक में सर्वत्र संबंधों की सूक्ष्मता, तनाव, ऊब, संशय, बोरियत, अरुचि, मूल्यहीनता इत्यादि अवस्थाओं का यथार्थ चित्रण दृष्टिगत होता है।

मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में स्त्री-पुरुष संबंधों के विविध आयामों पर प्रकाश डाला है। मल्लिका यथार्थ से कोसों दूर कल्पना के संसार में विचरण करते हुए कालिदास से नि:स्वार्थ प्रेम करती है। वह कालिदास के प्रति एकनिष्ठ और समर्पित होने के पश्चात भी उसकी भार्या नहीं

बन पाती है। मल्लिका जीवन की कुछ कठोर जरूरतों की पूर्ति हेतु विलोम से जुड़ तो जाती है, परंतु कालिदास के प्रति उसके मन में प्रेम और विश्वास पूर्ववत बना रहता है। वह प्रेयसी एक ओर जहाँ अपने प्रेमी को कामयाबी के शिखर पर आरूढ़ करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है, वहीं उसका प्रेमी महान बनकर दोहरा जीवन जीता हुआ, किसी अन्य से विवाह करके आगे बढ़ जाता है। वह न-न करते हुए भी राज्य द्वारा मिले राजकवि का सम्मान स्वीकार कर लेता है; मातृगुप्त के रूप में कश्मीर का शासक बनकर अपनी प्रेयसी मल्लिका के बलिदानों को भूल जाता है। परंतु मल्लिका उसकी प्रतीक्षा में एक-एक दिन काटती और सामाजिक शोषण का शिकार होती हुई असहाय स्थिति में वारांगना का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाती है। अंत में मल्लिका की कारुणिक स्थिति देखकर भी कालिदास अकेला असहाय स्थिति में छोड़कर कायरतापूर्वक भगोड़े की भाँति भाग निकलता है।

मल्लिका नि:स्वार्थ भाव से अपने प्रेमी की मंगल कामना करती रहती है। उसका कहना है, ''मैंने भावना में भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है...।''[2] मल्लिका चाहती तो साधनहीन कालिदास से कोई संबंध नहीं रखती अथवा किसी दूसरे से विवाह करके सुखी-सम्पन्न जीवन बिता सकती थी तथा कालिदास से विवाह करके उसकी पत्नी बनकर उज्जयिनी जा सकती थी और अपने प्रेमी को राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह करने में बाधा देते हुए अपने अधिकारों की घोषणा कर सकती थी। परंतु उसने कभी भी प्रेम में प्रतिदान की इच्छा नहीं की। यही कारण है कि राजकुमारी द्वारा दिए गए विभिन्न प्रलोभनों से अपने स्वाभिमान को आहत नहीं होने देती है।

विलोम भी मल्लिका को उसकी इच्छानुसार सुख व शांति देने में असमर्थ होता है। जो विलोम बिना किसी काम के मल्लिका के घर का चक्कर लगाता तथा उसके भावी जीवन के प्रति चिंता व्यक्त करता है, वही व्यक्ति मल्लिका से विवाह नहीं करता, बल्कि उसका शारीरिक शोषण करता है। इस प्रकार विलोम का मल्लिका के प्रति स्वार्थी प्रवृत्ति ही प्रकट होती है। डॉ. रमा शुक्ल के शब्दों में, ''मल्लिका कालिदास के प्रति पूर्ण रूप से आस्था रखती है, परंतु परिस्थिति के चक्र में फँसकर विलोम से जुड़ती है। मल्लिका का आजीवन प्रवंचना सहना आधुनिक नारी की ही पीड़ा का प्रतीक है। आज हमारे समाज में मल्लिका जैसी अनेक महिलाएँ हैं, जो परिस्थिति के भँवर में फँस कर नारकीय जीवन व्यतीत कर रही हैं।''[3]

मल्लिका शुरू से लेकर अंत तक दूसरों के लिए ही जीती है। वह कभी भी अपनी इच्छाओं को प्रकट नहीं करती और न ही प्रतिकूल परिस्थिति के समय हताश ही होती है, परंतु कालिदास की उपेक्षा उसे अंदर से तोड़ डालती है। वह अपने प्रेम को अभाव के प्रकोष्ठ में दफनाकर दो विरोधी भावों में बँट जाती है, जिसके एक हिस्से पर कालिदास का अधिकार है, तो दूसरे पर विलोम का। स्वयं नाटककार उसके प्रसंग में लिखते हैं, ''...मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है, जो ऊपर से झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं

होती।''[4] मल्लिका की बर्बादी में सबसे बड़ा हाथ कालिदास का होता है। एकमात्र उसी के कारण वह गाँव और बाहर बदनाम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप कोई व्यक्ति उससे विवाह नहीं करना चाहता है। कालिदास साधन संपन्न होने के बावजूद भी मल्लिका के स्थान पर प्रियंगुमंजरी को अपनी पत्नी बनाता है।

प्रस्तुत नाटक में स्त्री-पुरुष संबंध का दूसरा स्वरूप प्रियंगुमंजरी और कालिदास के संबंध में दिखाई देता है। प्रियंगुमंजरी एक पत्नी होने के नाते पति को प्रसन्न रखने का पूरा प्रयास करती है। वह हमेशा इसी कोशिश में लगी रहती है कि कालिदास का मन किसी भी कारण से अशांत न हो। इस संबंध में वह मल्लिका से कहती है, ''...वे भी जब-तब यहाँ के जीवन की चर्चा करते हुए आत्मविस्मृत हो जाते हैं।...ऐसे अवसरों पर उनके मन को संतुलित रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।...''[5] वह पति की सेवा-शुश्रुषा में कभी कोई कमी नहीं रहने देती है। कालिदास को अपने परिवार और ग्राम प्रदेश का अभाव न खले, इसी उद्देश्य से वह मातुल को परिवार सहित तथा ग्राम के थोड़े बहुत परिवेश को उज्जयिनी ले जाने की व्यवस्था करती है। इतना कुछ करने के पश्चात भी वह पति द्वारा छली जाती है प्रियंगुमंजरी। पत्नी होने के समस्त दायित्वों का ईमानदारी से उचित निर्वाह करते हुए भी अकेली रह जाती है। अत: स्पष्ट दिखाई देता है कि इस संबंध में स्त्री के साथ अन्याय होता है, जबकि उसकी कोई गलती नहीं होती है। प्रियंगुमंजरी और कालिदास का रिश्ता गैर-बराबरी पर आधारित होने के कारण स्त्री को उसका उचित अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

'लहरों के राजहंस' नाटक में स्त्री-पुरुष के संबंध में अस्थिरता, अलगाव तथा अनिर्णय की स्थिति से उपजे मानव जीवन की त्रासदी को रेखांकित किया गया है। नायिका एक अनिंद्य सुंदरी है तथा उसे अपने सौंदर्य पर बहुत अभिमान है। सुंदरी को पूरा विश्वास है कि उसका पति नन्द उसके सौंदर्याकर्षण से कभी मुक्त नहीं होगा। परंतु नन्द और सुंदरी का जीवन-दर्शन एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। यही कारण है कि दोनों का जीवन को देखने और जीने का नजरिया बिल्कुल भिन्न है, जो उनके संबंधों में तनाव, अंतर्द्वंद्व तथा आत्मसंघर्ष की स्थिति उत्पन्न करती है। नन्द और सुंदरी का संबंध ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहाँ दोनों की टकराहाट, तनाव, संशय और पीड़ा ने उनके रिश्ते की गरमाहट को शून्य कर दिया है। दोनों अपनी-अपनी अस्मिता को बचाये रखने हेतु विकट परिस्थितियों से जूझते हुए अलगाव की यातना को भोगने के लिए विवश हैं। उनका संबंध आज के वैवाहिक जीवन की विडंबनाओं को उद्घाटित करता है। लेखक ने इन दोनों ऐतिहासिक पात्रों को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत कर वर्तमान स्त्री-पुरुष संबंधों में व्याप्त विसंगतियों का जीता जागता स्वरूप उजागर किया है।

नन्द आज के व्यक्ति की तरह दिशाहीन है, जिसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं है। वह निश्चय तथा अनिश्चय की स्थिति में दर-दर की ठोकरें खाता हुआ घड़ी की पेंडुलम जैसा झूलता है। लहरों पर तैरते हुए राजहंसों की तरह उसका मन कभी सुंदरी की ओर तो कभी गौतम बुद्ध की ओर झुकता है। सुंदरी हर संभव प्रयास तो करती है, परंतु अपने पति को दीक्षा ग्रहण करने से रोक नहीं पाती है और उसका सारा रूपाकर्षण शिथिल हो जाता है। वह नन्द को केशहीन अवस्था में देखकर कहती है कि वह वापस नहीं आए हैं, जो व्यक्ति वापस आया है वह उसका पति नन्द नहीं है। ''वे नहीं आए, अलका! जो लौटकर आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।...''[6] नंद सुंदरी के इस बर्ताव से पीड़ित होकर अपने कटे हुए शोभा केशों की तलाश में तथागत के पास चला जाता है। सैनिक आकर सुंदरी को बताता है कि ''...उन्होंने कहा है कि...वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं। जाकर तथागत से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने उनके केशों का क्या किया? और यदि कुछ नहीं किया, तो क्या उनके केश उन्हें लौटाए जा सकते हैं? उनकी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है...''[7] यह सब सुनकर जड़-सी रह जाती है।

नंद और सुंदरी के इस तनावपूर्ण संबंध के यथार्थ पर विचार करते हुए डॉ. सुरेश अवस्थी जी लिखते हैं, ''...जिस सुंदरी ने कहा था कि 'नारी का अपकर्षण

अंततः देखा और समझा जा सकता है कि राकेश के नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंधों में व्याप्त कठोरता एवं जटिलता आज के आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम हैं, जिसमें मूलतः परिवर्तित आर्थिक अभाव और सामाजिक मूल्य ही विशेष जिम्मेदार हैं। नाटककार ने स्त्री-पुरुष समस्याओं को यथार्थता से रेखांकित करते हुए भी इस सत्य पर प्रकाश डाला है कि वर्तमान मानवीय संबंधों में जो यंत्रणा आज मौजूद है। उसका उत्तरदायी भी स्वयं इंसान ही है, क्योंकि वह संबंधों में रागात्मक वृत्ति से मुक्त होने का प्रयास किए बगैर ही उन संबंधों में नवीन मूल्यों की तलाश करने का प्रयास करता है।

पुरुष को गौतम बुद्ध बना देता है', वही सुंदरी नन्द को भिक्षु-वेश में देखकर अपनी इस भारी पराजय से विक्षुब्ध हो उठती है। और नन्द सुंदरी के इस गहरे विक्षोभ को नहीं समझता; वह अपनी पत्नी के संतोष के लिए अपने शोभा-केश लाने चला जाता है।...[8]

आलोच्य नाटक में दूसरा स्त्री-पुरुष संबंध अलका और श्यामांग के रिश्ते में देखा जा सकता। अलका के मन में श्यामांग के प्रति असीम रागात्मकता की भावना विद्यमान है, परन्तु वह इसे कभी प्रकट नहीं करती है। श्यामांग द्वारा कमलताल के राजहंसों के जोड़ो में से एक को पत्थर फेंकर आहत करने के अपराध से बचाने का पूरा प्रयास करती है। वह चाहती है कि श्यामांग अपने अपराध के लिए क्षमा माँगे। जब वह सुंदरी से क्षमा नहीं माँगता है तो अलका उसको बचाते हुई कहती है, ''मैं कब से देख रही हूँ कि वह अपने-ही-अंदर कहीं खोया जा रहा है...कि उसके मन में कुछ ग्रंथियाँ-सी उलझ गई हैं, जिसके कारण वह...उसे सहानुभूति और उपचार की आवश्यकता है देवी! मैं कितना चाहती थी कि उसके लिए मैं...कि उसके लिए कोई ऐसा कुछ कर सके जिससे वह...''[9] श्यामांग को दंडित होता देख, उसके चेहरे पर एक गहरी उदासी छा जाती है। अलका की इस स्थिति को सुंदरी भाँप लेती है और श्यामांग को क्षमा करते हुए, उसके देखभाल की जिम्मेदारी अलका को ही सौंपती है। ज्वर से पीड़ित श्यामांग का वह पूरी रात जागकर सेवा करती है। इस प्रकार अलका, श्यामांग के प्रति समर्पित एकनिष्ठ प्रेमिका है। दोनों के प्रेम में वासनात्मकता का लेश मात्र भी नहीं है।

'आधे-अधूरे' नाटक में एक ऐसे समकालीन दंपति की कहानी वर्णित है, जिनकी आपस में बिल्कुल नहीं पटती। दोनों ने एक-दूसरे को डाँटते-फटकारते हुए बाईस वर्ष का वैवाहिक जीवन पार कर लिया है। महेंद्रनाथ और सावित्री दोनों एक-दूसरे को अपने इच्छानुसार चलाना चाहते हैं। ऐसा न हो पाने पर महेंद्रनाथ सावित्री को मारता-पीटता है। इस संबंध में सावित्री कहती है, ''...महेंद्र घर के अंदर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से सिर पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है।...वही महेंद्र जो दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हल्के-हल्के मुस्कुराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोच लेगा, कब किसे फाड़ खाएगा! आज वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है।...बोल चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ?...[10] ऐसी स्थिति में पत्नी अपनत्व की तलाश में बाहर के पुरुषों के संपर्क में आती है।

महेंद्रनाथ घर की सारी पूँजी घाटे में गँवाकर हृदय रोग और रक्तचाप का शिकार बनकर घर में ही पड़ा रहता है। सावित्री को घर चलाने हेतु नौकरी करनी पड़ती है। प्रत्येक पत्नी की इच्छा होती है कि उसका पति स्वतंत्र व्यक्तित्व वाला हो। सावित्री अपने लिए एक पूर्ण पुरुष चाहती है। उसके अनुसार, ''आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो?...जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी-न-किसी का

सहारा ढूंढ़ते पाया है।''[11] वह चाहती है कि उसका पति गृहस्थी को चलाने में उसका हाथ बँटाए, किंतु महेंद्रनाथ एक व्यक्तित्वहीन आदमी है और उसमें अपने फैसले लेने की क्षमता नहीं है। यहाँ तक कि स्वयं के विवाह का निर्णय भी वह मित्रों से पूछकर करता है। यह सब देख-सुनकर सावित्री कड़वी और चिड़चिड़ी हो जाती है।

सावित्री और महेंद्रनाथ घर के दमघोंटू वातावरण से स्वयं को काटकर कुछ दिन एक-दूसरे से अलग रहते हैं, परंतु कुछ दिनों के उपरांत फिर से वही स्थिति एकाएक करवट लेती है और यही सिलसिला बार-बार दोहराया जाता है। 'आधे-अधूरे' नाटक के संदर्भ में डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' लिखते हैं, ''मध्यम वर्गीय परिवार की विसंगतियों के कटु यथार्थ का चित्रण इस नाटक में किया गया है। यह मध्य वर्गीय स्तर से खिसक कर निम्न मध्य वर्गीय स्तर पर आए परिवार की कहानी है। इसमें एक ओर स्त्री-पुरुष के 'तनाव-लगाव' का दस्तावेज है तो दूसरी ओर अंदर से बिखरे, किंतु जीने को विवश जिंदगी की लड़ाई पूरी तरह लड़ पाने की छटपटाहट लिए हुए मनुष्य की दारुण कहानी को चित्रित किया गया है।''[12]

इस नाटक में स्त्री-पुरुष का एक प्रमुख संबंध बिन्नी और मनोज का है। बिन्नी महेंद्रनाथ और सावित्री की बड़ी लड़की है, जो रातों-रात चोरी-छुपे मनोज के साथ घर से भाग निकलती है। दोनों भागकर अपना घर तो बसाते हैं, परंतु इनको कभी भी अपने रिश्ते में लगाव व आत्मीयता महसूस नहीं होती। बिन्नी और मनोज का संबंध धीरे-धीरे टूटने के कगार पर आ पहुँचता है। मनोज हमेशा बिन्नी को शर्मिंदा करता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी मनहूस चीज लाई है, जो दोनों के आपसी संबंध में जहर घोल रही है। बिन्नी मनोज के साथ घर से भाग निकलने से पहले समझती थी कि वह उसे बेहतर जानती है, परंतु विवाह के पश्चात विभिन्न कारणों से उसका यह विश्वास टूट जाता है। वह सावित्री से कहती है, ''मेरा मतलब है...कि शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकर...अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।''[13] दोनों एक साथ एक छत के नीचे रहकर भी अजनबियों-सा बर्ताव करते हैं। अत: स्पष्ट परिलक्षित होता है कि बिन्नी और मनोज के रिश्ते में सुख और शांति का नितांत अभाव है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक स्त्री-पुरुष के बीच लगाव और अलगाव को प्रामाणिक तौर पर उद्घाटित करता है।

'पैर तले की जमीन' नाटक की विषय-वस्तु भले ही मृत्युबोध से उपजे अस्तित्व संकट को केंद्र करके लिखी गई है तथापि इसमें स्त्री-पुरुष के संबंधों में व्याप्त अकेलापन, तनाव, अजनबीपन, संशय, संत्रास, टूटने व बिखरने की नियति को भी उजागर किया गया है। सलमा को एक हताश, बेबस और लाचार पत्नी के रूप में उद्घाटित किया गया है। अयूब की नजर में सलमा केवल एक कब्रिस्तान के समान है, जिसने अपने अंदर बहुत कुछ दफना रखा है। उसके लिए पत्नी और घर का कोई मतलब ही नहीं है। अयूब का कहना है, ''जो जिंदगी मैं जी रहा हूँ, वह मेरी अपनी जिंदगी नहीं है। मैं चाहे जितने साल उसे ढोता रहूँ, फिर भी कभी उसे अपना नहीं कह सकूँगा।''[14] अयूब सलमा को संदेह की निगाह से देखता है, जिसके कारण दोनों के शादीशुदा जीवन में एक उदासी, अविश्वास, अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। दो बच्चे होने के बावजूद भी उनमें आपसी आत्मीयता का सर्वथा अभाव है। अयूब अपने दांपत्य जीवन को अर्थहीन और शापित मानता है।

सलमा एक पत्नी होने के नाते अयूब की उम्मीदों पर खरी उतरने का हर संभव प्रयास करती है, परंतु बदले में पति से उसे सिर्फ उपेक्षा ही मिलती है। वह अयूब से कहती है, ''मुझे तुम हमेशा चेहरों को लेकर शर्मिंदा कर सकते हो...खुद भी अगर शर्मिंदा हो सकते तो शायद हम एक-दूसरे के चेहरों को ज्यादा पहचान पाते...।''[15] अयूब के मन में सलमा को लेकर संशय है कि वह अपने बचपन के मित्र डॉक्टर से प्रेम करती है, जबकि उसके इस धारणा में कोई सच्चाई नहीं है। वह षड्यंत्र करके सलमा और डॉक्टर को आमने-सामने लाकर

अपनी शंका को सच्चाई में बदलने की दोगली हरकतें तो करता है, परंतु असफल रहता है, क्योंकि सलमा शादी के बाद तन और मन से अयूब के प्रति समर्पित रहती है। अयूब स्वयं अपने दांपत्य संबंध को लेकर ईमानदार नहीं है। वह घर से बाहर स्त्रियों के साथ अपनी इच्छानुसार संबंध बनाए रखना चाहता है। अयूब रीता और नीरा को अपनी वासना का शिकार बनाता है। सलमा उसे इस प्रकार की घिनौनी हरकतों से तंग आकर खुदकुशी करके उससे हमेशा के लिए छुटकारा पाना चाहती है। अयूब से वह कहती है, ''चले जाओ यहाँ से...हट जाओ मेरे पास से...मैं तुमसे नफरत करती हूँ...नफरत...नफरत।''[16]

अंतत: देखा और समझा जा सकता है कि राकेश के नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंधों में व्याप्त कठोरता एवं जटिलता आज के आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम हैं, जिसमें मूलत: परिवर्तित आर्थिक अभाव और सामाजिक मूल्य ही विशेष जिम्मेदार हैं। नाटककार ने स्त्री-पुरुष समस्याओं को यथार्थता से रेखांकित करते हुए भी इस सत्य पर प्रकाश डाला है कि वर्तमान मानवीय संबंधों में जो यंत्रणा आज मौजूद है। उसका उत्तरदायी भी स्वयं इंसान ही है, क्योंकि वह संबंधों में रागात्मक वृत्ति से मुक्त होने का प्रयास किए बगैर ही उन संबंधों में नवीन मूल्यों की तलाश करने का प्रयास करता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. जैन, नेमिचन्द्र, संपा, 'मोहन राकेश का सम्पूर्ण नाटक', प्रथम संस्करण, दिल्ली : राजपाल एंड सन्ज, 2018, पृ. 455
2. राकेश, मोहन, 'आषाढ़ का एक दिन', सत्ताईसवाँ संस्करण, दिल्ली, राजपाल एंड सन्ज, 2014, पृ.15
3. शुक्ला, डॉ. रमा. 'मोहन राकेश के नाटकों में नारी भावना', प्रथम संस्करण, कानपुर: अन्नपूर्णा प्रकाशन, 2007, पृ. 67
4. राकेश, मोहन, 'लहरों के राजहंस'. पुनर्मुद्रित संस्करण, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1997, पृ. 20
5. राकेश, मोहन, 'आषाढ़ का एक दिन'. सत्ताईसवाँ संस्करण, दिल्ली: राजपाल एंड सन्ज, 2014, पृ. 70-71
6. राकेश, मोहन, 'लहरों के राजहंस'. पुनर्मुद्रित संस्करण, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1997, पृ.120-121
7. पूर्ववत, पृ.124
8. पूर्ववत, पृ.12
9, पूर्ववत, पृ.46
10. राकेश, मोहन, 'आधे-अधूरे', बाईसवाँ संस्करण, दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 2018, पृ.90-91
11. पूर्ववत, पृ.88-89
12. मंगलेश, डॉ. अशोक कुमार, 'मोहन राकेश का नाट्य-साहित्य: तात्विक विमर्श', प्रथम संस्करण, मेरठ: उत्कर्ष प्रकाशन, 2016, पृ.75
13. राकेश, मोहन, 'आधे-अधूरे', बाईसवाँ संस्करण. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 2018, पृ. 31
14. राकेश, मोहन, 'पैर तले की जमीन', आवृत्ति संस्करण, दिल्ली: राजपाल एंड सन्ज, 2017. पृ. 53
15. पूर्वव., पृ. 61
16. पूर्ववत, पृ. 76

आलेख

हिंदी कहानियों में हास्य-व्यंग्य के स्वरूप

अर्जुन पासवान

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001
मो : 8486373371

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

शोध निर्देशक, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001

शोध सार :

कहानी प्रत्येक भाषा-साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा हैं। साहित्य के आरंभ से पहले हमारे देश में अनेक भाषाओं के अनेक लोककथाएँ मौखिक तौर पर प्रचलित रही हैं। आज कोई बिरला ही होगा, जिसने अपने बचपन में अपने दादा-दादी,नाना-नानी या परिजनों से कोई कहानी सुनी न हो। कहानी की संरचना शैली ही इसकी प्राणतत्व हैं, क्योकि किसी भी कहानी का मूल उद्देश्य एवं उसकी सफलता उसकी संरचना पद्धति पर ही आश्रित होती हैं। वैसे साहित्य का आशय है सबको साथ लेकर चलना, सबके हित की अभिव्यक्ति। साहित्यकार इसी से समाज के लोगो के प्रति अपनी चिंता अभिव्यक्त करते हुए उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता हैं। ऐसा करते हुए वे अपने साहित्य में विविध शैलियों का भी प्रयोग करता है, जिससे उनकी अभिव्यक्ति पूर्णत: सार्थक हो। और इन शैलियों में एक हास्य व्यंग्य भी हैं। जब साहित्यकार अपनी बातों को पाठकों के सामने कुछ इस तरह रखना चाहते है कि जिसका आशय पाठक सक्रिय रहकर ही समझ सकता हैं। इसी बीच कहानी की पटकथा अगर व्यंग पर आधारित हो तब तो वह स्वयं ही कई कदम आगे निकल जाती हैं। व्यंग्य अभिव्यक्त की वह प्रखर शैली होती है, जिसमें हर कोई दक्ष नही होता। और जो दक्ष होता है वह हमेशा लक्षणा शब्द शक्ति में ही अपनी बातें रखता हैं। कहानी की अपनी नैतिक जिम्मेदारियाँ होती हैं और जब उसमें व्यंग का तड़का लगाया जाता हैं, तब वह कहानियाँ लोकप्रिय एवं कालजयी बन जाती हैं। अत: कहना गलत न होगा कि कहानी में व्यंग्य की उपस्थिति उसकी मूल्य को और बढ़ाने में सहयोग करती हैं।

बीज शब्द : आधुनिक कहानी, हास्य और व्यंग, समकालीन गद्य, भाषा-साहित्य, संरचना।

हास्य व्यंग्य की अवधारणा :

हास्य व्यंग्य मानव के अभिव्यक्ति की एक सशक्त शैली हैं। व्यंग का इतिहास बेहद प्राचीन है। आधुनिक आर्य भाषाओं के अंतर्गत संस्कृत, पालि,

प्राकृत, अपभ्रंश तथा खड़ीबोली आदि सभी में इसकी उपस्थिति का प्रमाण मिलता आया हैं। हास्य व्यंग शब्द में हास्य, जहां हास्य 'हास रस' का पर्याय है, वहीं दूसरी ओर व्यंग 'व्यंजना शब्द शक्ति' का। साधारण अर्थ में 'कटाक्ष करना' अर्थात किसी बात को सीधे और सरल तरीके से न कहकर उसे प्रसंगानुसार व्यंजक शब्दों द्वारा लालित्य ढंग से श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया विशेष है। इसका सामान्य प्रयोग जहां आपसी नोंकझोंक के लिए होती है, वहीं व्यापक क्षेत्र में यह समाज की आलोचना करता है।

व्यंग्य को परिभाषित करने का भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने प्रयास किया है, जिनमें आचार्य द्विवेदी व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ''व्यंग्य वह है जहां कहने वाला अधरोष्ठ हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला रहा हो''[1]। सुप्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाईं के अनुसार ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, अत्याचारों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है''[2]

सभी प्रकार की विसंगति को देखकर हमारे मन में उत्पन्न आक्रोश को नरेन्द्र कोहली ने व्यंग्य कहा है। उनके अनुसार, 'कुछ अनुचित अन्यायपूर्ण अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जगता है, वह यदि काम में परिणत हो सकता है तो अपनी असहायता में वक्र होकर जब अपनी तथा दूसरो की पीडा पर हँसने लगता है तो वह विकट व्यंग्यहोता है। पाठक के मन को चुभलाता-सहलता नहीं कोड़े लगाता है। अत: सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।'[3]

अमृतराय के अनुसार, 'व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारान्तर से उसे अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है।' [4]

व्यंग्य की सार्थकता के संदर्भ में श्री मधुकर गंगाधर ने लिखा है - 'किसी उस्तद जर्राह के हाथ की नश्तर लगाने की छुरी लोहे की होती हैं और तेज धार से मांस काटती है, दर्द देने वाली यह छुरी जिन्दगी के लिए नियामत हैं। साहित्य के व्यंग्य के साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की चेतना के कलुश को काटकर अलग करना ही व्यंग्य की सार्थकता है, इस वाणी की छुरी से क्षण भर के लिए आखेट काँप उठता है, किन्तु निष्कर्ष हमेशा गलत ही रहता है।'[5]

हास्य और व्यंग का अंतर्संबंध :

हास्य और व्यंग दोनों की शैली भिन्न है। एक जो अपनी बातों को कटाक्ष के द्वारा अभिव्यक्त करता है, वही एक हास्य या बीभत्सता के द्वारा अपनी अर्थ प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है। इतना होने पर भी इन्हें विद्वान जन एक-दूसरे के परिपूरक मानते हैं तथा इनका साथ में प्रयोग भी करते हैं। माना जाता है कि व्यंग्य साहित्य में आलोचना एवं तीखी प्रहार की कड़वाहट या कटुता को कम करने के लिए एक ही सबल माध्यम है- 'हास्य या बीभत्सता। प्राय: हास्य के द्वारा व्यंग्य की कटुता कम हो जाती है और उससे अनुभूति की तीक्ष्णता अधिक हो जाती है।'[5]

इसी से संबंधित डॉ. आनन्द प्रकाश गौतम की यह मान्यता हास्य को चीनी रूपी लेप की उपमा प्रदान करती है- 'हास्य, कटु आलोचना रूपी कुनीन की गोली पर चीनी के लेप का कार्य करता है। चीनी के लेप के कारण कटु आलोचना भी सरलता से सुनी जा सकती है।'[6]

हास्य और व्यंग्य में आधारभूत अंतर यह भी है कि जहां हास्य का आधार साहित्य में निहित मनोरंजन से होता है, वही दूसरी ओर व्यंग का आधार उस साहित्य में अंतर्निहित संवेदना होता है। इतना होने पर भी अगर व्यंग साहित्य में हास्य के बिना कटु आलोचना, आरोप या आक्षेप के समान माना जाता है, जिसमें केवल उसका लक्ष्य सुधार की भावना प्रमुख होती है। हास्य व्यंग्य दोनों अगर समान अनुपात में प्रयोग किए जाए तो एक उत्कृष्ट साहित्य सृजन हो सकती हैं, जिसमें मनोरंजन के साथ-साथ एक उचित उपदेश दी जा सके। अन्यथा यदि किसी साहित्य में अगर हास्य की प्रवलता अधिक हो तो पाठकों में सहानुभूति की भावना तो उदय होगा, परंतु उसमें व्यंग्य की प्रभावोत्पादकता कम हो जाएगी। और उसी प्रकार यदि किसी साहित्य में आलोचनात्मक, समालोचना, प्रहार आदि अगर प्रबल हो तो व्यंग्य और

अधिक तीखा, तीव्र एवं कटु असह्य हो जाएगा। साफ अर्थ में कहें तो एक व्यंग्यकार विकृति को गंभीरता से देखकर, निर्ममता से प्रकाशित करता है तो हास्यकार उसी विकृति का केवल हास्यास्पद तरीके से वर्णन कर संतोष पा लेता है। इन विवेचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि हास्य और व्यंग्य दो अन्य विधा होने पर भी दोनों एक दूसरे में इस प्रकार घुल मिल जाते हैं जैसे दुध में पानी।

हास्य व्यंग्य के प्रमुख तत्व :

'आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य' नामक ग्रन्थ में डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने निम्नलिखित तीन तत्त्वों को उल्लेखित किया है.

1. आलोचना, 2. हास्य अथवा बीभत्सता, 3. सुधार[7]

परन्तु अन्य विद्वान व साहित्यकार 'व्यंग्य' के स्वरूप निर्माण में इनके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्वों का भी सन्निवेश अनिवार्य माना। उनके अनुसार 'व्यंग्य' के लिए कुल मिलाकर निम्नलिखित छह तत्व का होना अत्यावश्यक हैं। 1. आलोचना और प्रहार 2. हास्य अथवा बीभत्सता 3. सुधार 4. प्रगतिशील दृष्टिकोण 5. बौद्धिकता और 6. सामाजिकता

आम बोलचाल में जहाँ इसे ताने कसना, उपहास करना, चुटकी लेना, कटाक्ष करना आदि के रूप में इसे जाना जाता हैं, वहीं साहित्य में इसे व्यंग्य की संज्ञा दी जाती हैं। इसका मूल उद्देश्य किसी व्यक्ति एवं उसकी विचारधारा के साथ साथ सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करना है। व्यंग्यकार इसके माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण तो नहीं करता बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से विसंगतियों और विद्रूपताओं के विरुद्ध एक तेज हथियार के रूप में व्यंग्य का प्रयोग करता है। व्यंग्यात्मक शैली से ऐसे प्रखर बाण छोड़ता है जो भ्रष्टाचारी, अनाचारी अथवा विसंगति करने वाले के हृदय पर सीधा प्रहार करते हैं, जिसके आघात से लक्षित व्यक्ति की अंतरात्मा तिलमिला उठती है।

आज हमारा देश में आजतक अराजकता फैली हुई है। भिन्न प्रकार की समस्याएं आजादी की जो पहले थी, वह आज भी वैसी ही बनी हुई है या यूं कहें कि उन समस्याओं की व्यापकता आज और भी बढ़ती जा रही है, जिनमें मूलत: सांप्रादायिक समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, सामाजिक, राजनीतिक समस्या प्रमुख हैं। इन समस्याओं को साहित्यकार जब अपनी समझ द्वारा देश-दुनिया के साथ साथ समाज के विशेष मुद्दों पर उपहास करते हुए सबका ध्यान आकर्षित करना ही इसका उद्देश्य रहा है। इसकी खास विशेषताओं में जिनके बीच संचार व वार्तालाप होती है अर्थात वक्ता एवं श्रोताओं में कम या अधिक मात्रा में इतनी बुद्धि कौशलता होनी चाहिए, जिससे वे सामने वाले की अभिव्यक्ति को भलिभाति समझ सके।

भारतीय वेदों से जो धारा प्रवाहित हुई, वह आज भी स्वच्छंद गति से बहती जा रही है। मध्यकालीन कवि कबीरदास इसके मुख्य प्रणेता थे। वे सच्चे अर्थों में एक समाज सुधारक थे। उन्होंने उसी समय समाज में फैली कुसंस्कार, धार्मिक अराजकता व अंधविश्वासों पर इसी शैली द्वारा अपने संदेश देते हुए मानवतावाद का प्रचार किया। उसके बाद यह प्रक्रिया क्रमश: आगे बढ़ती है और आधुनिक काल तक आते आते पद्य साहित्य के साथ साथ गद्य विधाओं में भी इसका व्यापक प्रचार होने लगा। आधुनिक युग में भारतेन्दु के हाथों इसका श्रीगणेश हुआ और धीरे-धीरे कारवां बनता चला गया, जिसे आगे चलकर हिंदी के कई विद्वान साहित्यकारों ने अपने अभिव्यक्ति का साधन बनाया जिनमें प्रेमचंद, निराला, दिनकर, नागार्जुन, परसाईं, रामवृक्ष बेनीपुरी, शरद जोशी आदि प्रमुख हैं।

हिंदी कहानी और हास्य व्यंग्य :

आधुनिक काल की शुरुआत से ही हिंदी साहित्य में कहानियां लिखी जाने लगी। हालांकि इस समय की कहानियां अपनी शैशव अवस्था में होने के कारण ज्यादा प्रसिद्ध तो नहीं हुए, लेकिन विषयगत विविधताओं ने इसे संभालने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु ने अपने नाटक एवं कविताओं में व्यंग के द्वारा जिन समस्याओं को रेखांकित किया वह पाठकों को खूब पसंद आया और उसकी मूल उद्देश्य सहजता से न सिर्फ समझा बल्कि उसे उन समस्याओं के सुधार हेतु अनेक प्रयास भी किए

जो आज भी प्रासंगिक हैं। हास्य व्यंग साहित्य की एक ऐसे तत्व किसी भी काव्य अथवा कथा साहित्य को और अधिक प्रखर बनाने की सामर्थ्य रखता है।

हास्य-व्यंग्य के द्वारा वक्ता अपनी बात को तनिक समय में प्रभाव पूर्ण तरीके से सबके सामने प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। प्रौद्योगिकी की इस जमाने में जहां किसी के पास इतना भी समय नहीं है कि वे अपने परिवारजनों के समीप बैठकर आपस में खुलकर बातें करें, हंसी मजाक करें। अत: यह कहना भी गलत नहीं होगा कि आज की परिस्थितियों में इसकी भूमिका कितनी प्रासंगिक हैं। दरअसल व्यंग्य एक माध्यम है जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और पाखंड को दुनिया के सामने उजागर करता है।

क्रमश: इसी तरह द्विवेदी युग में प्रेमचंद का अवतरण किसी एक करिश्में से कम न थी। प्रेमचंद ने अपनी कथा साहित्य खासकर कहानियों के माध्यम से ग्रामीण जीवन के दलित और नारी की यथार्थ चित्रण किए वह सराहनीय रहा है। उनके कहानियों में व्यंग की कोई खास प्रयोग तो नहीं मिलते, लेकिन उनका उद्देश्य भी इसी की तरह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना करते हुए आदर्श समाज की स्थापना करने की रही। इस दौर में कई कहानीकार हुए जिन्होंने अपनी मौलिक रचना और भाषा शैली से हिंदी कहानियों को समृद्ध करने का काम किया जिनमें प्रसाद, गुलेरी, चतुर सेन शास्त्री, कौशिक आदि प्रमुख हैं, लेकिन इनके कहानियों में हास्य व्यंग्य की झलक कहीं कहीं तो मिलती लेकिन वे संपूर्ण उस पर आधारित न थी।

प्रेमचंद के परवर्ती काल में प्रगतिवादी साहित्यकार हुए, जिन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त तथा समाजवादी व्यवस्था व राष्ट्रीय चेतना पैदा करने हेतु कुछ हास्य-व्यंग्य शैली में कहानियां लिखी। इसी दौर से इनकी लोकप्रियता क्रमश: आगे बढ़ती गई और नए दौर के साहित्यकार भी इससे जुड़ते चले गए, जिनमें निराला, नागार्जुन, दिनकर, परसाईं, बेनीपुरी आदि प्रमुख थे। इनके कहानियों की भाव व भाषा शैली स्पष्ट एवं तीखी थी खासकर निराला और परसाईं की भूमिका इस क्षेत्र में उल्लेखनीय रहा।

परसाईं हिंदी हास्य व्यंग्य साहित्य में एक युग प्रवर्तक की तरह हुए। उन्होंने आजाद देश की सभी मार्मिक परिस्थितियों का बेहद ही रोचक ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत किए। उनके तीखे व्यंग्य पाठकों को जितना ही रोमांचित करती वहीं शासक वर्ग को तीखी चुभती। उनके कुछ कहानियों में अश्लील, असहमत, अनुशासन, ईश्वर की सरकार, भोलाराम का जीव, जाति, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, निंदा रस, सदाचार का ताबीज आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियां हंसते हंसते जीवन की सच्चाइयों से रूबरू कराते हुए आंखों में आसूं भर देने की काबिलियत रखते हैं।

आज हिंदी साहित्य के कहानियों की विषयों में काफी विविधता परिलक्षित होती हैं, जिसमें अराजकता, बाजारवाद, गोदी मीडिया,सांप्रदायिकता,बेरोजगारी एवं भ्रष्टचार प्रमुख हैं। आज इन कहानीकारों की शैलियाँ भले ही भिन्न हो, लेकिन इनकी भाव या उद्देश्य दोनों एक ही हैं। आधुनिक हिंदी कहानियों में आजादी के बाद जो भी परिवर्तन हुए वह यथार्थ के धरातल पर ही रहा। परसाईं की शैली कुछ इस प्रकार रही। उनसे प्रभावित होकर परवर्ती साहित्यकारों ने इसी शैली में अपनी कहानियां लिखना शुरू किया। उनमें नरेश मेहता,श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, खुशवंत सिंह, कृष्ण चंदर, काका हाथरसी, गिरिराज शरण आदि प्रमुख हुए। इन कहानीकारों ने अपनी व्यंग्य का विषय अपने आसपास के परिवेश के रोजमर्रा के जीवन से इकठ्ठा किए। देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति आदि को मौलिक मनोरजंन के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करना पसंद करते हैं। साथ ही साथ आज जिन कवि तथा जिनकी कविताओं ने इस शैली को अपनाकर अपनी बातों को अभिव्यक्त करने की इच्छा रखते हैं उनमें संपत सरल, अशोक चक्रधर, हरेंद्र पाल, अशोक मतवाला, दीपाली कालरा, प्रीति अग्रवाल, सुनील चौधरी आदि की सराहनीय भूमिका हैं।

प्रासंगिकता :

'व्यंग्य का आनन्द त्रासदी से उत्पन्न आनन्द जैसा है। त्रासदी हमारे दुख के पीप को निकाल

बाहर करती है इसलिए वह दुखद होते हुए अन्ततः सुखद ही होती है। व्यंग्य पढ़ते समय पाठक को अहसास होता है कि कोई है, जो उसकी पीड़ा को समझ-भुगत रहा है और इस तरह वह व्यंग्यकार की मानसिकता से फौरन जुड़ जाता है। व्यंग्य सामयिक होता है, यानी अपना कथ्य आस पास के परिवेश से संग्रह करता है, यह सामयिकता निरा तात्कालिक न हो तो ऐसा व्यंग्य कालजयी बनता है।' [8]

आज हिंदी साहित्य में इस विधा की गति अवश्य धीमी पड़ गई है, लेकिन हास्य और व्यंग्यात्मक कहानियां आज भी लिखने की कोशिश जारी है। आज के कहानीकारों में दिलीप कुमार, डॉ. अशोक गौतम, प्रमोद यादव, सुदर्शन कुमार सोनी, महेशचन्द्र द्विवेदी, देवेंद्रराज सुथार और अमित शर्मा आदि के कहानियों का स्वर व्यंग्यात्मक हैं। इन्होंने अपने अभिव्यक्ति के लिए हास्य व्यंग कहानी को ही स्वीकार की है। आज हास्य व्यंग्य की अभिव्यक्ति कई कलात्मक रूपों में हमारे सामने आ जाती है, जिसमें खासकर इन्टरनेट की मीमस, लेख, कविता, संगीत, फिल्म और टेलीविजन शो आदि जैसे माध्यम शामिल हैं।

हास्य-व्यंग्य हमेशा से किसी भी भाषा साहित्य का महत्वपूर्ण विधा रहा है। इसके साथ साथ कहानी भी अपने आप में पाठकों की एक लोकप्रिय विधा है, जो कम समय में रोचक ढंग से अपने उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम होती है। इन दोनों के मेल से बनी हास्य व्यंग कहानी समसामयिक पाठकों की पहली पसंद हैं। इसलिए यह कहना सार्थक हैं कि-यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता हैं, विद्रुप को सामने खड़ाकर देता है आत्म-साक्षात्कार करता है, सोचने को बाध्य करता है तो वह सफल व्यंग्य है। जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा'[9]

जो बात साधारण बोलचाल से किसी को समझाया नहीं जा सकता, वह हास्य व्यंग के सहारे सबक सिखाते हुए आसानी से सिखाया जा सकता है और वह सबक सबके लिए प्रासंगिक बन जाती है। खासकर इन कहानियों का मूल उद्देश्य हमेशा से आजाद देश की मार्मिक परिस्थितियों के प्रति सभी का ध्यान आकर्षित करना रहा हैं।

हमारे शासकों ने हमारे समृद्ध देश की जो दुर्गती की है या उसमें अपना जो अमूल्य योगदान दिया है यह उसकी पोल खोलकर पाठकों के सामने बड़ी ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का काम करते हैं। देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों की अवनति आदि जैसी समस्याओं इन कहानियों की मूलभूत विषय रहा है और इसी लिए यह कहना भी ग़लत न होगा कि इसकी प्रासंगिकता आगे भी इसी तरह बनीं रहेगी। ❑

संदर्भ :

1. द्विवेदी, महावीर प्रसाद : कबीर (भूमिका)
2. परसाई, हरिशंकर : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (लेखक की बात)
3. कोहली, नरेंद्र : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृष्ठ-7
4. अमृतराय, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृष्ठ - 5
5. डॉ. पी.आर. डोडिया : हिंदी की राजनीतिक कहानियाँ - एक अध्याय, सुरभि पब्लिकेशन, 2007, पृष्ठ 57
6. डॉ. आनंद प्रकाश गौतम : हिंदी के व्यंग्य निबंध, 1990, पृष्ठ 16
7. डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता : आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य, पृष्ठ 15
8. डॉ. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योतर हिंदी व्यंग्य का मूल्यांकन, विकास प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 323
9. गंगाधर, मधुकर, निराला : जीवन और साहित्य, पृष्ठ 76
10. इंटरनेट

काव्य-विमर्श

छायावाद और नवगीत

सुनील साहनी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर,
इंफाल-795003
मो : 9085561408
ई-मेल : sahnisunil818@gmail.com

छायावाद हिंदी साहित्य के रोमांटिक उत्थान का काव्य है, जिसका समय लगभग 1918 ई. से 1936 ई. तक माना जाता है। दो महायुद्धों के बीच जन्मे होने के कारण छायावाद की रचनाओं में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय चेतना दिखाई देती है। आधुनिक हिंदी काव्य में छायावाद एक महत्वपूर्ण युग है। इस युग के कवियों ने कई सारे कीर्तिमान स्थापित किए हैं । वे परंपरागत गीत विधा को ऊँचाइयों पर ले गए । छायावाद के स्तंभ कहे जाने वाले कवि प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा ने अपनी रचनाओं की अभिव्यक्ति गीत विधा में की । प्रसाद जी ने 'लहर' काव्य में प्रकृति, करुणा, सौंदर्य और रहस्यवादी संकेतों की अभिव्यक्ति के लिए गीत विधा को चुना। महादेवी वर्मा ने तो समग्र अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की। निराला छायावाद के प्रथम ऐसे कवि हैं, जिन्होंने गीत विषय को विस्तार दिया और नए-नए विषयों पर आधारित गीत रचे तथा परंपरागत गीत विधा से हटकर रचनाएँ कीं। निराला की तरह पंत ने भी परंपरागत गीत विधा से हटकर रचनाएँ कीं।

महादेवी वर्मा ने निजी दुख-सुख की अभिव्यक्ति गीत विधा में की, लेकिन प्रसाद और निराला ने वैयक्तिक अनुभूति के साथ ही प्रबंध काव्य के लिए भी गीत विधा को चुना। कामायनी, आँसू तथा राम की शक्ति पूजा और सरोज स्मृति जैसे प्रबंध रचनाओं की प्रस्तुति गीत में हुई। छायावादी गीत शुरुआती दिनों में परंपरागत गीत विधा से प्रभावित दिखाई पड़ता है। विशेष रूप से प्रसाद और पंत के गीतों पर अंग्रेजी रोमांटिक कवि वड्र्सवर्थ और शेली की स्वच्छंदतवादी गीत शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। छायावादी कवियों की रचनाओं में व्यक्तिगत सुख-दुख के साथ राष्ट्रीय भावना और आजाद भारत की आकाँक्षा का स्वर मूल रूप से देखा जा सकता है। इस स्वर को 'नवगीत' नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह स्वर हिंदी काव्य जगत में पहले से ही दिखाई पड़ता आ रहा है। यह आधुनिक गीत हैं, जो कुछ नया रूप लेकर आए हैं।

गीतों के विकास में डॉ. हरिवंश राय बच्चन का कहना हैं कि ''गीतों का दूसरा युग खड़ी बोली के उत्थान के साथ आरंभ हुआ। इन पचास-साठ वर्षों में कविता के क्षेत्र में हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि गीतों के वृत्त में ही हुई है।

एक अनगढ़ भाषा को लेकर उसे गीत का माधुर्य देना बड़ा ही कठिन काम था।''[1] एक अनगढ़ भाषा को गीत रूप में ढालना सच में एक चुनौतीपूर्ण काम था, लेकिन छायावादी कवियों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अनगढ़ भाषा में रचनाएँ कीं और तो और निराला गीत को मानव-जीवन के निकट लाए और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की । निराला के गीतों का भाव बहुआयामी है। उनके गीतों में जीवन की जटिल अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है । सुख-दुख, सामाजिक विसंगति, शोषण, पीड़ा, संघर्ष और भक्ति जैसे विविध आयामों की अभिव्यक्ति निराला ने अपने गीतों में किए हैं। अत: निराला ने परंपरागत गीत विधा को तोड़ते हुए गीत को एक नया रूप दिया। गीत की वस्तु और कला दोनों में निराला ने भारी परिवर्तन किया है। एक प्रतिभाशाली रचनाकार काल बोध, इतिहास दृष्टि, सांस्कृतिक और समकालीन यथार्थ और भविष्य आदि को ध्यान में रख कर रचना करता है और ऐसे ही रचनाएँ कालजयी रचना कहलाती हैं। निराला की रचनाओं में नवगीत की सारी विशेषता चाहे नहीं हों, लेकिन इनके गीत में ही सर्वप्रथम नवगीत के लक्षण दिखाई देते हैं। इन सब कारणों से ही शम्भूनाथ सिंह ने सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' से नवगीत की शुरुआत मानते हैं। ''नवगीत के अधिकांश आलोचक इस बात पर लगभग सहमत दीख पड़ते हैं कि नवगीत का प्रारंभिक अंकुरण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के उत्तरवर्ती गीतों में हो गया था। प्रारंभ तो भारतेंदु से ही हो गया था, पर उसका वास्तविक प्रारंभ निराला की कविताओं से माना जाना चाहिए।''[2]

नवगीत अपने साथ रागात्मक चेतना लेकर आई। कवि भारत की जमीन पर खड़े होकर काव्य लिखते थे। सौंदर्य चेतना, प्रकृति चेतना, प्रेम चेतना, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना, वेदानुभूति, मानवतावादी भावना , सामाजिक चेतना, आत्मभिव्यक्ति, व्यंग्यात्मकता, आधुनिक बोध, लोक चेतना और आंचलिकता आदि विशेषता को लेकर 'नवगीत' ने हिंदी साहित्य में अपना कदम रखा । 'नवगीत' शब्द का लिखित रूप में सर्वप्रथम प्रयोग श्री राजेंद्र प्रसाद सिंह 1958 ई. में 'गीतांगिनी' की भूमिका में करते हुए लिखते हैं कि ''समकालीन हिंदी कविता की महत्वपूर्ण और महत्वहीन रचनाओं के विस्तृत आंदोलन में गीत-परंपरा नवगीत के विकास में परिणति पाने को सचेष्ट है । नवगीत नई अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा । लिखित रूप में 'नवगीत' शब्द का यह सर्वप्रथम प्रयोग है।''[3] अस्तित्व पर आधारित इस वैज्ञानिक जगत को मानें तो इसी प्रयोग से नवगीत का उद्भव समझना चाहिए । किसी भी चीज का उद्भव अचानक नहीं हो जाता। उसके आने का आभास हमें कई साल पहले से ही हो जाता है। ठीक उसी प्रकार नवगीत शब्द का लिखित रूप में प्रथम प्रयोग 1958 ई. में हुआ, लेकिन उसके आने का आभास हमें छायावाद युग में ही हो जाता है। ''यदि परंपरागत भाषा, घिसे-पिटे छंदों और भावों के प्रति विद्रोह करके आम जनता की भाषा में बिंबों की प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ जीवन की कटु तिक्त अनुभूतियों और मानवीय दशाओं की अभिव्यक्ति को नवगीत की मौलिक पहचान मान लिया जाए तो नवगीत का प्रारंभ सन 1920-21 ई. में

ही हो गया था, जब निराला ने मातृ वेदना (1920), शेष (1921) आदि गीत लिखे थे।''[4]

छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन और माखनलाल चतुर्वेदी आदि की रचनाओं में हमें सांस्कृतिक चेतना, सौंदर्य चेतना, मानवतावादी चेतना, सामाजिक चेतना, आत्मभिव्यक्ति, व्यंग्यात्मकता, आधुनिक बोध, ग्राम्य चेतना, लोक चेतना और प्रतीक एवं बिंबों की ताजगी दिखाई देती है।

छायावाद का समय स्वाधीनता आंदोलनों का समय था, इसलिए एक श्रेष्ठ रचनाकार अपने समाज को ध्यान में रखकर ही रचना करता है। इसलिए जयशंकर प्रसाद अपनी रचना में राष्ट्रीय भावना को उजागर करने का प्रयास करते हैं। प्रसाद जी ने नाटकों में राष्ट्रीयता, प्राचीन संस्कृति, अतीत के उदात्त स्वरूप गीतों से पिरोए हैं। प्रसाद के गीतों की राष्ट्रीय भावना ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अहम भूमिका निभाई–

'अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा'[5]
'हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फिर फैला आलोक।
व्योम तक सृष्टि हुई पुंज अखिल संसृति हो उठी अशोक'[6]

छायावादी कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और माखनलाल चतुर्वेदी ऐसे कवि थे, जिनकी रचनाएँ जमीन से जुड़ी हुई थीं। वह अपने तत्कालीन समय और समाज की आवाज बनीं। माखनलाल चतुर्वेदी के गीत में प्रतीक आध्यात्मिक ध्वज के समान लहराती है। इसके आध्यात्मिक प्रतीक और कथा नायक–नायिका आज का युवा वर्ग है । ध्वन्यात्मक और आंचलिकता जैसी विशेषता उनके गीतों में पहले से ही विद्यमान हैं। माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित ' पुष्प की अभिलाषा' कविता राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत है। इस कविता के माध्यम से चतुर्वेदी जी देश के हर व्यक्ति को अपने देश के लिए अपने प्राण को न्योछावर कर देने की प्रेरणा देते हैं । 100 वर्ष से भी अधिक का समय हो जाने के बाद भी यह कविता आज भी भारतवासियों में देशभक्ति के भाव को भर रही है –

'चाह नहीं, देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर झठलाऊँ
मुझे तोड़ लेना बनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जाएँ वीर अनेक'[7]

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने जनोन्मुख गीतात्मक रचनाएँ लिखीं, जिसके कारण नवगीत की छाया स्पष्ट होने लगी । उन्होंने अपनी रचना में ग्राम्य परिवेश, जीवन की चुनौतियों, संघर्ष, विवशताओं और जिजीविषा को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है, और नए–नए छंदों को जन्म दिया है । इसलिए निराला समकालीन गीतकारों से आगे निकाल जाते हैं। 'जागो फिर एक बार' कविता में निराला जी देशवासियों को भारत की आजादी के लिए जगा रहे हैं–

'उगे अरुणाचल में रवि
आयी भारती–रति कवि कण्ठ में,
क्षण–क्षण में परिवर्तन
होते रहे प्रकृति–पट
गया दिन, आयी रात,
गायी रात, खुली दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन,पक्ष मास
वर्ष कितने ही हजार ,
जागो फिर एक बार'[8]

छायावाद रोमांटिक उत्थान से साथ सामाजिक उत्थान का भी काव्य है। छायावाद में सामाजिक समस्या पर आधारित कई सारे काव्य मिलते हैं, जिनमें कवियों ने जनता के समस्याओं को उठाया है। भारतीय समाज जाति–प्रथा में बँटा हुआ हैं, यहाँ ऊँच और नीच दो तरह के वर्ग रहते हैं। इसी वर्ग के भेद–भाव को निराला जी 'बादल–राग' कविता के माध्यम से मिटा देना चाहते हैं–

'अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू ,बरस–बरस रसधार !
पार ले चल तू मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज

गर्जन-भैरव-संसार
उथल-पुथल कर हृदय
मचा हलचल
चल रे चल
मेरे पागल बादल'[8]

'भिक्षुक' कविता में भी निराला ने पूरी संवेदना के साथ एक भिक्षुक का यथार्थ चित्रण किया है-

'पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता,
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता'[10]

निराला के बाद हरिवंश राय बच्चन ही एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने गीतों में सर्वाधिक नए-नए प्रयोग किए हैं। यह प्रयोग कथ्य से अधिक शिल्प में दिखाई देता है। देखा जाए तो भाषा की दृष्टि से गीत को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य उन्होंने किया। उनके गीतों की प्रमुख विशेषता है उनकी भाषा, जिसे उन्होंने जन-जीवन के निकट ला दिया। नया छंद और अनुभूति की ताजगी दी ।लोक धुनों और लोक लय पर आधारित गीत और गीत में संवाद-योजना ने जनता को अधिक आकर्षित किया। सन 1935 ई. में देश आजादी की गतिविधियों में सफल नहीं हो पा रहा था। गाँधी जी का सत्याग्रह आंदोलन राजनीतिक स्तर पर विफल हो रहा था। चारों तरफ निराशा और मायूसी का वातावरण था तब हरिवंश राय बच्चन जी ने 'मधुशाला' नामक एक काव्य लिखा। इस रचना ने सामाजिक स्तर पर सभी प्रकार के तनावों से मुक्ति और जीवन के मिथ्या आडंबरों और विडंबनाओं से सहज निदान प्रदान किया है। बच्चन जी को विश्वास है कि मदिरा विसंगतियों को दूर करती हैं और इसे पीने वाले व्यक्तियों के जीवन में नए उल्लास और नई उमंगों का आह्वान होता है। वे सांप्रदायिक विचार, आर्थिक विषमताएँ, मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी और निजी पीड़ा को दूर करने के लिए मदिरा को एकता के प्रतीक के रूप में प्रयोग करते हैं-

'आज करे परहेज जगत, पर, कल पीनी होगी हाला,
आज करे इंकार जगत पर कल होगा प्याला,
होने दो पैदा मद का महमूद जगत में कोई, फिर
जहाँ अभी हैं मंदिर, मस्जिद वहाँ बनेगी मधुशाला'[11]

पंत जी हमारी संस्कृति पर बल देते हुए 'बापू के प्रति' कविता का निर्माण किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि गाँधी जी के सिद्धांतों पर चलकर ही हमारी भावी संस्कृति का निर्माण होगा-

'तुम माँसहीन, तुम रक्तहीन
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन,ज्ज..
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य-लीन,
आधार अमर, होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन'[12]

पंत जी 'परिवर्तन' कविता के माध्यम से भारत के वैभवपूर्ण और समृद्ध अतीत का उल्लेख करते हुए देश की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाते हैं-

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगन्त छवि जाल
ज्योति चुंबित जगती का भाल ?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार ?'[13]

मानवतावाद की झलक भी छायावाद के कवियों में दिखाई देती है। निराला ने मानवतावाद के खिलाफ खड़े सिद्धांतों पर व्यंग्य किए हैं। 'कुकुरमुत्ता' कविता के माध्यम से हमारे समाज में पूँजीपतियों द्वारा जो शोषण चल रहा है, उस पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि-

'अब, सुन बे गुलाब
भूल मत जो पायी खुशबु, रंग-ओ-आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतना रहा है केपीटलिष्ट !
कितनों को तूने बनाया है गुलाम'[14]

'विधवा' कविता में निराला जी ने एक भारतीय विधवा का हृदयस्पर्शी और मार्मिक चित्रण किया है और साथ ही भारतीय समाज की संवेदनहीनता को भी यथार्थ रूप में व्यक्त किया है-

'वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में

दुख सुनता है आकाश धीर- निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर- ठहरकर'[15]

छायावादी कवियों ने अपने गीतों में बसंत-ऋतु का प्रयोग सबसे अधिक किया है । देश की पराधीन स्थितियों में बसंत-ऋतु के उमंग, आशा और निराशा, हताश देशवासियों में उल्लास, आशा, हिम्मत और जिजीविषा को जगाया है -

'सखि, बसंत आया ।
भरा, हर्ष बन के मन
नवोत्कर्ष छाया,
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु- पतिका
मधुप-वृंद बन्दी
पिक स्वर नभ सरसाया'16

इसी प्रकार प्रसाद जी ने ' जागो जीवन के प्रभात' कविता में प्रभात के चित्रण से भावों को प्रकृति के विराट रूप के चित्रण द्वारा पराधीन रजनी को पछाड़ कर स्वाधीनता के प्रभात का जीवन में स्वागत करने का आह्वान करने की बात कही है -

'अब जागो जीवन के प्रभात
रजनी की लाज समेटो तो
कलरव से उठकर भेंटो तो
अरुणाचल में चल रही बात
अब जागो जीवन के प्रभात'[17]

छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा ने अपने गीतों में वैयक्तिक भावबोध और निजी दु:ख-सुखात्मक भावों की संवेदनशील अभिव्यक्ति की है, जिसके कारण छायावाद में उन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। युगीन विषमताओं के प्रति पलायन की प्रवृत्ति न अपनाकर एक आलोचनात्मक दृष्टि को अपनाया है। समकालीन बंधनों से नारी के स्वातंत्र-भाव और उससे मुक्ति की छटपटाहट उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है-

'मैं नीर भरी दु:ख की बदली !
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही-
उमड़ी कल थी मिट आज चली'[18]

पंत जी ने 'गाँव के लड़के' कविता में किसान-जीवन के विभिन्न रूप के अतिरिक्त ग्राम्य जीवन के अनेक अंगों को भी वाणी दी हैं । इस कविता में पंत जी ने ग्रामीण लड़के-लड़की का भी चित्रण किया है-

'मिट्टी से भी मटमैले तन
अधफटे कुचैले, जीर्ण बसन
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गंवई लड़के भू के धन'[19]

छायावादी कवियों की रचनाओं में बिंब और प्रतीक की ताजगी दिखाई पड़ती है। पंत जी 'पल्लव' में मधुमास की कल्पना करते हुए कहते हैं कि-

'आज पल्लवित हुई है डाल
झुकेगा कल गुंजित मधुमास'[20]

निराला ने अपनी लंबी कविता 'कुकुरमुत्ता' में नए प्रतीकों का प्रयोग किया है। इससे पहले इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग प्रचलन में नहीं था। इस कविता में गुलाब का फूल पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का। पंत जी ने भी बिंबों का सुंदर प्रयोग किया है।'बाँसों की झुरमुट' कविता में कवि ने वातावरण का चित्रण करते हुए संध्या के सौंदर्य को प्रस्तुत किया है। पंत जी ने संक्षिप्ति के साथ पूरे वातावरण को चित्रित किया है-

'बाँसों का झुरमुट,
संध्या का झुटपट
लो, चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी-तुट्-तुट्'[21]

वस्तुत: कहा जा सकता है कि साहित्य में किसी विधा का जन्म अचानक नहीं होता। किसी विधा के जन्म होने से कई साल पहले से ही उसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार नवगीत का लिखित रूप में प्रथम प्रयोग सन 1958 ई. में हुआ, लेकिन नवगीत की विशेषता हमें छायावाद युग से ही दिखने लगती है।

छायावाद कालखंड बंधन-मुक्ति का कालखंड है। 200 वर्षों की गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का, दासता से मुक्ति का संघर्षकाल है। अत: तदयुगीन साहित्य में भी वर्षों से चली आ रही साहित्यिक रूढ़ियों, स्थापनाओं

को तोड़कर नवनिर्माण की चेतना दिखती है। अब तक जो आश्रयदाताओं के श्रीचरणों की वंदना के गीत रचे जाते थे, वे अब जनजीवन की गीत रचने की तरफ मुड़े। पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के गीत रचे जाने लगे। जीवन और स्वतंत्रता के स्वर गीतों में पुष्पित पल्लवित होने लगे। प्रतीक, बिंब, उपमान और अलंकारों के बोझिल जंजीरों से साहित्य जगत छायावाद काल में मुक्त हुआ और गीतों में जीवन के नवराग नवीन प्रतीकों, बिंबों, उपमानों और छंदमुक्ति के साथ सृजित हुए, जिसने नवगीत की आधार भूमि की नींव रखी। ❑

संदर्भ :

(1) डॉ. सत्येंद्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, द्वितीय आवृत्ति 2019, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली पृ.स.20
(2) डॉ. राजेश सिंह, समकालीन नवगीत का विकास, संस्करण : 1997, 2010, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. स. 08
(3) डॉ. राजेश सिंह, समकालीन नवगीत का विकास, संस्करण : 1997, 2010, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. स. 24
(4) डॉ. सत्येंद्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, द्वितीय आवृत्ति 2019, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली पृ.स. 23
(5) जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, साहित्य सेवा प्रकाशन, वाराणसी, पृ. स. 78
(6) जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 162
(7) श्रीकांत जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी, रचनावाली 6, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.स. 80
(8) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, तृतीय संस्करण 1991, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 156
(9) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, तृतीय संस्करण 1991, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 133
(10) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, तृतीय संस्करण 1991, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स.108
(11) हरिवंशराय बच्चन, मधुशाला, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृ.स.63
(12) सुमित्रानंदन पंत, युगपथ, तृतीय संस्करण 1978, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 36
(13) सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, नौवाँ संस्करण 1993, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 140
(14) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कुकुरमुत्ता, पंचम संस्करण :1975, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.स. 38
(15) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, तृतीय संस्करण 1991, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 69
(16) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, गीतिका, नौवाँ संस्करण 1992, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 18
(17) डॉ. छोटाराम कुम्हार, छायावाद में यथार्थ तत्व, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. स. 119
(18) महादेवी वर्मा, सन्धिनी, चौदहवाँ संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.स. 109
(19) प्रमिला त्रिवेदी, पंत का प्रगतिवादी काव्य, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.स. 98
(20) सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, नौवाँ संस्करण 1993, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 52
(21) सुमित्रानंदन पंत, युगपथ, तृतीय संस्करण 1978, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.स. 20

आलेख

भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. संजीव मंडल

टीचिंग एसोसिएट
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
मो. 8135054304
ई-मेल : 666mandal@gmail.com

प्रस्तावना :

भीष्म साहनी हिंदी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। उनका जन्म 8 अगस्त, 1915 ई. को रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुआ था। 11 जुलाई, 2003 ई. को उनकी मृत्यु दिल्ली में हुई। कथाकार और नाटककार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका एक विशेष स्थान है। उनके कहानी संग्रह हैं- 'भाग्य रेखा' (1953 ई.), 'पहला पाठ' (1957 ई.), 'भटकती राख' (1966 ई.), 'पटरियाँ' (1973 ई.), 'वाङ्चू' (1978 ई.), 'शोभायात्रा' (1981 ई.), 'निशाचर' (1983 ई.), 'पाली' (1989 ई.) और 'डायन' (1998 ई.)। उनके उपन्यास हैं- 'झरोखे' (1967 ई.), 'कड़ियाँ' (1970 ई.), 'तमस' (1973), 'वसंती' (1980 ई.), 'मय्यादास की माड़ी' (1988 ई.), 'कुंतो' (1993 ई.) और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' (2000 ई.)। उनके नाटक हैं- 'हानूश' (1977 ई.), 'कबिरा खड़ा बाजार में' (1981 ई.), 'माधवी' (1984 ई.), 'मुआवजे' (1993 ई.), 'रंग दे बसंती चोला' (1998 ई.), और 'आलमगीर' (1999 ई.)। उनकी आत्मकथा 'आज के अतीत' 2003 ई. में प्रकाशित हुई।

'माधवी' पौराणिक कथा पर आश्रित एक प्रभावशाली नाटक है । इसका मंचन जितना सफल रहा, उतना ही यह पठनीय भी है। इस नाटक में माधवी की भीषण त्रासदी चित्रित है। यह त्रासदी किसी भी युवती के लिए बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण एवं असहनीय है। पुरुष स्त्री को किस प्रकार अपनी महत्वाकांक्षा का साधन बना देता है, यह इस नाटक में बेहद स्पष्टता से चित्रित है। यह चित्रण जितना ही स्पष्ट है, उतना ही प्रभावशाली भी। इस नाटक को पढ़ने या इसका अभिनय देखने के बाद पुरुष वर्ग के प्रति मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है। आगे इस नाटक की बारीकी से जाँच-पड़ताल की गई है।

इस शोधालेख में अवतरण एवं ग्रंथ सूची MLA (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण :

'माधवी' भीष्म साहनी का पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय नियति का चित्रण करने वाला नाटक है। माधवी राजा ययाति की पुत्री है। ययाति राजपाट छोड़कर आश्रमवासी हो गए हैं। वे हरिश्चंद्र और कर्ण की तरह महान दानवीर कहलाना चाहते हैं। अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए वे अपनी पुत्री को भी दान कर देते हैं। ययाति की पुत्री माधवी की जिंदगी को विषादपूर्ण और अनिश्चित बना देने का उत्तरदायी ययाति की यही महत्वाकांक्षा है। माधवी के जीवन को दुख और अमानवीय नियति के हवाले करने में मुनिकुमार गालव का भी हाथ है। गालव भी ययाति की ही तरह महत्वाकांक्षी और विवेकशून्य पात्र है। गालव विद्यार्थी जीवन की समाप्ति पर गुरु विश्वामित्र को गुरु-दक्षिणा देने का हठ करता है। विश्वामित्र इस हठ और दुर्विनीत व्यवहार से क्रोधित होकर गालव को सबक सिखाने के लिए आठ सौ अश्वमेधी घोड़े माँग लेते हैं। गालव सभी जगह से निराश हो दान स्वरूप घोड़े प्राप्त करने के लिए ययाति के आश्रम पहुँचता है। ययाति के पास घोड़े नहीं हैं, पर वे अपने को दानवीर साबित करने के लिए अपनी पुत्री माधवी गालव को दान कर देते हैं। माधवी के संबंध में ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की हुई है कि उसके गर्भ से चक्रवर्ती राजा का जन्म होगा। अत: गालव किसी भी राजा को आठ सौ अश्वमेधी घोड़े के एवज में माधवी को सौंप सकता है। इसी के साथ माधवी को चिर कौमार्य का वरदान भी प्राप्त है।

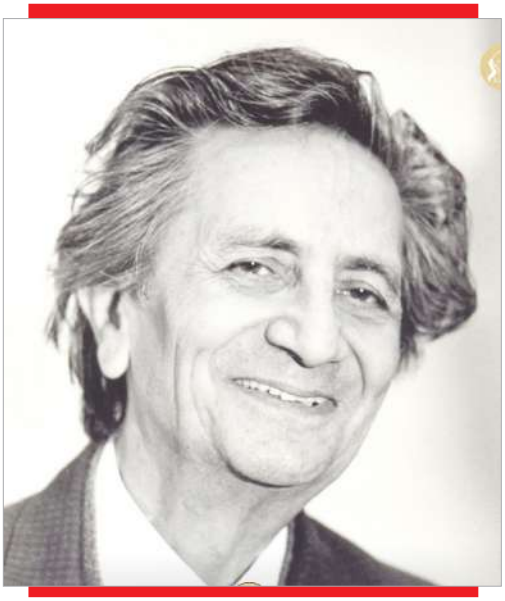

गालव माधवी को पहले तो अयोध्या के राजा हर्यश्च के पास ले जाता है। पर उनके पास सिर्फ दो सौ अश्वमेधी घोड़े ही होते हैं। पहले तो गालव हर्यश्च के पास माधवी को रखने की अनिच्छा जाहिर करता है। परंतु जब उसे पता चलता है कि आर्यावर्त में किसी भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेधी घोड़े नहीं हैं तो वह हर्यश्च के इस प्रस्ताव पर कि पुत्र प्राप्ति के बाद वे माधवी को मुक्त कर देंगे - गालव माधवी को हर्यश्च के पास रखने को तैयार हो जाता है। उसकी योजना होती है कि वह शेष घोड़ों के लिए माधवी को एक वर्ष बाद पुन: किसी राजा के पास छोड़ आएगा। इस योजना के तहत माधवी को वह एक के बाद एक तीन राजाओं के पास छोड़ता है। माधवी न पत्नी बन पाती है न माँ। उसे गालव की गुरु-दक्षिणा जुटाने के लिए एक के बाद एक तीन नवजात पुत्र संतानों को त्यागना पड़ता है। माधवी को जिस अमानुषिक कार्य के लिए गालव मजबूर करता है, वह घृणनीय है। ययाति महान दानवीर कहलाने के लिए और गालव अपनी गुरु-दक्षिणा जुटाने के लिए माधवी का अपने-अपने प्रकार से शोषण करते हैं। माधवी पुत्री और प्रेमिका का धर्म पूरा करने के लिए इस शोषण को हँसते-हँसते मंजूरी दे देती है। गालव से माधवी प्रेम करती है। गालव के अनुचित आचरण का समर्थन वह इसलिए करती है कि एक दिन गालव उसे मिल जाएगा।

ययाति प्रारंभ में गालव को समझाते हैं कि वह अपने गुरु से क्षमा याचना कर ले, क्योंकि आठ सौ अश्वमेधी घोड़े जुटा पाना लगभग असंभव है। तब गालव अपनी हठधर्मिता का प्रमाण देते हुए कहता है-

''नहीं महाराज, मैं वचनबद्ध हूँ। गुरु-दक्षिणा में आठ सौ घोड़े देने की शपथ ले चुका हूँ । मैं आपके पास अपना वचन निभा पाने के लिए आया हूँ, वचन भंग करने के लिए नहीं आया हूँ।'' (साहनी 2021:17)

ययाति को किसी भी मायने में पिता नहीं कहा जा सकता। जो पिता अपने बच्चों को भेड़-बकरी की तरह

दान में दे सकता है, वह पिता कहलाने के लायक नहीं है। एक आश्रमवासी ययाति की महत्वाकांक्षा का भेद खोलकर रख देता है, जिसके बाद ययाति के प्रति हमारी घृणा उभर आती है। एक व्यक्ति कितना स्वार्थी हो सकता है, यह ययाति को देखकर समझ सकते हैं। पिता इसलिए पूजनीय होता है कि वह अपनी संतान के स्वार्थ के लिए अपनी आकांक्षाओं को होम कर देता है। अगर पिता अपनी महत्वाकांक्षा की होमाग्नि में संतान की खुशियों को जला डाले तो उसके प्रति श्रद्धा का भाव नहीं, घृणा का भाव ही जाग सकता है । एक आश्रमवासी ययाति से कहता है-

''कर्तव्य नहीं, महाराज, आपने यश की लालसा से ऐसा किया है ताकि लोग कहें कि वनों में रहते हुए भी ययाति दानवीर है, अपनी एकमात्र कन्या को भी दान में दे सकता है।'' (साहनी 2021:22)

गालव भी हठी होने के साथ-साथ महत्वाकांक्षी भी है । उसकी महत्वाकांक्षा का भेद देते हुए नाटककार ने स्वगत कथन में गालव से कहलाया है-

''चक्रवर्ती! चक्रवर्ती राजा को जन्म देगी! माधवी जिसे जन्म देगी वह चक्रवर्ती राजा बनेगा, ऐसा ही कहा है महाराज ने! क्या माधवी के गर्भ से पैदा होने वाला गालव का पुत्र भी चक्रवर्ती राजा हो सकता है? चक्रवर्ती गालव।'' (साहनी 2021:25)

गालव एक पाखंडी चरित्र है । जब तक उसे गुरु-दक्षिणा जुटानी होती है, तब तक वह माधवी से प्रेम का ढोंग करता रहता है । वह चक्रवर्ती राजा बनने की भी महत्वाकांक्षा पाले हुए है। इसके लिए माधवी की आवश्यकता है। वह एक चरम कोटि का निर्दयी है, जो माधवी को अपनी संतानों को त्यागने के लिए मजबूर करता है। गुरु-दक्षिणा पूर्ण करने को वह महत्वपूर्ण नहीं मानता। वह दुनिया के सामने अपमानित नहीं होना चाहता। गुरु-दक्षिणा उसके लिए सिर्फ एक सामान्य-सा संतोष पाने का साधन है। कोई विशेष महत्व गुरु - दक्षिणा का उसके लिए नहीं है। इस बात का पता उसके निम्नलिखित स्वगत कथन से चलता है-

''गुरु-दक्षिणा का वचन पूरा कर भी लिया तो क्या होगा? मुझे मिलेगा क्या? इतना भर संतोष कि मैंने गुरु-दक्षिणा जुटा दी? बस, इतना ही? उसके लिए माधवी को सदा के लिए खो दूँ? माधवी को खो देना, अपने भाग्य को खो देना होगा।'' (साहनी 2021:26)

माधवी उसके जीवन में महत्वाकांक्षा पूर्ण करने का साधन मात्र है, स्वयं एक साध्य नहीं । वह स्वगत कथन में कहता है-

''कैसी विडम्बना है, माधवी मेरे जीवन में साधन बनकर आई है। उसके द्वारा मैं गुरु -दक्षिणा का दायित्व पूरा कर सकता हूँ। उसी के द्वारा मैं चक्रवर्ती राजा भी बन सकता हूँ! (साहनी 2021:26)

ययाति यश के कितने भूखे हैं, इसका प्रमाण उत्तराखंड की यात्रा के बाद लौटे मारीच से पूछे गए ययाति के निम्नलिखित प्रश्न से चलता है-

''बताओ तो, उत्तराखंड में लोग मेरे दान-दक्षिणा के संबंध में क्या सोचते हैं? वहाँ पर पता तो चल गया होगा। वे क्या कहते हैं, कि दानवीर ययाति ने एकमात्र पुत्री को सौंप दिया?'' (साहनी 2021:48-49)

आगे ययाति प्रश्न पूछते हैं-

''लोग यह भी कहते होंगे कि राजपाट त्यागने के बाद भी दानवीर ययाति ने अपना हाथ नहीं खींचा, क्यों? क्या अभी भी दानी राजा कर्ण से मेरी तुलना की जाती है या राजा कर्ण को लोग भूल गए हैं?'' (साहनी 2021:49)

गालव विश्वामित्र को दो सौ घोड़े दे चुका है। मारीच ययाति से कहता है कि वे विश्वामित्र से अनुरोध करें कि विश्वामित्र शेष घोड़ों का आग्रह छोड़ दें ताकि माधवी को शेष घोड़े जुटाने के लिए किसी दूसरे राजा के पास न जाना पड़े और वह राजा हर्यश्च की पटरानी ही बनी रह सके। इस प्रकार माधवी का भविष्य सुनिश्चित और सुंदर हो जाएगा। पर ययाति को अपना यश इतना प्रिय है कि वह अपनी एकमात्र पुत्री के भविष्य के लिए इतना-सा काम भी नहीं करना चाहते। मारीच ययाति के स्वार्थी स्वभाव और यशलिप्सा का भेद देते हुए कहता है-

''नहीं महाराज, क्षमा कीजिए, अपनी पुत्री की स्थिति

को देखते हुए भी आपको अपना यश अधिक प्यारा है । भले ही इसके लिए माधवी की बलि देनी पड़े।'' (साहनी 2021:53)

माधवी अपने नवजात शिशु को त्याग तो देती है, पर उसका मोह छोड़ नहीं पाती । रंग निर्देश में नाटककार ने लिखा है-

''माधवी, खोई हुई-सी, उसकी ओर देखे जा रही है। बार-बार मुड़कर, उस दिशा में देखती है जिस ओर उसके बालक को ले जाया गया है।'' (साहनी 2021:58)

मातृ-हृदय संतान को आसानी से त्याग नहीं सकता । माँ का हृदय छलनी हो जाता है, जब उसे अपनी संतान को हमेशा के लिए छोड़कर जाना पड़ता है। माधवी अपने नवजात शिशु को छोड़कर जाते हुए अपने मन की दशा को व्यक्त करती हुए कहती है-

''मुझे तो लगता है जैसे मेरे पैरों में जंजीरें पड़ गई हैं।'' (साहनी 2021:58-59)

युवती माँ बनने के बाद पूरी बदल जाती है । इसका सबूत माधवी की निम्नलिखित उक्ति है-

''मुझे लगता है, बेटे के जन्म से पहले मैं कोई दूसरी ही माधवी थी, बेटे के जन्म के बाद मैं बिल्कुल बदल गई हूँ। वह माधवी नहीं रही हूँ।'' (साहनी 2021:60)

गालव माधवी को बच्चे का मोह छोड़ने के लिए कहता है-

''कौन भूखा है? बच्चे को भूल जाओ, माधवी। वह अब तुम्हारा कुछ नहीं लगता। अब उसके साथ तुम्हारा कोई संबंध नहीं रह गया है।'' (साहनी 2021:60)

पर माधवी से बच्चे का मोह छोड़े नहीं छूटता। वह गालव से कहती है-

''क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि हम कुछ दिन और यहाँ बने रहें? मैं महलों के अंदर नहीं जाऊँगी। यहीं, बाहर ही कहीं पड़े रहेंगे। मैं धाय से कहूँगी, दिन में एक बार वह वसुमना को मेरे पास ले आया करे।'' (साहनी 2021:60)

पुरुष स्त्री की कोमलता को उनकी कमजोरी समझते हैं। माधवी की संतान के प्रति कोमलता को देखते हुए गालव स्त्री संबंधी निम्नलिखित निर्णय सुना देता है-

''मैं नहीं जानता था कि संतान पैदा हो जाने पर तुम इतनी दुर्बल हो जाओगी। इसीलिए शायद स्त्रियाँ जोखिम के काम नहीं कर सकतीं, किसी बड़े काम का दायित्व वहन नहीं कर सकतीं।'' (साहनी 2021:65)

अगर गालव की बात मान लें कि स्त्रियाँ जोखिम के काम नहीं कर सकतीं तो रानी लक्ष्मीबाई के बारे में क्या कहेंगे? यदि स्त्री बड़े काम का दायित्व नहीं ले सकती तो हमारी राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल और द्रौपदी मुर्मू के बारे में क्या कहेंगे? यदि स्त्री के लिए समाज बाधा न बनता, उन्हें अनुकूल परिस्थिति मिलती तो घर-घर से रानी लक्ष्मीबाई, प्रतिभा पाटिल और द्रौपदी मुर्मू निकलतीं। माधवी अपनी दशा का संकेत करते हुए कहती है-

''माधवी न घर की न घाट की।'' (साहनी 2021:66)

राजा-महाराजाओं के लिए स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं होता। एक ही राजा की सैकड़ों रानियाँ होती हैं । इन रानियों का रनिवास में बहुत बुरी हालत होती है। इनमें से जो नि:संतान होती है उसकी तो हालत दयनीय होती है। माधवी राजा हर्यश्च के पास रहते हुए जो अनुभव करती है, उसे व्यक्त करते हुए कहती है-

''जानते हो, जिन रानियों से राजा को संतान नहीं मिली, महल की दीवारों के पीछे उनकी क्या गति हुई है? उन्हें भोजन तक के लिए कोई नहीं पूछता था। मेरे महल में आ जाने के बाद भी राजा ने दो ब्याह और किए हैं।'' (साहनी 2021:66)

दो सौ अश्वमेधी घोड़ों के एवज में माधवी को संतान प्रसव करना था और उस संतान को हमेशा के लिए त्याग कर अगले राजा के पास इसी उद्देश्य से अपने को समर्पित करना था। माधवी की इस नियति के पीछे राजा ययाति और मुनिकुमार गालव का ही हाथ है। माधवी

असहाय है। वह छलनी हृदय की कराह को व्यक्त करते हुए गालव से कहती है-

''ओ गालव, तुमने मुझे किस जलती आग में झोंक दिया है? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? मैंने अपने पिता का क्या बिगाड़ा था? (साहनी 2021:68)

गालव के पाखंडी चरित्र का पता तब भी चलता है, जब वह कहता है-

''इस बात की कल्पना से भी मैं सिहर उठता था कि तुम एक पराए पुरुष के साथ सहवास कर रही हो।''(साहनी 2021:68)

गालव पाखंडी चरित्र का है, यह इसी बात से साबित हो जाता है कि इस परिस्थिति का दायी भी वह ही है। अगर वह अपने गुरु से क्षमा प्रार्थना करता तो वह माधवी के साथ सुखपूर्व जीवन जी पाता। पर वह क्षमा प्रार्थना भी नहीं करता और माधवी को इस नरक में झोंक देता है। इसके बाद यह दुख व्यक्त करना कि माधवी किसी पराए पुरुष के साथ सहवास कर रही होगी-उसका पाखंड ही है। आखिर माधवी इस नरक में जाने के लिए राजी क्यों होती है? इसका जवाब देते हुए माधवी कहती है-

''मैं तुम्हें पाने के लिए।'' (साहनी 2021:70)

माधवी गालव को प्राप्त करने के लिए उसकी हर अनुचित बात को भी मानती है। जब तीन राजाओं के पास रहने के बाद माधवी एक दिन अचानक निरुद्देश्य हो जाती है, तब वही गालव जिसके लिए माधवी ने इतना त्याग किया- माधवी पर विश्वास करने को अपनी भूल मानने लगता है-

''कहाँ तो प्रेम की शपथ और आश्वासन और कहाँ...क्या माधवी पर विश्वास करना ही भूल थी?'' (साहनी 2021:92)

गालव के पाखंड का पता अंत में माधवी को चलता है। अगर माधवी पहले ही जान गई होती, तब ऐसे नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त नहीं होती। जो खुद किसी के विश्वास का पात्र नहीं होता, वही सभी पर अविश्वास करता है, जिसका खुद का दिल मैला होता है, वही दूसरों में दोष ढूँढ़ता है। माधवी विश्वामित्र के पास चली जाती है गालव के ही उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए। गालव को इसका पता नहीं होता और वह माधवी के चरित्र पर छींटाकशी करता है। उसे दुख है कि अब उसके स्वार्थ की पूर्ति नहीं हो पाएगी, वह समाज में गण्यमान्य व्यक्ति नहीं कहलाएगा-

''मैं उस दिन का सपना देख रहा था जब मैं ऋणमुक्त हो पाऊँगा और एक सच्चे साधक का पद ग्रहण करूँगा। यह कठिन प्रतिज्ञा पूरी करके गुरुओं के वरदान का भागी बनूँगा। पर तापस, सब धूल में मिल गया, अपनी सुख-सुविधा के लिए माधवी ने मुझे त्याग दिया।'' (साहनी 2021:94)

माधवी का त्याग अकल्पनीय है। पर ऐसे त्याग के बाद भी गालव को उस पर विश्वास नहीं है-

''माधवी का मन बदल भी तो सकता है। वह किसी राजा को वरेगी, सुख-चैन से रहना चाहेगी। मुझे क्यों वरेगी?'' (साहनी 2021:110)

अगर माधवी को सुख-चैन की इतनी ही भूख होती तो वह अपने पुत्रों के किसी पिता के साथ रह सकती थी। तब गालव माधवी का क्या बिगाड़ लेता। पर माधवी ने अपने प्रेम के खातिर सारे सुख-चैन को त्याग दिया। गालव के अविश्वास का कारण माधवी नहीं, बल्कि उसका खुद पाखंडी होना ही है।

गालव माधवी को पाना चाहता है। उसने एक वर्ष से माधवी को नहीं देखा है। वह माधवी के रूप से मोहित है। वह भौंरे जैसा है। जब एक वर्ष बाद स्वयंवर के दिन माधवी को देखता है कि माधवी के रूप-लावण्य में कमी आ गई है, मोटी और शिथिल हो गई है, तब वह पहले तो माधवी से अपने वरदान का उपयोग करते हुए अनुष्ठान द्वारा पुन: यौवन प्राप्त करने का दबाव डालता है। पर जब माधवी इससे इनकार करती है तो वह माधवी को ग्रहण करने से इनकार कर देता है। वह बहाना बनाता है-

''महाराज ने स्वयंवर रचा है । बड़े-बड़े योग्य राजा

यहाँ पधारे हैं। मैं एक अकिंचन मैं तुम्हारे मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहता।'' (साहनी 2021:114)

माधवी उसके पाखंड को समझ जाती है । वह कहती है-

''तुम मुझे छोड़ना चाहते हो क्योंकि मैं इन कुछ वर्षों में ही बुढ़ा गई हूँ, और मेरा शरीर शिथिल पॉ गया है, यही ना? जबकि तुम अभी जवान हो और स्वतंत्र हो, और किसी सुंदर युवती से ब्याह कर सकते हो।'' (साहनी 2021:115)

जब गालव का पहला बहाना काम नहीं करता, तब वह आदर्श और मर्यादा की आड़ में माधवी को स्वीकार करने से इनकार कर देता है-

''पर जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी कैसे मान सकता हूँ?'' (साहनी 2021:115)

गालव पहले भी जानता था कि माधवी उसकी गुरु-दक्षिणा जुटाने के लिए उसके गुरु विश्वामित्र के पास रह चुकी है, फिर भी वह उसे ग्रहण करने को तैयार था। पर जब वह रूप-लावण्य से हीन, शिथिल और बूढ़े शरीर वाली माधवी को देखता है तो शादी से मुकर जाता है । पर अब माधवी उसके पाखंडी, स्वार्थी तथा रूप-लोभी चरित्र को समझ चुकी है। इसलिए वह कहती है-

''ओ गालव, गालव, तुम सीधी बात क्यों नहीं करते? दिल में तुम्हारी वासनाएँ कुलबुलाने लगी हैं, ऊपर से तुम आदर्शों और मर्यादाओं की बात करते हो।'' (साहनी 2021:115)

गालव चरम कोटि का स्वार्थी है। गालव के स्वार्थ का पता माधवी को अंत में चलता है। वह कहती है-

''तुमने केवल एक ही व्यक्ति से प्रेम किया है और वह अपने आप से।'' (साहनी 2021:117)

अंत में माधवी गालव के अनुष्ठान द्वारा पुन: यौवन प्राप्त करने के प्रस्ताव को ठुकारा कर पिता का आश्रम छोड़कर चली जाती है। उसे पुरुष मात्र से घृणा हो जाती है।

ध्यान देने कि बात है कि इस नाटक में एक ही स्त्री पात्र है- माधवी। पिता ययाति, मुनिकुमार गालव, ऋषि विश्वामित्र, राजा हर्यश्च, राजा दिवोदास-सभी पुरुष पात्रों से माधवी कई गुणा ज्यादा शक्तिशाली है। वह इस्पाती व्यक्तित्व वाली है, जो हर विपरीत परिस्थिति में खड़ी रहती है। गालव के उसे धोखा देने पर भी अपने प्रेम की स्मृति में अंत में माधवी गालव के लिए शुभाशीष ही छोड़कर जाती है-

''युग-युगों तक तुम्हें मेरा आशीर्वाद मिलता रहे।'' (साहनी 2021:119)

निष्कर्ष :

इस नाटक को बारीकी से देखने के बाद एक बात स्पष्ट हो जाती है कि पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री हमेशा छली जाती रही है, चाहे वह आधुनिक युग हो या पौराणिक। स्त्री मूलत: ममतामयी एवं भोली होती है। उसके भोलेपन का फायदा उठाकर पुरुष अपनी महत्वाकांक्षा पूरी कर लेता है। स्त्री को थोड़ा कठोर होना होगा और इस बात का भी खयाल रखना होगा कि आँख मूँद कर वह किसी पर विश्वास न करे। पुरुष को प्यार करे, पर यदि पुरुष उसके प्यार की लाज नहीं रखता तो समय रहते उसे त्याग सकने की कुव्वत भी रखे। ❑

ग्रंथ सहायक :
साहनी, भीष्म, माधवी, दूसरा पेपरबैक्स संस्करण, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2021

भारतीय सामाजिक व्यवस्था और आधुनिक स्त्री

(21वीं सदी की कहानियों के संदर्भ में)

दीपक कुमार मिश्र

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलोंग, मेघालय - 793022
मो. - 7763919040
ई-मेल : deepaknehuw|@gamil.com

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति बहुत ही अच्छी और वह घर की स्वामिनी हुआ करती थी। वैदिक युग में स्त्री को शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति थी और साथ ही पुरुषों के समक्ष बैठकर शास्त्रार्थ भी करती थी। घर के कार्यों का सभी निर्णय स्वयं करती थी। मगर बदलते परिवेश और सामाजिक स्थिति में स्त्री की स्थिति भी बदलती गई। मनुस्मृति में जहाँ एक ओर स्त्री की पूजा की बात की गई है, वहीं दूसरी और उसे बिना पुरुष का जीवन व्यतीत करना मुश्किल बताया गया है। स्त्रियों पर बंदिश लगाते हुए यह कहा गया है कि स्त्री को बचपन से बुढ़ापा तक पुरुष का सहयोग प्राप्त होना चाहिए। जैसे वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए भगवान सिंह लिखते हैं- ''सुदूर अतीत में स्त्रियों की स्थिति भले ही अच्छी रही हो, पर वैदिक काल तक स्त्रियों की स्थिति परवर्ती कालों से अच्छी नहीं रह गई थी। अन्य अनेक बातों की तरह नारी जाति पर प्रतिबंध और सामाजिक उत्पादन से उसे अलग करके केवल संतान पैदा करने और पुरुष की विलासिता का साधन बनाने का तथ्य भी आर्थिक विषमता को प्रकट करता है।''[i] स्त्री के प्रति बदलते रवैया में सुधार की ही नहीं, बल्कि उसे अतीत से भी ज्ञान प्राप्त करने की बात होनी चाहिए, जिसमें स्त्री अपने कलाओं, परंपराओं, शिक्षा, बुद्धि, विवेक आदि में पुरुष से भी आगे मानी जाती थी। उसी स्त्री की स्वतंत्रता को नकारते वैदिक पितृ सत्तात्मक समाज की स्थापना हुई, जिसमें स्त्री के प्रति स्वतंत्रत सत्ता को नकारने की बात खारिज की गई थी। भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति कई समस्याएँ व्याप्त थीं, जिस कारण से स्वतंत्र भारत में स्त्री समस्याओं के निवारण को लेकर संविधान में कई मजबूत नियम निर्धारित किए गए। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, एनी बेसेंट, महात्मा गाँधी और कस्तूरबा गाँधी आदि कई मुख्य समाज सुधारकों द्वारा किए गए प्रयास सफल सिद्ध हुए। समाज में विद्यमान समस्याओं का निदान भी हुआ। जैसे- सती प्रथा पर रोक लगा दी गई एवं विधवा पुनर्विवाह आरंभ हुआ, विधवा की स्थिति में सुधार किया गया और पुरुषों द्वारा बहु-विवाह का

निषेध हुआ। वृद्ध-विवाह यानी की वृद्ध पुरुष की शादी, ऐसी सामाजिक परंपरा का भी विरोध किया गया। इस प्रकार 20वीं सदी तक सामाजिक समस्याओं से निबटारा पाने के उपाय किए गए। इस सदी के पाँच दशक अत्यधिक महत्व रखते हैं, क्योंकि इसी समयावधि में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ वृद्धों में साक्षरता-दर की स्थिति को बढ़ाने के लिए साक्षरता आंदोलन आरंभ हुआ। सूचना प्रौद्योगिकी और संचार माध्यमों के विकास के साथ आई नई क्रांति ने स्त्री समाज में सजगता प्रदान की। साक्षरता और प्रौद्योगिकी विकास से स्त्रियों में धीरे-धीरे अपने अधिकारों के प्रति सजगता बढ़ने लगी। सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों को लेकर संसद भवन तक स्त्रियाँ आवाज उठाने में सक्षम होती गईं। समाज की दोहरी नीति पर क्षमा शर्मा लिखती हैं- ''मैं अक्सर इस दोगलेपन पर कलम चलाती रहूँ। आगे भी चलाऊँगी। मैं सामाजिक तौर पर एक मजबूत स्त्री देखना चाहती हूँ, जिससे कोई यह कहने की हिम्मत ना कर सके कि औरत हो औरत की तरह रहो। जहाँ स्त्री का जन्म लेना ही उसका अपराध ना हो जाए।''[ii] भारत में असंख्य देवी-देवताओं को मानने की बात की गई है, जिसमें कोई धन की देवी है तो कोई विद्या की देवी, कोई शक्ति प्रदान करने वाली है तो कोई ऐश्वर्य प्रदान करने वाली मानी जाती है। इस प्रकार स्त्री के विविध रूपों की पूजा वैदिक युग से पहले भी होती आ रही है। परंतु परंपरा और मिथक के रूप में आज भी स्त्री के स्वरूपों की पूजा और अर्चना की जाती जो कि भारतीय समाज के अस्तित्व को पुष्टि प्रदान करता है। मातृ सत्तात्मक समाज के अस्तित्व की बात करते हुए एंगेल्स सामाजिक विकास के मोर्गेन और टाइलर के अध्ययन के आधार पर यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि ''किस प्रकार सारी दुनिया में सभ्य समाज के विकास के पहले का प्रागैतिहासिक समाज न सिर्फ मातृ सत्तात्मक मूलक ही था, बल्कि समाज के विकास की प्रक्रिया में वह अब तक का सबसे लंबा काल भी था।'' [iii] इस प्रकार देखने से पता चलता है कि भारतीय समाज में विकास के साथ-साथ पूँजीवाद का विकास होते ही समाज में स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गई, मगर देवियाँ आज भी पूजनीय मानी जाती हैं। जैसे सरला माहेश्वरी लिखती हैं, ''यह एक ऐसी द्वैत स्थिति है, जब वास्तविकता में नारी की स्वतंत्रता का हनन करके उसे दास बना लिया गया है, लेकिन चेतना के स्तर पर पूजा के लिए आज भी देवियों का अस्तित्व बना हुआ है।''[iv] वैदिक युग से अब तक मातृ सत्तात्मक व्यवस्था को खत्म करके पितृ सत्तात्मक समाज ने वर्ण व्यवस्था को और वर्ण लिंग के आधार पर संपत्ति के अधिकार में जो बदलाव हुआ है उसकी ओर इंगित करते हुए एस. एन. डागे लिखते हैं, ''सबसे पहले तो हम यह देखते हैं कि जैसे ही वर्ण विनिमय और निजी संपत्ति की उत्पत्ति हुई वैसे ही गृह युद्ध और गुण पदों के साथ-साथ प्रजापति और गृहपति इतिहास में सबसे आगे आ गए। अदिति और दिति आदि माताओं की संतानों के गणयुद्ध इतिहास में विलीन होने लगे। दूसरे गोत्र अपत्य अब पिता के पुत्रों की परंपरा के अनुसार होने लगे।[v] इस प्रकार भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति समय अनुसार मातृ सत्ता से हटकर पितृ सत्ता में दास की स्थिति में पहुँच गई।

मध्य युग : वैदिक युग से मध्य युग तक के सफर में स्त्रियों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं हुआ, बल्कि स्त्री वस्तु के समान भोग्या और उपहार स्वरूप ही मानी गई। पुरुष व्यवस्था समाज में ज्यादा हावी रही, हर वर्ग में स्त्रियों की स्थिति दोयम दर्जे की रही। सती प्रथा, बाल विवाह एवं उपहारस्वरूप स्त्री का इस्तेमाल आदि से सामाजिक स्थिति में स्त्री त्रस्त हो रही थी। यहाँ तक कहा गया कि- 'ढोल गवार शुद्र पशु नारी यह सब ताड़ण के अधिकारी'। यानी स्त्री की तुलना ढोल और पशु के समान की गई। डीडी कोसांबी के अनुसार, ''स्त्रियों को वर्ण व्यवस्था के निम्नतम वर्णों वैश्य और शुद्र के साथ ही पाप योनी वाले वर्ग में रखा गया है।''[vi] इस प्रकार मध्य युग में स्त्री की सामाजिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी, जिससे निकलने की सुगबुगाहट उन्होंने आरंभ कर दी।

आधुनिक युग : यह क्रांतिकारी युग माना जाता है, जिसमें अंग्रेजों से आजाद होने की छटपटाहट है तो दूसरी ओर स्त्रियों में जागृति भरने का आवाहन भी है।

औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी सभ्यता का उदय, एंगेल्स द्वारा भगवान की मृत्यु की घोषणा आदि कई प्रकार के संक्रमण से भारतीय समाज और आम जनता ओत-प्रोत थे। देखा जाए तो बदलते समयानुसार स्त्रियों में जागृति आने लगी थी, क्योंकि वे पश्चिमी सभ्यता और नई शिक्षा प्रणाली से अवगत हो चुकी थीं। वैदिक युग से दबे आंदोलन की भावना को जागृत होने के लिए अग्रसर हो रही थीं। पूर्णविराम और साथ ही समाज सुधार के द्वारा समय-समय पर आंदोलन का प्रभाव ही था कि स्त्री का स्वर मुखर होने लगा। पूँजीवादी युग में व्यक्ति स्वयं तक सीमित हो गया। संपत्तियों में स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं दिया जाता था, जबकि संपत्ति संबंध अधिनियम में स्त्रियों को बराबरी का अधिकार दिया गया था। परंतु सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों के अधिकार पर ध्यान नहीं दिया गया, बल्कि पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री पराधीन मानी गई। जन्म से ही स्त्री में अंतर प्रारंभ कर देते हैं। उन्हें ससुराल भेज दिया जाता है, जहाँ पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर नई नवेली बहू का शोषण करना प्रारंभ करते हैं। ऐसी सामाजिक परिस्थिति को देखते हुए आशा रानी व्होरा लिखती हैं- ''उनके वैज्ञानिक अधिकारों और रूढ़िगत सामाजिक अधिकारों में जमीन आसमान का अंतर है। घर-परिवार, रिश्तेदारी, धर्म-परंपरा के नाम पर स्त्रियों का दायरा निरंतर सीमित किया जाता है, जिससे ना तो वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर पाती हैं और ना ही समाज को अपना पूरा योगदान दे पाती हैं।''[vii] पूँजीवाद ने स्त्री को वस्तु के रूप में उभारा और बाजरवादी सभ्यता ने स्त्री को नग्न शरीर के रूप में कार्य लेना प्रारंभ किया। परिवार में बँटवारा हो गया। व्यक्ति एकल परिवार पर ध्यान देने लगे। एंगेल्स कहते हैं, ''आधुनिक व्यक्ति परिवार नारी की खुली और छिपी हुई घरेलू दास्ताँ पर आधारित है और आधुनिक समाजवाद वह समुदाय है, जो व्यक्तिक परिवारों के अगुओं से मिलकर बना है।''[viii] आज पूरा विश्व स्त्री मुक्ति आंदोलन और समाज में स्त्री की बराबरी हिस्सेदारी की बात करता है। भारतीय समाज में भी धीरे-धीरे स्त्रियों में जागृति आने लगी है और वह भी व्यक्ति के संदर्भ में स्वयं को समाज में स्थापित करने की माँग करने लगी हैं। 21वीं सदी की लेखिकाएँ सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करना चाहती हैं, समाज का मूल बिंदु स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं। यदि दोनों को बराबरी का सम्मान ही नहीं प्राप्त हो तो वहाँ सामाजिक स्थिति डगमगाती-सी प्रतीत होती है। समाजवादी दर्शन के अनुसार-''मानव किसी मानवोपरिशक्ति की कठपुतली नहीं है, और न किसी विराट कल का एक पुरजा ही है। बल्कि मानव उस संसार का, उस समाज का है, जिसमें वह रहता है, स्रष्टा है।''[ix]

स्त्री को मानव रूप में देखने की बात 21वीं सदी की महिला लेखिका करती हैं। आज किसी भी भाषा की लेखिका अपनी सामाजिक परिस्थितियों से अवगत होकर उस में व्याप्त बुराइयों और अच्छाइयों को पाठक या समाज के समक्ष रखने में हिचकिचाती नहीं हैं। कहानीकार और समाज के मध्य संबंधों को उद्घाटित करते हुए डॉ. मीनाक्षी पाह्वा लिखती हैं- ''रचनाएँ रचनाकार और समाज के बीच की कड़ी होती हैं और यह कड़ी धीरे-धीरे रचनाकार का दायित्व बन जाती है। यह कड़ी श्रृंखलाबद्ध होकर समकालीन कहानी के

अकेलेपन की पुरानी परिभाषा अविवाहित होना है, परंतु नई परिभाषा का अर्थ है एक नई जिंदगी की शुरुआत। एक नई स्वतंत्रता का ऐलान, जिसमें सब कुछ है, मगर प्रताड़ना, असुरक्षा, आँसू अविश्वास नहीं है। जो अंजाम है अच्छा या बुरा वह आपका अपना हिस्सा है, क्योंकि उसको आपने स्वयं चुना है। यह नई जीवन शैली वर्तमान परिस्थितियों में किसको कितनी रास आती है, यह भी समय ही तय करेगा।

पाठक को समाज में जोड़ने का काम करती है।''[x] इस प्रकार समाज और कहानीकारों का अन्योन्याश्रित संबंध दिखाई पड़ता है, जिसको 21वीं सदी की प्रमुख महिला कहानीकारों की कहानियों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे- कृष्णा अग्निहोत्री कृत 'अपना-अपना अस्तित्व' कहानी संग्रह की 'झुर्रियों की पीड़ा' नामक कहानी में स्वतंत्र निर्णय लेती हुई स्त्रियाँ कहती हैं- ''मोहित मुझे शादी के बाद अपने पिता की देखरेख हेतु पूना ले जाना चाहता था, पर मेरी माँ के अकेलेपन का समाधान एक ही वाक्य से करवा 'शादी के बाद तो ससुराल ही प्रमुख रहता है ना।' मैंने मायका प्रमुख समझा। जीवन की परिभाषा मैंने अपने कर्तव्यानुसार चुन ली। जिस माँ ने अपनी जवानी मेरे लिए चुनी तो मैं उनके लिए क्यों न चुनूँ?''[xi] चंद्रकांता द्वारा रचित 'चंद्रकांता की यादगार कहानियां' के 'ओ सोनकिसरी' नामक कहानी में लेखिका लिखती हैं- ''जीजा ने कसे जबड़ों से बात अधबीच ही काटकर कहा था - अभी रितु छोटी है। जब उसकी शादी का वक्त आएगा तो सोना की आइडियालॉजी और पापा का सोशल रिफार्म हम भी देखेंगे। तुम्हारे विमल भैया समझदार निकले जो समाज-सुधार की भावुकता में न पड़े और पापा के उसुलों पर बेटी की जिंदगी बरबाद न होने दी...बर्बाद! जीजा जी ने बात कही या भाला फेंका? तुम तिलमिला उठी। तुम्हारी आँखों में जलते अंगार दहक उठे। तुमने ज्यादा सहा था, पर पापा के साथ तुम्हारी सहमति थी। कुछ बदलने का विश्वास और दमखम भी। न, गलत के आगे झुकना नहीं है।''[xii] समाज में स्त्रियाँ परचम लहरा रहीं तो कहीं-कहीं अपना सर्वस्व पति और परिवार को न्योछावर भी कर रही हैं। इसका यथार्थ चित्रण मीरा कांत द्वारा रचित 'गली दुल्हनवाली' कहानी संग्रह की 'स्मृति-पिंड' नामक कहानी में मिलता है। जैसे- ''इधर रजनी की पढ़ाई का बेहतरीन रिकॉर्ड देखते हुए और ताऊजी के रसूख से उसे इलाहाबाद के सेशन कोर्ट में स्पेशल मजिस्ट्रेट के पद का न्योता मिला। रजनी और परिवार की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। पर यह खुशी अधिक न टिक पाई थी। रैना परिवार ने सवाल उठाया था कि जिस कोर्ट में उनका बेटा वकालत करता है, वहीं बहू मजिस्ट्रेट कैसे बन सकती है, चाहे वह पद मानद ही क्यों न हो? सो नौकरी से मुँह मोड़ रजनी ने शादी के बाद अम्मू बनकर अपनी गृहस्थी को सँभाला।''[xiii] स्त्री सर्वप्रथम अपने व्यक्तित्व को उभारना चाहती है, वह व्यक्ति के रूप में समाज में स्थापित होकर स्वतंत्र निर्णय लेना चाहती है, अपनी स्वतंत्र अस्मिता की पहचान करवाना चाहती है, वह किसी और के निर्णय से वर चयन नहीं करना चाहती, बल्कि स्वतंत्र रूप से वर का चयन करना चाहती है। इस प्रकार से वह जया जादवानी कृत 'अनकहा आख्यान' कहानी संग्रह की 'क्या आपने मुझे देखा है' कहानी में स्वयं को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखती है। जैसे- ''न देह, न रूह, किसी को देखकर आप अनुमान नहीं लगा सकते कि वह कितनी उजली या मैली है। हम देखते हैं त्वचा या बालों का रंग, आँखों की चमक, चेहरे का ताब और खामोश भाषा, जो कहने-सुनने से परे अपना मायाजाल खुद रचती है। मैं जानती हूँ आप क्या सोच रहे हैं मेरे बारे में? क्या मुझे इससे कोई फर्क पड़ता है? जिसके संबंधों का इतिहास आपको नहीं मालूम उसके बारे में किया गया कोई भी फैसला एक गलत फैसला होगा।

जैसे ही मैं उसके सामने बैठी उसने मुस्कुरा कर मुझे देखा...'प्लीज कम...वेटिंग फोर यू...' मेरी आँखें चौड़ी हो गईं... 'तुम मुझे देखते रहे हो....' 'ऑफकोर्स यस। यू आर वेरी ब्यूटीफुल। एक जलती हुई लपट हैं आप, कोई भी भस्म होना चाहेगा।''[xiv] समाज में स्त्री सामाजिक समस्याओं से अलग हो स्वतंत्र अस्मिता की खोज करना चाहती है। सामाजिक परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़कर नए मूल्य गढ़ना चाहती है। समाज में स्त्रियाँ पति के अलावा अन्य पुरुष के साथ भी स्वतंत्र संबंध रखती हैं, जिसको कहानीकार कविता द्वारा रचित 'नदी जो अब भी बहती है...' कहानी संग्रह की 'उस पार की रोशनी' कहानी में वर्तिका और सूरज (पति-पत्नी) के बीच रवि (दूसरा पुरुष) का आना एक नए संबंध को उजागर करता है। जैसे- घर से सूरज के चले जाने के बाद रवि आकर वर्तिका के साथ रहता है और वर्तिका इसको स्वतंत्र रूप से स्वीकारती भी है-''वर्तिका ने अपने हिस्से के सुख में सेंध मारी थी और उसे पा भी लिया था। अनंत सुख में डूबे हुए। उन दोनों को किसी भी वस्तु का भान नहीं था। वे टूटकर जिए थे और मर भी गए थे। बड़ी ने सुबह के चार बजे का अलार्म बजाया था। वे हड़बड़ाकर एक दूसरे से अलग हुए थे, चार बज गए? वर्तिका के हाथों अल्बम का वह पन्ना यूँ कसा हुआ था जैसे उन क्षणों को अपनी मुट्ठी से आजाद नहीं करना चाहती।''[xv]

पुरुष किस प्रकार स्त्री को प्रेम के झाँसे में डालकर माँ बना कर छोड़ देता है और आजीवन स्त्री उस कसमसाहट में जीती रहती है। ऐसी सामाजिक समस्याओं से स्त्रियाँ दूर भागने लगीं और विवाह को नकार कर अकेले जीवन जीने का फैसला लेने लगी हैं। नासिरा शर्मा लिखती हैं कि- ''अकेलेपन की पुरानी परिभाषा अविवाहित होना है, परंतु नई परिभाषा का अर्थ है एक नई जिंदगी की शुरुआत। एक नई स्वतंत्रता का ऐलान, जिसमें सब कुछ है, मगर प्रताड़ना,असुरक्षा, आँसू अविश्वास नहीं है। जो अंजाम है अच्छा या बुरा वह आपका अपना हिस्सा है, क्योंकि उसको आपने स्वयं चुना है। यह नई जीवन शैली वर्तमान परिस्थितियों में किसको कितनी रास आती है, यह भी समय ही तय करेगा।''[xvi]

अंतत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में प्रागैतिहासिक युग से लेकर अब तक की स्त्रियों की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता आ रहा है। मातृ सत्तात्मक समाज में स्त्रियों में निर्णय की क्षमता, स्वावलंबन आदि का भाव कूट-कूट कर भरा था, मगर धीरे-धीरे पितृ सत्ता ने उसके भाव को ही कुचल दिया और उसे संकोची, अर्धांगिनी, ममतामयी, दूसरों पर आश्रित आदि बनाकर बेड़ियों में जकड़ दिया। इसे आधुनिक युग में आकर स्त्रियाँ धीरे-धीरे तोड़ने का प्रयास करती हुई सफल हो रही हैं। आज स्त्रियाँ स्वावलंबी और आर्थिक रूप से मजबूत हैं, जिस कारण से वह स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए आत्मनिर्भर हो गई हैं। राजनीति के क्षेत्र में उच्च पद पर आसीन हैं तो दूसरी ओर चंद्रमा तक जा चुकी हैं। अब वह लाचार नहीं, दूसरों पर आश्रित नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की धनी मानी जाती हैं, जिस पर कोई अपना अधिकार नहीं जमा सकता, क्योंकि वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की धनी बन गई हैं। ❑

संदर्भ :

i. सिंह, भगवान, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, पृ.188
ii. शर्मा, क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पृ.13
iii. माहेश्वरी, सरला, नारी प्रश्न, पृ. 83
iv. वही
v. डागे, एस.एम., भारत : आदिम समय बाद से दास प्रथा तक का इतिहास, पृ.-131
vi. कौशांबी, डी. डी., मिथक और यथार्थ, पृ.18
vii. व्होरा, आशारानी, औरत : कल, आज और कल, पृ. 31
viii. एंगेल्स, परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ. 95
ix. रत्नाकर पांडे, हिंदी साहित्य, सामाजिक चेतना, पृ. 186

x. पाह्वा, डॉ. मीनाक्षी, समकालीन हिंदी कहानी, पृ.- 7
xi. अग्निहोत्री, कृष्णा, अपना-अपना अस्तित्व, पृ.-15
xii. चंद्रकांता, चंद्रकांता की यादगार कहानियाँ, पृ. 58-59
xiii कांत, मीरा, गली दुल्हनवाली, पृ. 63
xiv. जादवानी, जया, अनकहा आख्यान, पृ. 98
xv. कविता, नदी जो अब भी बहती है, पृ. 71
xvi शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, पृ. 164

सहायक ग्रंथ :

- अग्निहोत्री, कृष्णा, अपना-अपना अस्तित्व, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण : 2018
- एंगेल्स, फ्रेडरिख, परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, संस्करण : 2014
- कविता, नदी जो अब भी बहती है..., सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2011
- कौशांबी, डी.डी., मिथक और यथार्थ, ई बुक, पीडीए।
- कांत, मीरा, गली दुल्हनवाली, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2009
- चंद्रकांता, चंद्रकांता की यादगार कहानियाँ, हिंदी पॉकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण- 2009
- जादवानी, जया, अनकहा आख्यान, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2019
- डागे, एस.एम., भारत : आदिम समय बाद से दास प्रथा तक का इतिहास, पृष्ठ संख्या-131
- पांडे, रत्नाकर, हिंदी साहित्य ,सामाजिक चेतना, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 1976
- पाह्वा, डॉ. मीनाक्षी, समकालीन हिंदी कहानी, के. के. पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण- 2007
- माहेश्वरी, सरला, नारी प्रश्न, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2007
- व्होरा, आशारानी, औरत : कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, संस्करण- 2005
- शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2019
- शर्मा, क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पृ.-13
- सिंह, भगवान, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2011

भारतीय मूल्य और संस्कृति के व्यामोह में भटका प्रवासी स्त्री जीवन

(उषा प्रियंवदा के उपन्यासों के संदर्भ में)

चंचल मेहरा

शोधार्थी, हिंदी
श्री माणिक्यलाल वर्मा राजकीय
महाविद्यालय, भीलवाड़ा
महर्षि दयानंद सरस्वती
विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)
मो. 7023664112
ई-मेल : mehra.chanchal147@gmail.com

वर्तमान में अति आधुनिकता और फैशन परस्त दुनिया की होड़ा-होड़ी में विदेश गमन सामान्य हो गया है। भारतीयों को पाश्चात्य परिवेश और जीवन शैली अधिक सुविधाजनक लगती है, बजाय भारतीय संस्कृति के। परंतु हर चमकता पत्थर हीरा नहीं होता है, वैसे ही पाश्चात्य जीवन भारतीयों के लिए दूर से सुख-सुविधापूर्ण हो सकता है; परंतु नए परिवेश, भाषा, संस्कृति, खानपान, रहन-सहन और वातावरण में वह सामंजस्य बैठा ले- यह इतना सरल नहीं। इसी सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली में प्रवासी लोगों को कई समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। कई लोग इन समस्याओं से जूझते हुए सफलता प्राप्त करते हैं और कई उस मुकाम पर नहीं पहुँच पाते, जिसके लिए उन्हें स्वदेश त्यागना पड़ा। परिस्थितियाँ चाहे जो रहें, स्वदेश का मोह उनके मन को व्यथित करता रहता है। भारतीय संस्कार और मूल्य जिस प्रकार नैतिकता से पूर्ण हैं, वही पाश्चात्य मूल्य और संस्कारों में नैतिक-अनैतिक का प्रश्न ही नहीं ? ''यह मानने में संकोच नहीं किया जाना चाहिए कि आज भारत में हम जिस आधुनिक बोध की बात करते हैं और जिसकी जड़ें हम सप्रयास अपनी चिंतन परंपरा में खोज लेते हैं- वह है, मूलत: पश्चिमी अवधारणा।''[1]

आधुनिकता और निजी स्वतंत्रता ने व्यक्ति की स्वतंत्रता को उच्छृंखलता में परिवर्तित कर दिया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सेक्स के दुराग्रह को भी स्वतंत्रता प्रदान की गई है; जिससे विवाह जैसी नैतिक और सामाजिक संस्था के मायने बदल चुके हैं- लैस्बियन, लिव-इन-रिलेशनशिप, होमोसेक्सुअलिटी जैसे नए संबंधों के पीछे संस्कार और मूल्य लुप्त हो गए हैं। आधुनिकता और पाश्चात्य चकाचौंध में लोकगीतों का स्थान फूहड़ और शोर भरे गीतों ने ले लिया है। पारंपरिक वेशभूषा और सौंदर्य के नाम पर जीर्ण-क्षीण वसन और अर्धनग्न प्रदर्शन हल्ला बोल रहे हैं। स्त्री के आत्मावलंबन, आत्मबल और स्वाभिमान के स्वर में पुरुष सत्ता की पुरातनता पर खतरा मँडराने लगा है।

पारिवारिक संबंधों में दरार आने लगी है, पाश्चात्य संस्कृति का बहुत बड़ा प्रभाव इस पर रहा है। विदेशी चकाचौंध और आधुनिकता के आकर्षण में भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रति मोह और अज्ञानता उसके विदेशों में भटकने के लिए उत्तरदायी है।

प्रवासी भारतीय लेखिका उषा प्रियंवदा भारतीय संस्कारों के साथ भारतीय समाज में पोषित हुई हैं। भारतीय संस्कारों और परंपरा की छाप उनके साहित्य में देखने को मिलती है। विदेशी परिवेश के कारण उनके साहित्य में मनोभावात्मक विचारों का संक्रमण भी देखने को मिलता है। पूर्व और पश्चिम का द्वंद्व किस प्रकार प्रवासी भारतीयों में मानसिक अलगाव, स्वदेश की पीड़ा, संस्कारों की टकराहट और परिवेशजनित समस्याओं को उत्पन्न करता है? इसका यथार्थ चित्रण इनके साहित्य में किया गया है। उनके कथा साहित्य में देशी-विदेशी पात्रों और परिवेश का मिश्रण हिंदी भाषा और साहित्य को वैश्विक बनाने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। डॉ. संतबक्श सिंह उषा प्रियंवदा के लेखन के विषय में कहते हैं कि ''उषा प्रियंवदा ने देशी और विदेशी परिवेशों में स्त्री-पुरुष के संबंधों को व्यक्त किया है। इनके प्रस्तुतीकरण में शिष्टता, भावाभिव्यक्ति में वैचारिक गरिमा, भावुकता में बौद्धिक अनुशासन और सर्वत्र शिक्षित संतुलित दृष्टि दिखाई पड़ती है। इन्होंने कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रमाणिकता को कथा में उतारा है।''[2]

उषा प्रियंवदा अपने उपन्यासों में संस्कृति के इसी संक्रमण को उजागर करती है। इनके उपन्यास 'शेष यात्रा' की अनु विदेशी इंद्रधनुष के सतरंगी रंगों में कई सपनों को सँजोकर विवाह के पश्चात पति के साथ अमेरिका चली जाती है। पर वहाँ की चकाचौंध, दिखावे और औपचारिकता पूर्ण परिवेश से स्तब्ध रह जाती है। तब भारतीय संस्कृति के प्रति उसका व्यामोह समाप्त होता है। स्त्री-पुरुषों के परिवर्तित होते अंतरंग संबंध विदेशों में आम है। अनु का पति प्रणव भी ऐसे अनैतिक संबंधों में डूब जाता है। अनु व्यथित होती है, उसे अपना भारत और भारत में अपने लोग याद आते हैं। वह कहती है- ''प्रणव को कोई समझाता क्यों नहीं? कोई जाकर समझदारी से बात करे तो शायद प्रणव लौट आए। मगर इंडिया होता तो क्या मामा लोग समझाते-बुझाते नहीं? जोर नहीं डालते? यहाँ तो कोई...।''[3]

वहीं प्रणव का सीनियर डॉक्टर वाटसन अनु को अकेले देख कर उस पर विदेशी औरतों की तरह शारीरिक संबंधों के लिए दबाव डालता है और उससे जबर्दस्ती करता है । परंतु अनु भारतीय संस्कारों और अपने पतिव्रत धर्म का पालन कर नैतिकता से पूर्ण स्त्री थी। वह बाथरूम में खुद को बंद कर लेती है और अपने स्वाभिमान की रक्षा करती है। पति-पत्नी के संबंधों में टूटन और शारीरिक इच्छा की पूर्ति हेतु नित्य नवीन संबंधों का आकर्षण और आकर्षण खत्म होने पर रिश्तों का खत्म होना, पश्चिम में सामान्य है। इसलिए वहाँ के स्त्री-पुरुष अंत में रहते हैं, अकेलेपन के साथ। इसके विपरीत भारतीय मूल्य और परंपरा में माता-पिता का संतान से संबंध देखा जाए तो आमरण अपनी संतान के प्रति वे कर्तव्य से पीछे नहीं हटते। बात पति-पत्नी के संबंधों की हो तो राम और सीता की तरह अटूट और पवित्र संबंध यहाँ की संस्कृति में देखे जाते हैं। परंतु यह पश्चिमी संस्कृति का ही प्रभाव है कि भारत में भी आज

विवाह-विच्छेद आम हो गए हैं।

शिक्षा ने जागरूकता और आत्मनिर्भर बनने के लिए, स्वाभिमान से जीने के लिए बहुत बड़ी भूमिका निभाई हैं। परंतु शिक्षा यह नहीं सिखाती की दूसरी संस्कृति को अपनाकर, अपनी संस्कृति को भूलकर, उन संबंधों को पीछे छोड़ दें, जिनसे हमारा समाज, हमारा परिवार निर्मित होता है। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की राधिका आधुनिकता से भरी बोल्ड और आत्मनिर्भर स्त्री है। वह अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात पिता के साथ रहने के कारण उन्हीं के प्रति इतनी आसक्त हो जाती है कि इलेक्ट्रा मनोभाव से ग्रस्त हो जाती है। इसी बीच पिता द्वारा राधिका से आयु में तीन वर्ष बड़ी विद्या से विवाह करना उसे विद्रोही स्वभाव का बना देता है। और वह अपने से बीस साल बड़े डैन के साथ बिना किसी को कुछ कहे अमेरिका चली जाती है। परंतु वहाँ भी उसे वह संतुष्टि प्राप्त नहीं होती। वह अपने प्रेमी में भी अपने पिता को ढूँढ़ती है, और वहाँ भी संतुष्ट नहीं रह पाती। ''उसे लगा कि वह इस भीड़, शोर-शराबे, चहल-पहल से एकदम कटी हुई है। वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही, वह यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है, उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है, एक लंबी अंधकार पूर्ण सुरंग-दो वर्ष पहले इस बोध ने उसे काफी विचलित किया था। पर वहाँ तो भिन्न परिवेश था ही, एक भिन्न संस्कृति, वहाँ रहकर पार्थक्य की भावना, बहुत सहज और स्वाभाविक थी। स्वदेश लौटकर स्वजनों के मध्य शायद उसके अंदर का यह हिमखंड पिघल जाए, पर ऐसा संभव नहीं लगता। नित्य प्रति के जीवन की क्रियाएँ वह मशीनी भाव से संपन्न करती आई है, यह बेचैनी, यह ऊब भरी अकुलाहट बढ़ती जाती है।''[4]

विदेश से राधिका लौटती है तो पड़ोसी व रिश्तेदारों में चर्चा का विषय बन जाती है। विदेशों के प्रति हमारी सामाजिक मानसिकता कहें या वहाँ की संस्कृति का खुलापन, हमारे मन में बरबस ही उद्देश्यरहित प्रश्न उठ ही पड़ते हैं। राधिका की भाभी भी इसी उत्कंठा के साथ उससे पूछती है कि ''अच्छा बीवी इतने दिन उस मर्द के साथ रहकर भी बाल-बच्चों से कैसे बची रही।''[5] इसी क्रम में इनका 'अंतर्वंशी' उपन्यास भारतीयों का विदेशी जीवन के प्रति मोहभंग करता है। उपन्यास की नायिका वनश्री जो विवाह के पश्चात अमेरिका प्रवास पर वाना बन जाती है। विदेशी आकर्षण में आकर भारतीय संस्कृति को हृदय में रखकर वही के रंग में रंग जाती है। समलैंगिक संबंधों और शारीरिक संबंधों की तृष्णा का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। विदेशी लबादा ऐसा है कि कुछ छुपा भी, और कुछ ढका ही नहीं जैसा। पाँच मीटर की साड़ी पहनने वाली वनश्री भी, जब वाना बनती है तो विदेशी कलेवर में विदेशी मैम बन जाती है। ''लहंगे फरिये से फराक से साड़ी और अब की स्कर्ट-ब्लाउज व क्रिस्टीन की दी हुई, छोटी कसी काले चमड़े की स्कर्ट और सफेद ब्लाउज, कॉलर पर हल्की-सी चुन्नट।.... कितने दिन अटपटा लगा था, आगे न पल्ला, न दुपट्टा, जांघों से लेकर नीचे तक खुली टांगें।''[6] शायद यही बाहरी सौंदर्य वहाँ संबंधों में स्थायित्व स्वीकार नहीं कर पाता। संबंधों में ऊब के कारण पति-पत्नी के संबंध में दरार विदेशों में बड़ी आम बात है। पति-पत्नी कपड़ों की भाँति बदलना वहाँ सामान्य है। ''इतने बुढ़ापे में पुरानी बीवी को छोड़कर, नई बीवी क्या विवाह संबंध इतनी आसानी से तोड़ा जा सकता है?''[7] इसलिए विदेशों में ब्याही गई भारतीय स्त्रियों की स्थिति प्रवास पर यही होती है की बाहरी प्रेम संबंधों के कारण वे ठुकरा दी जाती हैं। ''यहाँ तो शालीन से शालीन पुरुष बीवियों को धुनक देते हैं। यहाँ तो जैसे कोई मर्यादा, कोई सीमा ही नहीं है, जो हम सोच भी नहीं सकते, ऐसे-ऐसे केस हमारे यहाँ आते हैं।''[8]

भारतीय स्त्रियों की इस स्थिति को देखते हुए भारतीयों द्वारा ही स्त्रियों को आश्रय देने हेतु 'आसरा' नामक संस्था अमेरिका में स्थापित की गई है। भारतीय स्त्री का पति चाहे जितना शोषण कर लें, हमारे मूल्य और संस्कार ऐसे हैं कि वह मरते दम तक अपने पति और परिवार को नहीं छोड़ पाती। भारतीय स्त्री के पति परायण भाव को इन पंक्तियों से समझा जा सकता है- ''एक तो हमारी औरतें पिटकुट लेंगी, चुप रहेंगी, पति के खिलाफ जबान नहीं खोलेंगी और कुछ दिन बाद 'आसरे' से घर लौट जाएँगी।''[9] भारत में समलैंगिक संबंध, जिसे कुछ ही समय पूर्व ही प्राकृतिक और कानूनी संबंध माने जाने

लगा है, पश्चिम की ही देन है। वाना जब क्रिस्टीन से भावात्मक रूप से जुड़ जाती है तो उसे नहीं पता होता यह जुड़ाव शारीरिक भी हो जाएगा। उसे क्रिस्टीन के साथ अपना संबंध अप्राकृतिक नहीं लगता। वह कहती है, ''स्त्री शरीर! नग्न! कितना सुंदर, कितनी विचित्र बात है कि वह पुरुषों को भी आकर्षित करता है और स्त्रियों को भी। देहसुख के लिए पुरुष की आवश्यकता नहीं, वह केवल संतान के लिए चाहिए। वाना अकेले बैठे-बैठे सोच रही है। वर्जना किसने की, पुरुषों ने हीं न। अपना दावा, अपना ठप्पा कायम रखने के लिए।''[10]

'भया कबीर उदास' उपन्यास शारीरिक अंग की, कैंसर के कारण रिक्तता और वह भी स्त्री जीवन का सौंदर्य कहे जाने वाले, स्तन के अभाव में जीवन जीती, मानसिक रूप से कुंठित, पैंतीस वर्षीय लिली की कहानी है। कैंसर का उपचार शुरू होने से पूर्व लिली एक पुरुष से स्त्री जीवन का सुख भोगना चाहती थी। इसी बीच उसके जीवन में उसके स्टूडेंट के पिता का मित्र शेषेंद्र आता है और वे दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। दोनों का आकर्षण इतना अधिक होता है कि वह अपना कौमार्य शेषेंद्र को सौंप व संबंध स्थापित कर सुख प्राप्त करती है। वह अपनी संस्कृति, अपनी मर्यादाओं को जानती थी, परंतु मृत्यु के द्वार पर खड़ी, वह अपने अंतिम सपनों को साकार करना चाहती थी। वह यह भी जानती थी कि जब इस रोग के बारे में उसके मित्रों को पता चलेगा तो वह क्या कहेंगे? ''भगवान सजा दे रहे हैं। बाल-बच्चा ना होने से पुरुष संसर्ग के शारीरिक सुख से वंचित इसी फ्रस्ट्रेशन से यह दारुण रोग हुआ है।''[11] यही सोच-सोच कर वह अंदर से अकेली पड़ जाती है। उसे लगता है कि वह एक अनजान देश में है, जहाँ कोई उसका अपना नहीं है, उसे तब भारत और अपनों की याद आती है।

इसी प्रकार 'नदी' उपन्यास की आकाशगंगा पुत्र भविष्य की मृत्यु के पश्चात विदेश में ही छोड़ दी जाती है। ''इस ठंडे पराए देश में, जहाँ आकर लोग इतना बदल जाते हैं कि उन्हें सही गलत का आभास भी नहीं रहता?''[12] इसी तिरस्कार के साथ वह अपने मार्ग से भी भटक जाती है। प्रेम, आश्रय और सम्मान की प्राप्ति में वह मकान मालिक अर्जुन सिंह को स्वयं को सौंप देती है। उसे अनजान देश में कोई और सहारा भी नहीं मिलता। उसके पश्चात पुत्र भविष्य के डॉक्टर एरिक के संपर्क में जब वह आती है तो वह उनसे भी शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है। एरिक और आकाशगंगा का जीवन में यह आकर्षण बहुत दिनों का नहीं होता है। एरिक उसे समझाता है और वापस अपने जीवन में लौटने के लिए कहता है। वह उसकी भारत जाने में भी सहायता करता है। भारत आने के पश्चात आकाशगंगा को पता चलता है कि वह एरिक के बच्चे की माँ बनने वाली है तो वह भारत जैसे संस्कारित देश में एक नाजायज बच्चे और अपने चरित्र को बचाए रखने के लिए वापस अमेरिका लौट जाती है। वहाँ जाकर प्रवीण जी की पत्नी, जो कि कैंसर से पीड़ित थी की सेवा में लग जाती है। जब वह बच्चे को जन्म देती है तो उन्हीं के समझाने पर वह अपना बच्चा समृद्ध दंपति को दे देती है। ''तुम वहाँ से चली आई सही किया। बच्चे को अलग करने के विचार से दहल रही हो, यह भी स्वाभाविक है, पर तुम्हें प्रैक्टिकल होना पड़ेगा।... आजकल की पीढ़ी गोरे-काले में भेद नहीं करती, कितनी मिश्रित शादियाँ और बच्चे हो रहे हैं। मगर तुम सोचो तुम्हारा आधा इंडियन, आधा गोरा बच्चा हमारी तुम्हारी पीढ़ी कैसे स्वीकार करेगी?[13] जब प्रवीण जी की पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो वह प्रवीण जी से विवाह कर उनके साथ उनकी सेवा में लग जाती है। लकवा पीड़ित होने के कारण प्रवीण जी की भी मृत्यु हो जाती है और वापस वह अकेली रह जाती है। इस प्रकार वह स्वयं को संतोष प्रदान करते-करते आजीवन असंतुष्ट ही रहती है। परंतु अंत में जब उसका पुत्र स्तव्य स्टीवन उसे ढूँढ़ता हुआ आता है तो उसके जीवन में उल्लास भर जाता है। इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री जीवन की प्रवास में संघर्ष और प्रवासी स्त्री के विदेशी मोह को भंग करते हुए बताया है।

उषा प्रियंवदा अपने उपन्यासों के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता की ओर आकर्षित होते हुए भारतीयों की ऊहापोह को उजागर करती हैं। जो उस आकर्षण में खो कर अपनी संस्कृति को अनदेखा कर चले तो जाते हैं, परंतु

वहाँ की अति आधुनिकता में रम नहीं पाते और कहीं ना कहीं उनके भीतर का भारतीय तुलना करता है; अपनी संस्कृति से पश्चिमी संस्कृति के साथ। इसी तराजू में स्वयं को तौलते-तौलते वह कई समस्याओं से जूझने लगता है। विदेशों में पति-पत्नी के टूटते संबंध पारिवारिक विघटन को बढ़ावा देते हैं, जिसमें सबसे ज्यादा क्षति बच्चों को होती है। पाश्चात्य विचारों के कारण विवाह के प्रति लोगों का नजरिया बदल चुका है। जहाँ पुरुष एक के बाद एक संबंध तोड़ कर आगे बढ़ जाता है, नए संबंधों के साथ; वहीं स्त्री के लिए भी वैवाहिक जीवन आज केवल समझौता रह गया है। विदेशों में प्रेम के प्रति भी मोहभंग हुआ है, प्रेम मात्र शारीरिक आकर्षण रह गया है। भारत में जहाँ शारीरिक संबंधों का दायरा सीमित करने हेतु विवाह जैसी पवित्र संस्था का संचालन प्राचीन काल से किया जा रहा है, वहीं पश्चिम में निर्बाध यौन जीवन की स्वीकृति ने भारतीय मूल्यों को भी क्षति पहुँचाई है। वहाँ का प्रभाव निरंतर हमारी संस्कृति को संक्रमित करता जा रहा है।

भारतीय मूल्य और परंपरा विवाह, परिवार, वंश, सामाजिकता, नैतिकता से आबद्ध है और व्यक्ति को उत्तम आचरण की ओर प्रवृत्त करते है। पर इस संक्रमित संस्कृति में सामाजिकता, नैतिकता, मूल्यों, संस्कृति, परंपरा का निरंतर ह्रास हो रहा है। एकाकी जीवन के कारण व्यक्ति में घुटन, तनाव, निराशा, कुंठा की प्रवृत्ति विकसित हो रही है। और यही प्रवृत्ति उसे अपराध की ओर अग्रसर भी कर रही है। नैतिकता-अनैतिकता को भूलकर स्वार्थ सिद्धि ही वर्तमान में दृष्टिगोचर हो रही है। उषा प्रियंवदा इस यथार्थ को समाज के समक्ष उजागर करती हैं। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से उस बड़े दर्रे को भावी पीढ़ी के समक्ष लाना चाहती हैं, जिसमें वर्तमान पीढ़ी अधर में झूल रही है। कहीं वे उसी पर चलकर अपनी संस्कृति और सभ्यता को न खो बैठें। भारतीय मूल्यों और संस्कृति का पश्चिमीकरण होने से पूर्व इस पर चिंतन करना आवश्यक है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. नई कहानी कथ्य और शिल्प, डॉ. संतबक्श सिंह, अभिनवभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1973 पृ.सं. 117-118
2. मधुमती पत्रिका, आलेख- डॉ नंद चतुर्वेदी, मार्च 1985
3. शेषयात्रा, उषा प्रियम्वदा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1984 पृ.सं.75
4. रुकोगी नहीं राधिका, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1967 पृ.सं. 88
5. वही पृ.सं. 44
6. अंतर्वंशी, उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020 पृ.सं.16
7. वही पृ.सं. 152
8. वही पृ.सं. 58
9. वही पृ.सं. 59
10. वही पृ.सं. 111
11. भया कबीर उदास, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2007 पृ.सं. 67
12. नदी, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2014 पृष्ठ सं. 36
13. वही,पृष्ठ सं. 112

आलेख

श्रीगुरुनानक देव जी का चिंतन और दार्शनिक विचार

डॉ. अमित कुमार सिंह कुशवाहा

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय
बठिंडा, पंजाब-151401
मो : 9305564350
ई-मेल : amit.kumar@cup.edu.in

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति एक पुरातन संस्कृति है, जिसके निर्माण में ऋषि-मुनियों, संतों, भक्तों और विद्वानों ने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। भारतीय इतिहास के विकास में सप्तसिंधु क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। यहाँ की सिंधु-सरस्वती सभ्यता अत्यंत विकसित थी; जिसका सरोकार पूरे भारतवर्ष से था। सप्तसिंधु क्षेत्र के पावन हवाओं में वेद मंत्र गूँजते रहते थे और इसके नदियों के तट पर हजारों वर्षों से संत-महात्मा साधना किया करते थे। सप्तसिंधु क्षेत्र की अनेको घटनाओं ने पूरे भारतवर्ष को प्रभावित किया। सप्तसिंधु का मैदान कई युद्धों का गवाह रहा है।

आठवीं शताब्दी की शुरुआत में अरबों, तुर्कों और मुगल-मंगोलों ने सप्तसिंधु के क्षेत्र में हमला करना शुरू कर दिया। ये हमले मात्र भौगालिक आधिपत्य के लिए नहीं, वरन अपने मजहब में मतांतरित करने के लिए थे, जिसका दंश सप्तसिंधु क्षेत्र को सहना पड़ा। अरबों, तुर्कों और मंगोल-मुगलों के आक्रमण के कारण भारत इस्लामीकरण के जद में आ गया था। इस इस्लामीकरण का सबसे ज्यादा प्रभाव सप्तसिंधु क्षेत्र हो रहा था। ऐसे समय में दशगुरु परंपरा की शुरुआत दैवी योजना ही हो सकती है, क्योंकि सप्तसिंधु के मैदानों में अभी भी कृष्ण के उस घोष की प्रतिध्वनियाँ गूँज रही थीं, जो उन्होंने महाभारत के युद्ध में किया था -

परित्राणाय धूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।4-8।।

जिस समय श्री गुरुनानक देवजी ने इस क्षेत्र में दशगुरु परंपरा की शुरुआत की थी, उस समय पश्चिमोत्तर भारत में सैयद मौलवियों के बहुत डेरे थे, जो स्थानीय लोगों को बहला-फुसला कर, लोभ-लालच देकर या फिर डरा-धमका कर इस्लाम में धर्मांतरण करा रहे थे, जिसका पुरजोर विरोध श्री नानक देवजी ने किया। उन्होंने इनके अनेक डेरों को निष्प्रभावित किया तथा मानवता के कल्याण एवं धर्म की स्थापना के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

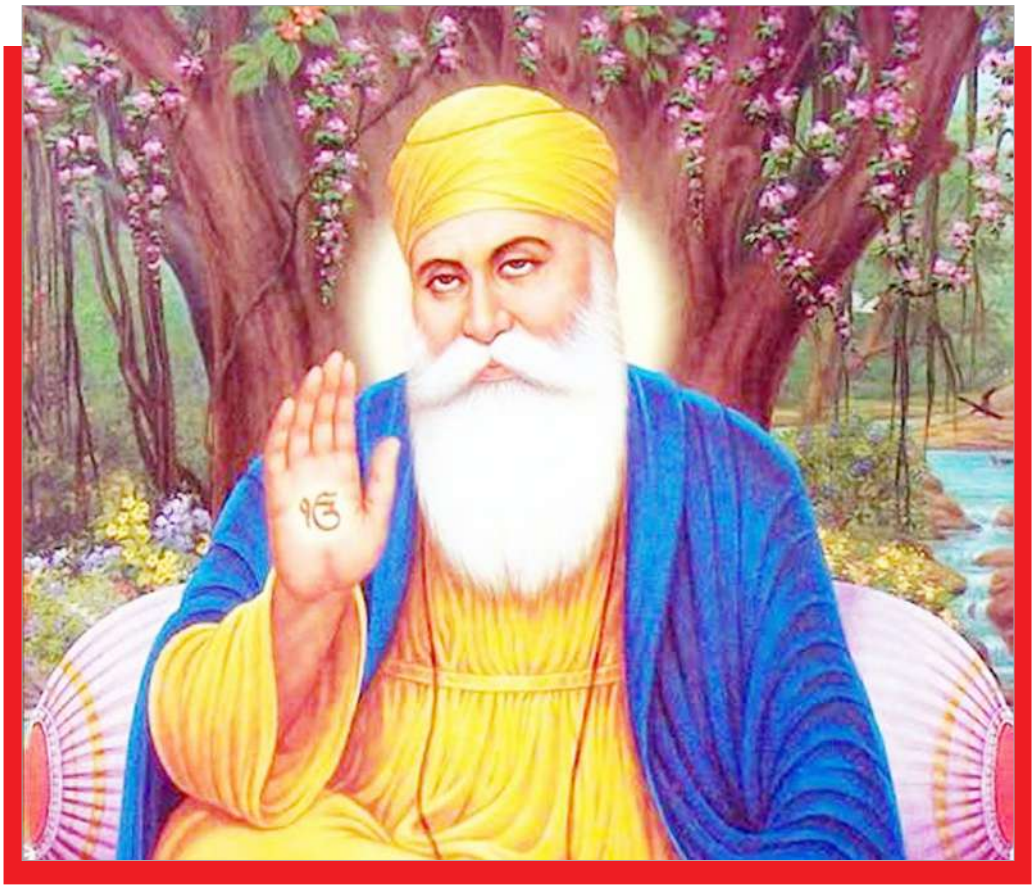

श्रीगुरुनानक देवजी का चिंतन और दार्शनिक विचार :

लोक चेतना और आध्यात्मिक साधना के वाहक श्री गुरु नानक देवजी के चिंतन और दार्शनिक विचार का प्रमुख स्त्रोत उनकी वाणी है। उनकी वाणी को समझने से पहले उसकी प्रकृति को जानना जरूरी है। इसलिए नानक देव की वाणी का भाव समझ लेने की पहली शर्त ही आध्यात्मिक साधना है। अर्थात उनकी वाणी का मूल स्वर आध्यात्मिक है। भारतीय चिंतन परंपरा के दो आयाम हैं- एक, ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने की तथा दूसरा, ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने की। भारत में ईश्वर की संकल्पना का मूलाधार एकेश्वरवाद या बहुदेववाद है। नानक एकेश्वरवाद को स्वीकार करते हैं। नानक का एकेश्वरवाद भारतीय धर्म-साधना में प्रतिपादित निराकार ब्रह्म की परंपरा के काफी समीप है, न कि इस्लाम के एकेश्वरवाद के। इस्लाम का ईश्वर निराकार और साकार के बीच का कहा जा सकता है, क्योंकि इस्लाम के एकेश्वरवाद के साथ उनके नबी या रसूल की महत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ''हजरत मोहम्मद ईश्वरवादी थे, लेकिन ईश्वर के बारे में उनकी कल्पना यह थी कि वह सातवें आसमान पर रहता है और मनुष्यों के सुख-दुख और भक्ति अभक्ति से उसका संबंध है। किंतु गुरु नानक का ईश्वर निराकार है।''[1]

गुरु नानक के ईश्वर का स्वरूप तो एक ओंकार ही है। गुरुनानक देवजी सर्वव्यापी ब्रह्म को मान्यता प्रदान करते हुए कहते हैं कि परमेश्वर अखंड, अनंत, अगोचर तथा जाति आदि सभी से बहुत ऊपर है।

''अलख अपार अगमं अगोचर ना तिसु कालु न करमा।
जाति, अजाति अजोनी संभऊ ना तिसु भाऊ न भरमा।।''[2]

अत: कहा जा सकता है की श्री गुरु नानक देवजी निराकार ब्रह्म की सर्वव्यापकता को स्वीकार करने वाले समतावादी संत थे तथा जाति व्यवस्था विरोधी थे। जाति व्यवस्था व भेदभाव को समाप्त करने के लिए ही एक संगत, एक पंगत और एक धर्मशाला (गुरुद्वारा) की व्यवस्था उन्होंने प्रचलित की। गुरुनानक देवजी जातिगत भेदभाव का विचार किए बिना अपने शिष्य बनाते थे।

''जाणहु जोति न पुछहु जाती, आगै जाति न हे।''[3]

श्री गुरुनानाक देवजी समाज में व्याप्त जाति प्रथा को समाप्त कर वे एक समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। ''गुरुजी की सोच क्रांतिकारी थी। वे पुरातन जर्जरता से बँधने की बजाय नवीन दृष्टि से मनुष्यों को समान अधिकार देने और सबसे सब व्यवहार करने के पक्ष में थे।''[4] गुरुनानाक देव जी निम्न जाति के मनुष्यों से भी प्रेम करने की बात करते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति अपने कर्मों से महान बनता है, वे सबसे निम्न जाति के लोगों को भी अपना संगी-साथी स्वीकार करते हैं-

''जाति का गर्बु न करिअहु कोई,
ब्रह्मु बिन्दे सो ब्राह्मणु होई।।''[5]

गुरु नानक जी ने जाति व्यवस्था को नकार कर 'न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान' अभियान की शुरुआत की, जिससे की जन्म आधारित भेद को समाप्त किया जा सके। ''गुरु नानक ने इस विकट और उलझनमयी स्थिति में जाति को नकार देने में ही समाधान देखा। जाति को नकार देने का आधार दार्शनिक था - ब्रह्म एक मात्र पूर्ण और सत्य है, समस्त जीव उसी के अंश हैं, इसलिए एक समान है।''[6]

गुरु नानक देवजी की साधना मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की अमूल्य निधि है। उन्होंने ईश्वर की व्याख्या बहुत ही सरल शब्दों में किया, जिसका दर्शन उनकी वाणी में देखने को मिलता है। गुरुनानक जब गुरु की बात करते हैं तो वो किसी सांसारिक साम्राज्यवादी गुरु की बात न करके सर्वशक्तिमान परमात्मा की बात करते हैं। परमात्मा या गुरु के स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

''आदि सचु जुगादि सचु।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।''[7]

गुरु नानक देवजी की साधना का सोपान जपुजी है। उनके संपूर्ण चिंतन और दर्शन का मूल स्त्रोत जपुजी के पहले श्लोक में देखा जा सकता है-

''ੴ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।''[8]

गुरुनानक देव जी एक ओंकार का महत्व बताते हुए कहते हैं कि उसी से सभी की उत्पत्ति हुई है। वे ओंकार से समस्त सृष्टि के सृजन का मूल स्वीकार करते हैं-

''ऊँकार ब्रह्मा उतपति, ऊँकार कीया जिन चिति।
ऊँकार सैल जुग भए, ऊँकार वेद निरभए ।।''[9]

गुरु नानक देवजी ज्ञान के उपयोग को लोक के कल्याण के लिए आवश्यक मानते हैं, क्योंकि ज्ञान व्यक्ति के आचार, विचार और संस्कार का संवर्धन कर परोपकार के काम आता है। अत: बिना विचार का ज्ञान समाज के लिए खतरनाक भी हो सकता है। वे कहते हैं-

''चारे वेद होए सचिआर।
पड़हि गुणहि तिन्ह चार वीचार।।[10]

भारतीय दर्शन परंपरा में संतुलित एवं सार्थक जीवन के लिए चार पुरुषार्थों की साधना को प्रतिपादित किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को शास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय कहा जाता है। गुरुनानक देवजी भी इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं-

''चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै।
जे को आपुना दूखु मिटावै। हरि हरि नामु रिदै सद गावै।।''[11]

गुरुनानक देवजी की साधना भी चारों पुरुषार्थों की साधना है। इस साधना का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है, अर्थात परमात्मा में मिल जाना या एकाकार हो जाना। एक संवाद में जब नानक जी से पूछा गया कि आपने उदासी का मार्ग क्यों अपनाया? तक वे अपनी साधना का उद्देश्य स्पष्ट करते हैं-

''गुरमुखि खोजत भए उदासी।।
दरसन कै ताई भेख निवासी।।
साच वखर के हम वणजारे।।
नानक गुरमुखि उतरसि पारे।।''[12]

अर्थात गुरुमुख की तलाश में नानक उदासी हो गए। मनमोहन सहगल के अनुसार, ''गुरुमुख शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों के ज्ञान को जानता है और उसे घट-घट के भेद का ज्ञान है। वह अंतर्यामी हो जाता है। गुरुमुख निजी वैर विरोधों का त्याग कर देता है, क्योंकि वह लोगों के अच्छे-बुरे व्यवहार की गिनती नहीं रखता। गुरुमुख हरि नाम के रंग में रंग जाता है और अपने प्रभु को पहचान लेता है।''[13]

निष्कर्ष :

भारतीय इतिहास के मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में श्रीगुरु नानक देवजी का महत्वपूर्ण योगदान है। वे लोक चेतना के महान क्रांतिकारी-समाज सुधारक, धर्म सुधारक, देशप्रेम से ओत-प्रोत राष्ट्रवादी गुरु थे। उन्होंने एकेश्वरवाद की बात की, जाति-व्यवस्था और पाखंड का विरोध किया, मूर्ति पूजा को निरर्थक माना तथा आचरण की शुद्धता पर जोर देने की बात की। दशगुरु परंपरा के उन्नायक गुरुनानक देवजी की साधना की दिशा आध्यात्मिक थी। वे अपना कोई स्वतंत्र मत स्थापित करना नहीं चाहते थे। उन्होंने हिंदू धर्म के ही महत्वपूर्ण विचारों का अनुसरण किया। उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ❑

संदर्भ :

1. दिनकर, रामधारी सिंह : 1962, तृतीय संस्करण, संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल, पटना, पृ. 398
2. श्री गुरुग्रंथ साहिब, सोरठ, महला-1, पृ. 579
3. श्री गुरुग्रंथ साहिब, रागु आसा महला-1, पृ. 349
4. सहगल, मनमोहन : 2009, गुरु नानक देव, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पृ.144
5. श्री गुरुग्रंथ साहिब, राग भैरो, महला-3, पृ.1128
6. सहगल, मनमोहन : 2009, गुरु नानक देव, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पृ. 144
7. जपुजी, मूल मंत्र
8. जपुजी, जप-1
9. श्री गुरुग्रंथ साहिब, रामकली, महला-1, पृ. 929-930
10. अग्निहोत्री, डॉ. कुलदीप चंद : 2019, प्रथम, श्री गुरु नानक देवजी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ. 159
11. सहगल, मनमोहन : 1980, आदि गुरु ग्रंथ साहिब, हिंदी अनुवाद, पहली सैंची, मुक्त वाणी प्रकाशन ट्रस्ट, लखनऊ, पृ. 266
12. अग्निहोत्री, डॉ. कुलदीप चंद : 2019, प्रथम, श्री गुरु नानक देवजी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृ. 161
13. सहगल, मनमोहन : 1980, आदि गुरु ग्रंथ साहिब, हिंदी अनुवाद, तीसरी सैंची, मुक्त वाणी प्रकाशन ट्रस्ट, लखनऊ, पृ. 569-570

कविता

बालपन

छज्जे पर रंगों के डिब्बे
डिब्बों पर ये नज़र
आंखों से उसे टटोलते हुए,
सबसे छोटे को ढूँढ़ते हुए
आंखों में उन छोटी-छोटी सब्जी की क्यारियाँ
नज़र घूमाने दूर लम्बे रास्ते पर
कितनी ही कहानियाँ रचता
उपक्रम बनता फिर बिगड़ता
कभी कैरियाँ तोड़ने
कभी क्यारियों में पानी डालने
कभी बकरियों को पानी पिलाने
किसी बहाने दहलीज़ से आगे
दादी से छिपकर
देख ही लेता मुंडी निकालकर
रास्ता फिर खाली दिखता
फिर बड़ी-बड़ी आंखें सिकुड़ जातीं
मुन्ना! बेटा बकरियाँ गिन कर बताना
सुनते ही दौड़ कर दादी तक पहुँच जाता
उसी फुर्ती से वापस
बकरी गिन कर दादी को बताता
डिब्बों में से सबसे छोटा
उठाकर पानी भर बाड़ी में डालता
ये कोमल तलवे
ये तपते फ़र्श
कोई तकरार नहीं दोनों शांत निश्चल
दोपहर की गर्मी
लू की वो हवा
बच्चे के हौसले के आगे दम तोड़ती
धूप ढलती
आंखें दौड़ती हैं दूर पलाश तक
कोई नहीं सब खाली सब खाली
हर बार मुट्ठी खोल कर देखता
एक बार हथेली को
एक बार फिर सुनसान रास्ते को
कुच नहीं
कुच बी नहीं, कुच बी तो नहीं
फिर वहीं
पर कुछ तो है
हथेली में वही सिक्का
रास्ता वही खाली
बस आंखें थोड़ी नम
मुस्कान थोड़ी फीकी
बावजू वो रुआँसा चेहरा
वही बच्चा
वही सिक्का
वही कोमल गुलाबी पाँव
वही फुर्तीला दौड़
वही उत्साह
और वही खाली गली
बदला कुछ भी नहीं
बस एक सूरज और उसकी तपिश। ❑

रघुनंदन महापात्र

ग्राम : तरभा, रथपडा
जिला : सुवर्णपुर, उड़िसा
पिन : 767016, मो. 9040210935
ई-मेल : vipul2661995@gmail.com

প্ৰবন্ধ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা

ড° পল্লৱিকা শৰ্মা

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
দৰং মহাবিদ্যালয
ম'বাইল ঃ ৯৮৬৪৬০৬২৮৫
ই-মেইল ঃ pallabikasarmah@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

ভূপেন হাজৰিকা এনে এগৰাকী সৃষ্টিশীল কলাকাৰ; যাৰ সৃষ্টিৰ মাজেৰে নিৰৱিচ্ছিন্নভাবে প্ৰৱাহিত হৈ আছিল নতুন সমাজ গঢ়াৰ সপোন। সকলোৰে মাজত সমতা স্থাপন কৰি সাম্য-মৈত্ৰীৰে পৰিপূৰ্ণ এক নতুন আদৰ্শবাদী তথা শৃংখলাবদ্ধ সমাজ আৰু জাতিৰ স্বকীয়তা ৰক্ষা কৰি সমাজক উন্নতিৰ জখলাত আগুৱাই নিব পৰাকৈ গীত ৰচনা কৰা ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মূলমন্ত্ৰই যেন আছিল- সমাজৰ পৰিপুষ্টিকৰণ। সেয়েহে তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত অধিকাংশ গীততেই সামাজিক চেতনা অথবা দায়বদ্ধতাৰ অনুৰণন শুনিবলৈ পোৱা যায়। প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখনৰ মাজেৰে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকাশিত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব। আলোচনা প্ৰসংগত তেওঁৰ গীতত প্ৰকাশ পোৱা ঐতিহ্যপ্ৰীতি, বৈপ্লৱিক চিন্তা, মানৱতাবাদ, জাতীয়-প্ৰীতি, লোক-সাংস্কৃতিক চিন্তা, প্ৰেমমূলক ভাৱনা আদিয়ে কিদৰে সামাজিক চেতনা অথবা দায়বদ্ধতাৰ পৰিচায়ক হৈ পৰিছে সেই বিষয়ে আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব। তেওঁৰ গীতৰ ভাষাই এই দায়বদ্ধতাৰ পৰিপুষ্টিকৰণত কেনেদৰে সহায় কৰিছে সেই বিষয়েও গৱেষণা পত্ৰখনত আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব। '**ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা**'- শীৰ্ষক বিষয়ৰ বিশ্লেষণে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ আলোচনাৰ ক্ষেত্ৰত এক নতুন দিশৰ উন্মোচন ঘটাব বুলি আশা প্ৰকাশ কৰিয়েই এই গৱেষণা পত্ৰখন যুগুত কৰি উলিওৱা হৈছে। গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুতকৰণৰ ক্ষেত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ অৱলম্বন কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ ভূপেন হাজৰিকা, গীত, সামাজিক চেতনা, দায়বদ্ধতা, অসম।

০.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

জীৱন্ত কালতেই কিংবদন্তি আখ্যা পোৱা সুৰসম্ৰাট ভূপেন হাজৰিকা অকল গীতিকাৰ অথবা সুৰকাৰেই নহয়; অসমীয়া সাহিত্য-সংস্কৃতি জগতৰেই এজন পুৰোধা ব্যক্তি। প্ৰায় চাৰিশ গীতেৰে সুৰৰ ঝংকাৰ তুলি সকলোৰে মন পুলকিত কৰি তোলা ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতবোৰ যেন প্ৰকৃতাৰ্থতেই 'অনিৰ্বচনীয় সৃষ্টিলীলা'। তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে ধ্বনিত হৈছিল- অসমৰ

বিনন্দীয়া ৰূপ ৰসৰ মৌ-সুধা। অৱশ্যে বিন্দুতে সিন্ধু দর্শনৰ দৰেই হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে মূর্তমান হৈ উঠিছিল অসমৰ লগতে বিশ্বমানৱৰ প্রতিধ্বনিও। অসমীয়া ভাষাক জগত সভালৈ নিব খোজা জ্যোতিপ্রসাদ আগ�ৱালা আৰু বৰ লুইতৰ দুয়োপাৰ একাকাৰ কৰি অসমত সাম্যবাদ প্রতিষ্ঠাৰ সপোন ৰচা বিষ্ণুপ্রসাদ ৰাভাৰ একান্ত সান্নিধ্য লাভ কৰা ভূপেন হাজৰিকাই যেন উত্তৰাধিকাৰী সূত্রেই লাভ কৰিছিল-সোণৰ অসম গঢ়াৰ সপোন। নিঃসন্দেহে এই গৰাকী সুধাকণ্ঠৰ গীতৰ মাজেৰে ধ্বনিত হৈছিল - সামাজিক চেতনা অথবা দায়বদ্ধতাৰ জয়গান। অসমৰ সাহিত্য-শিক্ষা-সংস্কৃতি-সমাজনীতি আদি সকলো দিশতেই তেওঁৰ প্রতিভাৰ উজ্বল স্বাক্ষৰ অদ্যপি বিদ্যমান।

১.০ গৱেষণা পত্র প্রস্তুতকৰণৰ উদ্দেশ্য আৰু পদ্ধতি ঃ

"মই গীত গাবই লাগিব-লিখিবই লাগিব গীত। মোৰ প্রকাশৰ প্রধান মাধ্যম হৈ পৰিল গীত আৰু মোৰ কণ্ঠ। সেয়েহে গীতৰেই সমাজক সদায় ন-ৰূপ দিয়াৰ প্রয়াস কৰি আহিছোঁ ; নিজৰ সৈতে আগুৱাই লৈ যাব আহিছো নতুনৰ বাট বোলা সকলক।" (হাজৰিকা,) ভূপেন হাজৰিকা; যাৰ মনৰ মাজত সমাজক ন-ৰূপ দিয়াৰ চিন্তাই অহৰহ ক্রিয়া কৰি আছিল। এঘাৰ বছৰ বয়সতে হাতত কলম তুলি লোৱা ভূপেন হাজৰিকাৰ কাপেৰে নিঃসৃত হৈছিল অলেখ গীত; যাৰ প্রকৃত খতিয়ান দাঙি ধৰিবলৈ শিল্পীগৰাকী নিজেও হয়তো অপৰাগ। কিন্তু সি যি কি নহওক, তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে সমাজৰ মূর্তমান ৰূপ অবিৰতভাবে প্রস্ফুটিত হৈ আহিছিল। সমাজৰ প্রতি থকা সচেতন তথা দায়বদ্ধশীল মনোভাৱে তেওঁক গীত ৰচনাত পৰিপুষ্টি প্রদান কৰিছিল। '**ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা**' শীর্ষক বিষয়ৰ বিশ্লেষণে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ আলোচনাৰ ক্ষেত্রত এক নতুন দিশৰ উন্মোচন ঘটাব বুলি আশা প্রকাশ কৰিয়েই এই গৱেষণা পত্রখন যুগুত কৰি উলিওৱা হৈছে।

২.০ বিষয়ৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

আলোচ্য গৱেষণা পত্রৰ পৰিসৰে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্রকাশ পোৱা ঐতিহ্যপ্রীতি, বৈপ্লৱিক চিন্তা, মানৱতাবাদ, জাতীয়-প্রীতি, লোক-সাংস্কৃতিক চিন্তা, প্রেমমূলক ভাৱনা, আদি বিষয়সমূহৰ বিশ্লেষণক সামৰি ল'ব আৰু এই গীতসমূহে কিদৰে সামাজিক চেতনা অথবা দায়বদ্ধতাৰ পৰিচয় বহন কৰিছে সেই বিষযেও আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব। গৱেষণা পত্রখন যুগুতকৰণৰ ক্ষেত্রত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

৩.০ মূল অংশ ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে প্রতিফলিত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে ভূপেন হাজৰিকাই তেওঁৰ গীত সম্বন্ধে কৰা এটি মন্তব্য অতি প্রণিধানযোগ্য ঃ "বর্তমানতো এদিন যেতিয়া অতীত হৈ যাব তেতিয়াও মোৰ কিছুমান গীত প্রাসংগিক হৈ থাকিব আৰু কিছুমান গীত ইতিহাস হৈ যোৱা ইতিহাসৰ ভিত্তিতে মানুহক পৰিৱর্ত্তনৰ বাটেৰে আগুৱাই যাবৰ বাবে সাহস যোগাব, আস্থা প্রদান কৰিব। এয়া মোৰ নিজৰ গীতৰ বিশ্লেষণ নহয়, আত্মোপলব্ধিহে।" (হাজৰিকা,) ভূপেন হাজৰিকা এনে এগৰাকী ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী ব্যক্তি যাৰ বিশাল ব্যক্তিত্বই বর্তমানেও এক সম্মোহিনী শক্তিৰ দৰে ক্রিয়া কৰি আছে। অৱশ্যে তেওঁৰ মনত এনে ভাবানুভূতিৰ উদ্রেক হৈছিল শৈশৱ কালতে। এই সম্পর্কত তেওঁ 'দিহিঙে দিপাঙে' গ্রন্থত মত আগবঢ়াইছে- "জ্যোতিপ্রসাদৰ পৰা Total personality Concept, অতি মার্জিত সৌন্দর্যবোধ, বিষ্ণুৰাভাৰ পৰা লোককৃষ্টিৰ গণ সান্নিধ্যৰ মাধ্যমেৰে শিকাৰ সাহসী Concept, ফনী শর্মাৰ পৰা Formal Education নোহোৱাকৈ জনতা নামৰ বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা নাটকীয় মুহূর্তক বিন্দু বিন্দুকৈ গ্রহণ কৰি শিক্ষিত হৈ ৰাইজৰ মাজত তাক প্রকাশ কৰিব পৰা Concept, পল ৰবচনৰ পৰা পৃথিৱীৰ বুকুত জাতৰ বা বর্ণৰ মুর্খ অহংকাৰ কৰ'বাত দেখিলে উদাত্ত কণ্ঠেৰে ধমকি দি উপলুঙা কৰাৰ concept মোৰ জীৱনৰ পাথেয় কৰি লৈছো। শেষত শংকৰদেৱৰ সমাজ সচেতনতাই আমাৰ চিন্তাৰ সৌধ গঢ়িছিল।" (ভূএগ, ২১) ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা বিভিন্ন মাধ্যমেৰে প্রকাশ পোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিশেষকৈ গৱেষণা পত্রখনত ঐতিহ্যপ্রীতি, বৈপ্লবিক চিন্তা, মানৱতাবাদ, জাতীয় প্রীতি, লোকসাংস্কৃতিক চিন্তা আৰু প্রেমমূলক ভাবনা আদিৰ মাজেৰে কিদৰে সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা মূর্তমান হৈ উঠিছে সেই বিষয়ে চমুকৈ আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হ'ল।

৩.১ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত ঐতিহ্যপ্রীতিৰ মাজেৰে প্রকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

শৈশৱতে হাতত কলম তুলি লোৱা ভূপেন হাজৰিকাৰ কাপেৰে নিঃসৃত নিম্নোক্ত গীতটিয়েই তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত প্রথম গীত। মহাপুৰুষ শ্রীমন্ত শংকৰদেৱৰ আদর্শৰ দ্বাৰা অনুপ্রাণিত হৈ সৰুকালত ৰচনা কৰা ভূপেন হাজৰিকাৰ ৰৱদোৱা থানৰ প্রতিও আছিল অসীম শ্রদ্ধা। যাৰ বাবে তেওঁৰ শিশু সুলভ মনটিৰ মাজেৰে প্রকাশ পাইছিল পুৰণি ঐতিহ্যৰ প্রতি থকা সন্মান আৰু ভালপোৱা।

"কুসুম্বৰ পুত্র শংকৰ গুৰুৱে
ধৰিছিল নামৰে তান
নামৰে সুৰতে আনন্দত নাচিছিল
"পৱিত্র ৰৱদোৱা থান" (হাজৰিকা.১)

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে মূর্তমান হৈ উঠিছিল ৰামায়নৰ স্রষ্টা বাল্মিকী আৰু তেওঁৰ আশ্রমৰ সৌন্দর্য্য, পদ্মনাথ গোহাঞি ৰৰুৱা, আনন্দচন্দ্র আগৰৱালা, ৰজনীকান্ত ৰৱদলৈ, মফিজুদ্দিন আহমদ হাজৰিকা আদিৰ দৰে সাহিত্যকৰ আদর্শ, মহাত্মা গান্ধীৰ দৰে জাতীয় নেতা, লাচিত ৰৱফুকনৰ দৰে সাহসী বীৰ, মূলাগাভৰু, জয়মতী, পিয়লি ফুকন, কুশল কোঁৱৰ আদিৰ দৰে জাতীয় শ্বহীদ আৰু লালবাহাদুৰ শাস্ত্রী, জৱাহৰলাল নেহৰুৰ দৰে মহান নেতাৰ জীৱনদর্শন আৰু তাৰ প্রতিচ্ছবি। অতীতৰ প্রতি থকা প্রৱল হেপাঁহ আৰু আকুলতাৰ বাবেই তেওঁৰ যাদুকৰী হাতৰ পৰশত ৰচিত হৈছিল অতীতৰ মহা-মহা মনিষীৰ জীৱনচর্য্যা আৰু অতীত মূর্তমান হোৱা হোৱা প্রকৃতিৰ ৰঙীন সৌন্দর্য্য সম্বলিত গীত-

"মহাবাহু ব্রহ্মপুত্র
মহামিলনৰ তীর্থ
কত যুগ ধৰি আহিছে প্রকাশি
সমন্বয় অর্থ।" (হাজৰিকা, ৩৮৯)

এই গীতটি তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত অতীত মূর্তমান হৈ উঠা এটা কালজয়ী গীত। এই গীতটিৰ মাজেৰে মহাবাহু ব্রহ্মপুত্রৰ বিশাল ৰূপ প্রকাশি উঠিছে। এনেদৰে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে ঐতিহ্য প্রীতিয়ে সুন্দৰ ৰূপত মূর্তমান হৈ উঠা পৰিলক্ষিত হয়।

৩.২ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত বৈপ্লৱিক চিন্তাৰ মাজেৰে প্রকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

১৯৩৯ চনত ভূপেন হাজৰিকাই ৰচনা কৰা "অগ্নিযুগৰ ফিৰিঙতি মই/নতুন অসম গঢ়িম"- শীর্ষক গীতটিৰ মাজেৰে আমি ভূপেন হাজৰিকাৰ বিদ্রোহী মনৰ অনুৰণন শুনিবলৈ পাওঁ। "ডক্টৰ ভূপেন হাজৰিকা ডাঙৰ

হয় তেওঁৰ জন্মৰ পৰা ১৯৪৭ চনলৈকে বিস্তাৰিত আৰু বিশেষভাবে বিস্ফোৰিত দিনবিলাকৰ উত্তেজনাৰ মাজেদি।" (দত্ত ,৩৭) ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত বৈপ্লৱিক চেতনাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ প্ৰসংগত আমি সমসাময়িক পটভূমিৰ বিষয়ে জনাতো প্ৰয়োজন।

পৰাধীনতাৰ কবলৰ পৰা ভাৰতভূমিক উদ্ধাৰ কৰাৰ উদ্দেশ্য হোৱা স্বাধীনতা আন্দোলন, অসহযোগ আন্দোলন, চীনা আক্ৰমন ,ভাৰত- পাকিস্তানৰ যুদ্ধ, অসমৰ ভাষা-আন্দোলন, অসমৰ বিদেশী খেদা আন্দোলন আদিয়ে ভূপেন হাজৰিকাৰ মনত নানান চিন্তাৰ সূত্ৰপাত ঘটাইছিল।

শোষণ-দমন-বঞ্চনা আৰু অত্যাচাৰৰ বিৰুদ্ধে ভূপেন হাজৰিকাৰ বিপ্লৱী মন অধিক জাগ্ৰত হৈ উঠিছিল। কোনোসময়ত তেওঁ এই বিপ্লৱক কঠোৰ হাতেৰে দমন কৰিবলৈয়ো মন মেলিছিল- "নৰ কংকালৰ অস্ত্ৰ সাজি শোষণকাৰীক বধিম।" তেওঁ আন এটি গীতত উল্লেখ আছে এনেদৰে-

"সংগ্ৰাম যদি জীৱনৰ এটি নাম
(সেই) সংগ্ৰাম হওক তোৰ প্ৰিয়
দুই হাতে চকু দুটি ঢাকি ধৰি তই
অকলে উচুপনো কিয়? (দত্ত, ছচ্ছ্ৰ)

আকৌ তেওঁ গীতত কৈছে-

"সত্যম শিৱম সুন্দৰম
বসুধৈৱ কুটম্বকম্
আমাৰ ভাৰতীয় মন্ত্ৰ" (হাজৰিকা, ৭৬)

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পোৱা সংগ্ৰামী চেতনাই তেওঁৰ জাতিৰ প্ৰতি থকা দায়বদ্ধতাক সুন্দৰ ৰূপত দাঙি ধৰিছে-

"ৰণক্লান্ত নহওঁ সেই মুহুৰ্ত্তলৈ
যি মুহুৰ্ত্ততে মোৰ সীমান্ততে
শেষ শত্ৰু দৈত্যটিৰ নহয় মৰণ।
ৰণ ক্লান্ত নহওঁ।" (হাজৰিকা, ৪২৮)

ভূপেন হাজৰিকাৰ দ্বাৰা ৰচিত 'বিক্ষুব্ধ বিশ্বকণ্ঠই আহোৰাত্ৰি চিঞৰে', 'দোলা হে দোলা হে দোলা,' 'ঝক ঝক ৰেল চলে মোৰ', 'প্ৰতিধ্বনি শুনো', 'ৰাইজ আজি ভাৰৰীয়া', 'বিস্তীৰ্ণ পাৰৰেচ আদি গীতসমূহত বিদ্রোহৰ স্পষ্ট সুৰ শুনিবলৈ পোৱা যায়। ভূপেন হাজৰিকায়ো তেওঁৰ বৈপ্লৱিক বা বিদ্রোহসুলভ গীতৰ মাজেৰে সমাজ মুক্তিৰে আশা পোষণ কৰিছিল।

৩.৩ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত মানৱতাবাদৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

"মানুহে মানুহৰ বাবে
যদিহে অকণো নেভাবে
অকণি সহানুভূতিৰে
ভাবিব কোনেনো কোঁৱা সমনীয়া?" (হাজৰিকা, ৩৯৩)

ভূপেন হাজৰিকা এনে এজন শিল্পী;যাৰ গীতত মানৱতাবাদৰ চিত্ৰ চিৰ জ্যোতিষ্মান ৰূপত উদ্ভাসিত হৈ আছে। মানুহৰ প্ৰতি থকা আৱেগ আৰু দৰদী হৃদয়ে তেওঁক মানৱতাবাদী শিল্পী ৰূপে গঢ়ি উঠাত সহায় কৰিছে। যাৰ বাবে তেওঁ গাইছে-

"মোৰ গীতৰ হেজাৰ শ্ৰোতা
তোমাক নমস্কাৰ
গীতৰ সভাত তুমিয়েতো প্ৰধান অলংকাৰ
প্ৰয়াস কৰোঁ তোমাৰ মুখত হাঁহি বিলাবলে
প্ৰয়াস কৰোঁ তোমাৰ দুখত সঁচাই কান্দিবলৈ"
(হাজৰিকা, ৪০৯)

ভূপেন হাজৰিকাৰ মানুহৰ প্ৰতি থকা মৰম আৰু ভালপোৱাৰ বাবেই তেওঁ গীতৰ মাজেৰে এক নতুন আৰু সম্ভাৱনাকামী সোণৰ অসম গঢ়াৰ সপোন দেখিছিল। যাৰ বাবে তেওঁৰ গীতত সমাজৰ সকলো শ্ৰেণীৰ লোকেস্থান লাভ কৰিছে। হালোৱা-হজুৱা-বনুৱাৰ পৰা দেশ গঢ়াৰ খনিকৰ, বিভিন্ন জাতি-উপজাতিৰ লোকে তেওঁৰ গীতৰ সৌষ্ঠৱ বৃদ্ধি কৰিছে। সৎ-অসৎ, ধনী-দুখীয়া ,শোষক শোষিত আদি বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ লোকৰ জীৱন তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে-

"মই দেখিছো অনক গগনচুম্বী অট্টালিকাৰ শাৰী
তাৰ ছাঁতেই দেখিছোঁ কতনা গৃহহীন নৰ-নাৰী।"
(হাজৰিকা, ৩৬৬)

ইয়াৰ উপৰিও 'কাৰ কপালৰ সেন্দুৰ ও মচা গল', 'বুকু হম হম কৰে', 'শীতৰে সেমেকা ৰাতি', 'যদি জীৱনে কান্দে নাই নাই বুলি', আদি মানৱ প্ৰেমৰ স্বাক্ষৰ সম্বলিত যুগজয়ী গীত। ভূপেন হাজৰিকাই কৈছিল- "মই সময়ত টৌত খৰ মাৰি কেতিয়াও গীত গোৱা নাই আৰু লিখা নাই। মোৰ সকলো গীতৰ ৰচনাৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল- গানবোৰ মানুহৰ গান হ'ব লাগিব।"(ওৰৈকা, ৩৬) মানুহৰ বাবে আজীৱন গীত ৰচনা কৰা ভূপেন হাজৰিকাই জীৱনৰ শেষ বয়সলৈকে মানুহৰ বাবে গীত ৰচনা কৰি থৈ গ'ল। মানুহৰ মাজেৰে প্ৰগতিৰ সোপন ৰচা ভূপেন

হাজৰিকাই সপোন দেখিছিল এক নতুন অসম গঢ়াৰ; যত হিংসা-দ্বেষ আদিৰ পৰিৱর্তে থাকিব শান্তি আৰু সম্প্রীতি। যাৰ বাবে তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে মূর্তমান হৈ উঠিছে আন এক দায়বদ্ধতাৰ প্রতিচ্ছবি। সেয়েহে তেওঁ নতুন পুৰুষক উদ্দ্যেশি গাইছে-

"তুমি নতুন পুৰুষ, তুমি নতুন নাৰী
অনাগত দিনৰ জাগ্রত প্রহৰী
কেঁচা জীৱন সোঁতক সিঞ্চন কৰি
সজাবা সমাজ নিজ হাতেৰে গঢ়ি"।

(হাজৰিকা, ২৫৩)

এনেদৰে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মাজেৰে মানৱতাবাদৰ চিত্র প্রকাশিতহৈছে। তেওঁৰ এই মানৱতাকামী মনোভাৱৰ মাজেৰে সমাজ চেতনা আৰু দায়বদ্ধতাৰ এখন সজল ছবিও মূর্তমান হৈ উঠিছে।

৩.৪ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত জাতীয় প্রীতিৰ মাজেৰে প্রকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

স্বদেশৰ প্রতি থকা গভীৰ অনুৰাগ আৰু শ্রদ্ধাৰ বাবে ভূপেন হাজৰিকাই বিনন্দীয়া ৰূপ-ৰসৰ আকৰ অসমভূমিক লৈ নানা গীত ৰচনা কৰিছিল। প্রকৃতিৰ মোহনীয় ছবিৰ লগতে অসমৰ জনগণ আৰু অসমৰ প্রতি থকা অসীম শ্রদ্ধা-ভক্তি তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে প্রকাশ পাইছে। অসমৰ বিনন্দীয়া ৰূপ-ৰসক লৈ তেওঁ গাইছে-

"অসম আমাৰ ৰূপহী গুনৰো নাই শেষ
ভাৰতৰে পূর্ব দিশৰ সূর্য্য উঠা দেশ
গোটেই জীৱন বিচাৰিলেই অলেখ দিৱস ৰাতি
অসম দেশৰ দৰে নেপাও ইমান ৰসাল মাটি।"

(হাজৰিকা, ৫৩)

নানা জাতি-উপজাতিৰ মিলনভূমি তথা সমন্বয়ৰ এক মহাক্ষেত্র অসমভূমিক পৰিপুষ্টি প্রদান কৰিছে তাত বাস কৰা জনগোষ্ঠীয় লোকৰ মাজত থকা শান্তি - সম্প্রীতি আৰু ঐক্যই। ভূপেন হাজৰিকাই সেই কথা গীতৰ মাজেৰে অতি সাৱলীল ভাৱে প্রকাশ কৰিছে-

"নানা জাতি উপজাতি
ৰহনীয়া কৃষ্টি
আকোৱালি লৈ হৈছিল সৃষ্টি
এই মোৰ অসম দেশ।" (হাজৰিকা, ৮০)

মহাবাহু ব্রহ্মপুত্র আৰু অসমৰ প্রকৃতিৰ মৌ-সুধা পান কৰা হাজৰিকাই তেওঁৰ অজস্র গীতত অসমী আইৰ ৰূপ আৰু মহাবাহু ব্রহ্মপুত্র নানান ৰূপ বর্ণনা কৰিছে-

"লুইততে মোৰ ঘৰ
লুইতেই মোৰ পৰ
লুইতেই যে ভাঙে গঢ়ে
সপোন মৰমৰ।" (হাজৰিকা, ৪৫০)

অসমীয়াৰ হিয়াৰ আমঠু বহাগক লৈ তেওঁ গাইছে-

"বহাগ মাথোঁ এটি ঋতু নহয়
নহয় বহাগ এটি মাহ
অসমীয়া জাতিৰ আয়ুখ ৰেখা
গণ জীৱনৰ ই সাহ।" (হাজৰিকা, ৩৪০)

চীনা আক্রমনৰ সময়ত স্বদেশৰ হকে প্রাণ আহুতি দিয়া বীৰ জোৱানসকলৰ প্রতি তেওঁৰ শ্রদ্ধা নিৰূপন কৰাৰ লগতে নিজেও স্বদেশৰ হকে মৃতক হ'বলৈ আশা পোষণ কৰিছে-

"কত জোৱানৰ মৃত্যু হ'ল
কাৰ জীৱন যৌৱন গল
সেই মৃত্যু অপৰাজেয়
তেনে মৃতক নহলো মই কিয়?" (হাজৰিকা, ১৩৬)

যাযাবৰী জীৱন কটোৱা ভূপেন হাজৰিকাই স্বদেশৰ মাজতেই যেন বিচাৰি পাইছিল জীৱনৰ অর্থ। সেই কথা গীতত উল্লেখ আছে এনেদৰে-

"মহাভাৰতৰ মহাঅংগ
অসমী আই আমাৰ
কত সন্তানৰ শোণিত ঢালে
নোপোৱা তুলনা তুমি তাৰ।" (হাজৰিকা, ১৩৬)

ভূপেন হাজৰিকাৰ স্বদেশৰ প্রতি থকা অনুৰাগে তেওঁৰ মনত যি সামাজিক চেতনা দায়বদ্ধতাৰ সঞ্চাৰ কৰিছে সেই বিষয়ে মহেন্দ্র বৰাই কৈছে-"সেই সোণালী কণ্ঠস্বৰটো শুনি উঠি কবৰ মন যায় আইৰ ডিঙিৰ সুৱদী মাতৰ চতাই পৰেবতৰ চিৰি লুইতলৈকে ঘাঁহে দুবৰিয়ে সিঁচৰিত হৈ পৰা মুকুতাৰ মণিবোৰ বুটলি খুচৰি আনি সুৰৰ সাতসৰি গুঁথি তুমিয়েই দেখোন আইৰ ডিঙিতেই পিন্ধাই দিলা তাতকৈ বেছি আপুৰুগীয়া বস্তু চিৰ চেনেহী আইক আৰু কোনজনে দিব পাৰিছে।" নিঃসন্দেহে ভূপেন হাজৰিকা জাতীয় প্রীতি সকলোৰে বাবে পাথেয়।

৩.৫ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত লোকসাংস্কৃতিক ভাৱনাৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ চিন্তাশীল মন আৰু ভাবনাৰ বাবেই সৃষ্টি হৈছিল নতুন গন্ধীৰ গীত। যাৰ বাবে অসমীয়া জাতিৰ প্ৰাচীন ঐতিহ্য বহনকাৰী লোকগীত সমূহক উদ্ধাৰ কৰি তেওঁ নতুন ৰহন সানি মানুহৰ মাজলৈ আনিছিল। তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত এই শ্ৰেণীৰ গীতসমূহে যথেষ্ট সমাদৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। এই গীতসমূহৰ ভিতৰত উল্টা পুৰাণৰ গীত, ভক্তিমূলক গীত (জিকিৰ আৰু জাৰী), কামৰূপীয়া লোকগীত, গোৱালপৰীয়া লোকগীত, বিহুগীত আদি বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এই গীতসমূহৰ শব্দচয়ন, ভাবৰ ঐক্য আদিয়ে গীতসমূহক এক নতুন সাংগীতিক মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে-

ভক্তিমুলক গীত ঃ

"শ্যাম কানু দূৰ হৈ নাযাবা
সোণৰ বাঁহী গঢ়াই দিম ঘৰতেই বজাবা।।"
(দত্ত, ২৯৯)

বিহু গীত ঃ

"বাৰীৰে ঢাপৰে এজাৰ মোৰ চেনাই
বাৰীৰে ঢাপৰে এজাৰ
চেঙেলীয়া কালতে পীৰিতি এৰিলা
মনত দি গলা যে বেজাৰ" (দত্ত, ৩০৭)

কামৰূপী লোকগীতঃ

"হে মাই যশোৱা হে
মাই হেৰ যোশোৱা
আমাক লাগিয়া অলপ তোৰ মৰম ও নাই
চতাৰে ঘৰ আসি গৰু চাৰি ফুৰো কৰেকৰা ভাত খাই।।" (দত্ত, ২৯২)

৩.৬ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰেমমূলক ভাৱনাৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত সামাজিক চেতনা ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকাশ পোৱা প্ৰেমমূলক ভাৱনাই প্ৰেমৰ এক সুন্দৰ ছবি দাঙি ধৰিছে। তেওঁৰ প্ৰেমিক মনটোৱে বিচাৰি ফুৰিছিল গীত সৃষ্টিৰ কাৰণে নাইবা উৰণীয়া মৌৰ দৰে ক্ষনিকৰ বাবে জিৰাবলৈ ছাঁয়া দিয়া নাৰী প্ৰাণক। 'ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ' শীৰ্ষক গ্ৰন্থত দিলীপ দত্তই মত প্ৰকাশ কৰি কৈছে- "তেওঁৰ গীতত নাৰী হৃদয়ৰ সুক্ষ্ম অনুভূতিবোৰ বা সেইবিলাক অলপ সহানুভূতিৰে বিচাৰ কৰাৰ কোনো প্ৰয়াস নেদেখোঁ।" (দত্ত, ১৭৪) ভূপেন হাজৰিকাই ইন্দ্ৰিয়াসক্ত প্ৰেমমূলক ভাৱনাৰদ্বাৰা ৰচিত গীতসমূহক আমি সামাজিক বিষয়ৰ গীত বুলি ক'ব পাৰোঁ। প্ৰত্যেক ব্যক্তিসত্ত্বাৰে সমাজৰ লগত থকা অঙ্গাগী সম্বন্ধৰ বাবে এই গীত সমূহৰ মাজেৰে মূৰ্তমান হৈ উঠিছিল সমসাময়িক সমাজৰ প্ৰতিচ্ছবিও।

"ধনৰ বাবেই যদি বেহা-বেপাৰ হয়
যৌতুককে সংগী বুলি আঁকোৱালি লয়
(তেনে) দুটি শৰীৰ একে হলেও প্ৰাণটো নভৰে
মুখা পিন্ধি থাকে দুয়োকে ভুলাই
(সেয়ে) দূৰতে থাক খ্যাতি আৰু মিছা ব্যৱসায়।"
(হাজৰিকা, ২২৬)

ভূপেন হাজৰিকাৰ মনৰ গোপন কুঠৰীত এজাক বৰষুণৰ গুণ-গুণনিয়ে তোলা ভাৱনাৰ বাবেই সৃষ্টি হৈছিল-

"স্নেহেই আমাৰ শত শ্ৰাৱণৰ
ধাৰাসাৰ বৃষ্টিৰ প্লাৱন আনে
যৌৱন বাসনাৰ ৰিক্তোপকুল
পূৰ্ণ কৰে উন্মক্ত বানে"। (হাজৰিকা, ৫১১)

ইয়াৰ উপৰিও 'এটি কলি দুটি পাত', 'শ্বিলংৰ মনালিছা', 'গৌৰীপুৰীয়া গাভৰু', 'প্ৰথম মৰমে যদি সহাঁৰি নাপায়' আদি ভূপেন হাজৰিকাৰ দ্বাৰা ৰচিত প্ৰেমমূলক ভাবনা জড়িত গীত। এই গীতসমূহৰ মাজেৰে সামাজিক চেতনা অতি স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ নাপালেও সমাজ জীৱনৰ এখন সুন্দৰ ছবি হাজৰিকাই দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

৩.৭ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ ভাষিক ৰূপ ঃ

আজীৱন সংগীত সাধনাত ব্ৰতী ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ ভাষা আছিল - ওজস্বী। বিষয়বস্তুৰ গভীৰতা, ভাবৰ ঐক্য আৰু ভাষাৰ সাৱলীলতাই তেওঁৰ গীতসমূহক এক নতুন মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। কথোপকথন ৰীতিৰ মাজেৰেও তেওঁ গীত ৰচনা কৰা পৰিলক্ষিত হয়। কোমল শব্দৰ লগত ব্যৱহাৰ কৰা কঠিন উচ্চাৰণযুক্ত শব্দই তেওঁৰ গীতক এক নতুন সাংগীতিক মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। তৎসম শব্দৰ বহুল প্ৰয়োগ, অৰ্দ্ধ-তৎসম, তদ্ভৱ, বিদেশী,অনুকাৰ-অনুৰূপ শব্দ আদিৰ ব্যৱহাৰৰ লগতে ছন্দোবদ্ধ গাঁথনিয়ে তেওঁৰ গীতক জনগণৰ মাজলৈ লৈ যোৱাত সহায় কৰিছে। অলংকাৰ, প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ প্ৰয়োগে

তেওঁৰ গীতসমূহক এক উচ্চখাপৰ সাহিত্যিক মর্যদা প্রদান কৰিছে।

লোক-জীৱনৰ লগত জড়িত বিভিন্ন পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিৰ চিত্রায়নত ব্যৱহাৰ কৰা ভাষাশৈলীয়ে তেওঁৰ গীতসমূহৰ জনপ্রিয়কৰণত সহায় কৰিছে বিশেষকৈ লোকসংগীতৰ সুৰ, পশ্চিমীয়া সংগীত আৰু ভাৰতীয় শাস্ত্রীয় সংগীতৰ প্রভাৱ তেওঁৰ ওপৰত পৰা অনুমান হয়। সি যি কি নহওঁক ভাষিক ৰূপ আৰু সুৰৰ ফালৰ পৰা ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহ অনন্য আৰু অদ্বিতীয়।

৪.০ সামৰণি ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্রকাশ পোৱা সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতাৰ বিষয়ে পুংখানুপুংখ ৰূপত আলোচনা কৰি উলিওৱাতো সহজসাধ্য নহয়। ভূপেন হাজৰিকা এনে এগৰাকী শিল্পী যাৰ প্রত্যেকটি গীততেই প্রায় কম বেছি পৰিমাণে সমাজৰ চিত্র প্রকাশিত হৈ উঠিছে। ভূপেন হাজৰিকাৰ যাঠি দশকতে বাঢ়ি অহা সমাদৰ দেখি চকুচৰহা সমালোচকে কৰা মন্তব্যক আওকাণ কৰি ভূপেন হাজৰিকাই যেন সঠিক সিদ্ধান্তই লৈছিল-"ক্রচেডৰ অৰোৱাল ৰণথলীতহে ঘূৰাব লাগে। খালে-ডোঙে ঘূৰাই নুফুৰাই।" সেয়েহে হয়তো ভূপেন হাজৰিকাৰ প্রতিভাৰ উজ্জ্বল স্বাক্ষৰ অদ্যপি বিদ্যমান। সঁচা অর্থত ক'বলৈ গ'লে ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত অনুভৱেৰেহে অনুধাৱন কৰিব পাৰি। "হাতীয়ে নিজৰ শৰীৰটো দেখা নোপোৱাৰ দৰে তেওঁ নিজৰ জীৱনৰ উচ্চতা-বিশালতাক নেদেখে। কিন্তু ভুল-ভ্রান্তি বিতর্কৰ ধূলিয়ে মলিন কৰি তুলিলেও কৃতিৰ চিকমিকনিয়ে তেওঁক উজ্জ্বল কৰি ৰাখে। সেইবাবেই তেওঁ-ভূপেন হাজৰিকা।" মুঠতে ক'বলৈ গ'লে ভূপেন হাজৰিকা সর্বকালৰ এজন সর্বশ্রেষ্ঠ কলাকাৰ; যাৰ সৃষ্টিয়ে সমগ্র অসমৰ জনগনৰ দেহ-মন আছন্ন কৰি আছে আৰু ভৱিষ্যতলৈয়ো থাকিব। ❑

প্রসংগ টোকা আৰু সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

অধিকাৰী, শুকদেৱ আৰু বিমান কুমাৰ দলে। (সম্পা.)। *জ্যোতিপ্রসাদ আগৰৱালা, বিষ্ণু প্রসাদ ৰাভা আৰু ড· ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত চেতনাৰ সন্ধান* (দ্বিতীয় খণ্ড)। ধিং ঃ অধ্যক্ষ, ধিং মহাবিদ্যালয়,২০১২।

দত্ত, দিলীপ। *ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন ৰথ*। কলকতা ঃ শ্রীভূমি পাবলিছিং কোম্পানী, ১৯৯০।

দত্ত, নম্রতা। *ভূপেন দা*। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্রকাশন,২০০৯।

ভূঞা, শেখৰজ্যোতি। *দিহিঙে দিপাঙে ভূপেন হাজৰিকা*। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্র প্রকাশন,২০১১।

শর্মা, সত্যেন্দ্রনাথ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত*। গুৱাহাটী ঃ সৌমাৰ প্রকাশ,২০০৯।

সিং নন্দ আৰু মাধুর্য মণ্ডিত বৰুৱা।(সম্পা)। *ড° ভূপেন হাজৰিকা*। গুৱাহাটীঃ বিশাল প্রকাশন। ২০১১।

হাজৰিকা, সূর্য। (সম্পা.)। *ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমগ্রঃ গীতাৱলী*। গুৱাহাটী ঃ এছ. এইছ শৈক্ষিক ন্যাস,২০১০।

আলোচনী

বৰা, লক্ষ্মীনন্দন। (সম্পা.)। *গৰীয়সী*। গুৱাহাটী ঃ ঊনবিংশ বছৰ, চতুর্থ সংখ্যা, জানুৱাৰী, ২০১২।

প্ৰবন্ধ

লোকনাট্যানুষ্ঠান 'কুশান গান' ঃ পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন

ড° গোবিন্দ বৈশ্য

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বিজনী মহাবিদ্যালয়
জিলা ঃ চিৰাং, পিন ঃ ৭৮৩৩৯০
ম'বাইল ঃ ৭০০২৭১১১৪৮
ই-মেল ঃ gobindabaishya111@gmail.com

প্ৰস্তাৱনা ঃ

লোক সংস্কৃতিয়ে আমাৰ সমাজৰ ভাষা, ধৰ্ম, আচাৰ-ব্যৱহাৰ লোক ৰন্ধন প্ৰণালী, স্তপত্তি, লোকনাট্য, লোকগীত, লোকনৃত্য সাধুকথা, তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ আদি সকলোকে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। লোক সংস্কৃতি এটা জাতিৰ প্ৰাণস্বৰূপ। অসমৰ গাঁওবাসী, কৃষিজীৱি পৰম্পৰাৰ ওপৰত আস্থাশীল হোজা জনসমষ্টিয়ে হ'ল লোক সমাজ আৰু এনে সমাজৰ সংস্কৃতিয়ে হ'ল লোক সংস্কৃতি।

অসমত অতীজৰে পৰা দৰ্শকক মনোৰঞ্জন দিবৰ বাবে নাট্যকাৰ প্ৰচলন আছিল। মহাপুৰুষ দুজনাই অংকীয়া নাটৰ জৰিয়তে ধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰাৰ লগতে দৰ্শকক মনোৰঞ্জন দিবলৈ সক্ষম হৈছিল। অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত লোকনাট্যৰ প্ৰচলন আছিল। ওজপালি, দৰং অঞ্চলৰ খুলীয়া ভাউৰীয়া, গোৱালপাৰা অঞ্চলৰ ভাৰীগান বা ভাওগান, অবিভক্ত গোৱালপাৰা আৰু পশ্চিমবংগ অঞ্চলত কুশান গান। কুশান গানত বাঁশী পুৰাণৰ গান বা ভাষান যাত্ৰাৰ গানৰ প্ৰভাৱ বিদ্যমান। পুতুলা নাচ বা পুতুলা ভাউৰীয়া, ধুৰানাট, ঢুলীয়া ইত্যাদি লোকনাট্যই এক লোক সংস্কৃতিক সমৃদ্ধময় কৰি তুলিছে।

অবিভক্ত গোৱালপাৰা জিলা বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ লোক সংস্কৃতিৰে সমৃদ্ধ হৈ আছে। এই জিলাত বসবাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে নিজৰ নিজৰ সংস্কৃতিৰে সংমিশ্ৰণত বৰ্ণাঢ্য সমন্বয়ৰ সংস্কৃতি স্থাপন কৰিছে। কোচ ৰাজবংশী লোকসকল লোক সংস্কৃতিৰে সমৃদ্ধশালী। কুশান গান কোচ ৰাজবংশীসকলৰ এক জনপ্ৰিয় নাট্যানুষ্ঠান। বৰ্তমান সময়ত কুশান গানে নাট্য আৰু অভিনয়ৰ দ্বাৰা দৰ্শকৰ মন জয় কৰিব পাৰিছে।

এই প্ৰবন্ধটোত লোকনাট্য "কুশান গান"ৰ পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তনৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ যত্ন কৰা হৈছে।

গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

সংস্কৃতিৰ এক অভিন্ন অংগই হ'ল লোক পৰিৱেশ্য কলা। কোচ ৰাজবংশী লোকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত "কুশান গান" খুবেই জনপ্ৰিয় এক লোকনাট্যানুষ্ঠান। কুশান গান অকল অসমতে নহয় উত্তৰবঙ্গ আৰু বাংলাদেশৰ ৰংপুৰ অঞ্চলত প্ৰচলন আছিল। বৰ্তমান সময়ত আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱ কুশান গানত দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিজ্ঞানৰ ন ন আৱিস্কাৰ আৰু নিত্য নতুন টি. ভি.ৰ অনুষ্ঠানে এই লোকনাট্যসমূহৰ ওপৰত প্ৰভাৱ পেলাইছে। কুশান গানৰ পৰম্পৰা সম্পৰ্কে নৱ প্ৰজন্মক ইয়াৰ দায়বদ্ধতাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই এই প্ৰবন্ধটো প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

গৱেষণা পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা প্ৰবন্ধটো প্ৰস্তুত কৰোতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। এই প্ৰবন্ধটোত লোকনাট্য "কুশান গান"ৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ যত্ন কৰা হৈছে।

গৱেষণাৰ সমল ঃ

এই প্ৰবন্ধটো প্ৰস্তুত কৰোতে বিভিন্ন গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱাৰ লগতে তথ্য সম্বন্ধিত নিবন্ধ তথা বিভিন্ন ব্যক্তিৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰি গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

গৱেষণা পত্ৰৰ প্ৰয়োজনীয়তা ঃ

বৰ্তমান সময় সাপেক্ষে এই প্ৰবন্ধটোৰ পত্ৰৰ প্ৰয়োজনীয়তা যথেষ্ট থকা বুলি ক'ব পাৰি। সময়ৰ পৰিবৰ্তনে মানুহৰ ৰুচিবোধৰো পৰিৱৰ্তন কৰাৰ ফলত আগৰ থলুৱা, সংস্কৃতি বৰ্তমান হেৰাই যোৱাৰ পথত। বিজ্ঞানৰ ন ন আৱিস্কাৰ আৰু নিত্য নতুন টি. ভি.ৰ অনুষ্ঠানে এই লোকনাট্যসমূহৰ ওপৰত প্ৰভাৱ পেলাইছে। কুশান গানৰ পৰম্পৰা সম্পৰ্কে নৱ প্ৰজন্মক ইয়াৰ দায়বদ্ধতাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই এই গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হয়।

লোকনাট্য কুশান গান ঃ

কুশান গান হৈছে যাৰ মাধ্যমৰ জন সমাজত আনন্দ, উৎসাহ আৰু সমাজত প্ৰেম-প্ৰীতিৰ এনাজৰীৰে বান্ধি এক ৰাস্তাৰে নিব পাৰে, সেয়াই হ'ল কুশান। হাঁহি-ফূৰ্তিৰে ভৰা এই 'কুশান গান যিয়ে গায় সিও তৃপ্তি পায় আৰু যিয়ে শুনে বা দেখে সিও তৃপ্তি পায়'।১ কুশান গান সহজ-সৰল ভাষাত গোৱা হয় কাৰণে সকলোৱে বুজি পায়। এই পত্ৰখনত কুশান গানৰ পৰম্পৰা সম্পৰ্কে থুল-মূল আলোচনা কৰাৰ যত্ন কৰা হৈছে।

কুশান গানৰ ইতিবৃত্ত ঃ

কুশান গানৰ উৎপত্তি বা ইতিবৃত্ত সম্পৰ্কে কেইটামান মত পোৱা যায়। প্ৰথম মতটি হ'ল শ্ৰী ৰামচন্দ্ৰৰ পুত্ৰ কুশৰ পৰা কুশান হোৱা। সীতা দেৱীয়ে বাল্মীকি মুনিৰ আশ্ৰমত দুইজন যমজ পুত্ৰ সন্তানৰ জন্ম দিয়ে। এই দুই পুত্ৰ সন্তানৰ নাম 'লৱ' আৰু 'কুশ'। বাল্মীকি আশ্ৰমত লৱ আৰু কুশই বিদ্যা শিক্ষা লাভ কৰাৰ লগতে ৰামায়ণৰ সমস্ত কাহিনী গান ৰূপে শিকে। কুশই বেনা বজাই গান গাইছিল আৰু লৱই তাল বজাই গানৰ সুৰ ধৰিছিল। কুশই এই গান গোৱা কাৰণেই কুশান গান বুলি কয়।

দ্বিতীয় মত অনুসৰি কুশান গানৰ উৎপত্তি আৰু বিকাশ কোচ ৰাজবংশীৰ নিজস্ব। কোচ শব্দৰ পৰাই এই লোকনাট্যৰ নাম হয় কোচান আৰু কালক্ৰমত কোচানৰ পৰা 'কুশান' নামটো হয়।

আন এটা মতবাদ অনুসৰি 'কোচ ৰাজ্যৰ সীমাৰ ভিতৰতেই আৱদ্ধ গান/নাচ বাবে এই গান/নাচৰ নাম কোচান>কুচান>কুশান হৈছে বুলিও দুই এক পণ্ডিতে মত পোষণ কৰে'।২

কুশান গানৰ প্ৰচলন ঃ

প্ৰথম অৱস্থাত কুশান গান কোচ ৰজাৰ ৰাজদৰবাৰত আৰু জমিদাৰৰ ঘৰত প্ৰচলন হোৱাৰ কথা পোৱা যায়। ৰজা বা জমিদাৰসকলৰ ঘৰত উৎসৱ বা পূজা পাৰ্বনত কুশান গানৰ অনুষ্ঠানৰ প্ৰচলন আছিল। কিন্তু বৰ্তমান সময়ত দূৰ্গা পূজা, লক্ষ্মীপূজা, কালিপূজা, শিৱৰাত্ৰি, দৌল উৎসৱ আদিৰ লগতে অন্যান্য মেলাত কুশান গান গোৱা হয়।

কুশান গানৰ চৰিত্ৰ ঃ

কুশান নাট্যানুষ্ঠান পৰিবেশন কৰিবলৈ কমেও ২০-২৫ জন মান মানুহ লাগে। এওঁলোকক পাঁচ ভাগত বিভক্ত কৰিছে। সেইবোৰ হৈছে — গীদাল (গানৰ মূল মানুহ), দোৱাৰী (এজন দোৱাৰী যিয়ে গানৰ অর্থ দর্শকৰ আগত বিতংভাৱে বুজাই দিয়ে), বাইন (খেল, তাল, বেনা, বাঁহী, দোঁতৰা বজোৱা মানুহ), পালী বা পাইল (গীদালৰ লগত সুৰ দিয়ে বা গীদালৰ সহায়কাৰী), চুকুৰী (নাচনী) চাৰি বা পাঁচজন। কুশান দলটোৰ মূল মানুহজন হৈছে গীদাল। গীদালজনে প্ৰথম সুৰ আৰম্ভ কৰে, তেওঁৰ হাতত থাকে বেনা বা দোঁতৰা আৰু গীদালৰ লগত খোল, তাল, বাঁহী, দোঁতৰা, বেনা, ইত্যাদি বাদ্যযন্ত্ৰৰে বাইনসকলে সংগত কৰে। গীদালক গানত সহায় কৰে পাইল বা পালিয়ে। পাইল বা পালিয়ে গীদালৰ লগত গানত সুৰ ধৰে আৰু দর্শকৰ লগত যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰে। গানৰ কথাসমূহ দর্শকক বুজাই দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত পাইলে গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা লয়। বাইনৰ কাম হৈছে খোল বজোৱা। কুশান গানত ৪/৫ জনীমান চুকুৰী থাকে। এই চুকুৰী হোৱা ছোৱালীবিলাক ১০/১২ বছৰীয়া ছোৱালীয়ে হয় যদিও কেতিয়াবা বয়সত আৰু ডাঙৰ ছোৱালীও দেখা যায়। আগৰ দিনত ল'ৰাবোৰে চুকুৰী সাজিছিল যদিও বর্তমান সময়ত ছোৱালীয়ে চুকুৰী সাজে। এই চুকুৰীসকলে গানৰ তালে তালে নাচ পৰিৱেশন কৰে।

কুশান গানৰ বাদ্যযন্ত্ৰ ঃ

কুশান গানত ব্যৱহাৰ কৰা বাদ্যযন্ত্ৰসমূহ হ'ল— বেনা, দোঁতৰা, খোল, হাৰমনিয়াম, বাঁহী, সাৰিন্দা, তাল ইত্যাদি। ইয়াৰ ভিতৰত বেনা আৰু দোঁতৰা বাদ্য হ'ল প্ৰধান বাদ্য। কুশান গানত বেনাৰ ব্যৱহাৰ অপৰিহার্য বুলি কোৱা হয় যদিও বেনাতকৈ দোঁতৰাৰ ব্যৱহাৰহে বেছি পৰিলক্ষিত হৈছে। বেনা বজায় গোৱা কুশানক কোৱা হয় বেনা কুশান আৰু দোঁতৰা বজায় গোৱা কুশানক দোঁতৰা কুশান বোলে। এই প্ৰধান বাদ্যবিধ গীদালজনাই বজায় কিন্তু এতিয়া আধুনিক কী-পেড বা কেচিয় ব্যৱহাৰ কুশানত দেখা পোৱা যায়।

কুশান গানৰ সাজ-সজ্জা ঃ

কুশান গানত কোনো বিশেষ ধৰণৰ সাজপাৰ নাই। গীদালৰ পৰিধানত ধুতি-পাঞ্জাৰী আৰু ডিঙিত গামোচা বা চাদৰ এখন থাকে। দোৱাৰীয়ে ধুতি পৰিধান কৰে। বাইনসকলেও ধুতি পিন্ধে। চুকুৰীসকলে পাটানী পিন্ধে ঠাই বিশেষে ফুলাম শাৰী বা ঘাগৰা, ব্লাউজ পিন্ধাও দেখা যায়। মূৰত ওৰণী লয়। হাতত ৰুমাল লয়, মূৰত খোপা বান্ধে, বিভিন্ন আ-অলংকাৰ পিন্ধে, ভৰিত ঘুগুৰা (নুপুৰ) পিন্ধে।

কুশান গানৰ ভাষা ঃ

কুশান গানৰ ভাষা হৈছে ৰাজবংশী ভাষা। অঞ্চল অনুপাতে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত কিছু তাৰতম্য হোৱা দেখা যায়। কিছুমানত ৰাজবংশী ভাষাৰ লগত বঙালী মিশ্ৰিত ভাষাৰ গান গোৱা দেখা যায়।

কুশান গানৰ খণ্ড বা চেও ঃ

কুশান গানৰ সময়ত কিছুমান ভাগ কৰি খণ্ড হিচাপে লোৱা দেখা যায়, যেনে— বন্দনাগান, পয়াৰ বা দিসা, দেহতত্ত্ব, পালাগান, মলসী গান। কেতিয়াবা দলটোৰ ভাগৰ দূৰ কৰিবলৈ নানাধৰণৰ হাস্যৰস, সাঁথৰ, শ্লোক ইত্যাদি আকর্ষণীয় অংগী-ভংগী পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। আজিকালি বিভিন্ন ঘটনাক কুশান পালা হিচাপে গোৱা দেখা যায়। এই পালা গানসমূহত ৰজা-মহাৰজাৰ ঘটনাই বেছি।

কুশান গানৰ বিষয়বস্তু ঃ

কুশান গানৰ বিষয়বস্তু ৰামায়ণ আশ্ৰিত। এই ফালৰ পৰা কুশানক ৰামায়ণ কেন্দ্ৰীক পৰিৱেশ্য কলা আখ্যা দিব পাৰি। এইবিধ পৰিৱেশ্যকলাৰ পালা বা নাটবোৰ ৰামায়ণৰ একো একোটি বৈচিত্ৰ্যপূর্ণ কাহিনীৰ আধাৰত ৰচিত যেনে ঃ "দানী ৰজা হৰিশ্চন্দ্ৰ", "লক্ষ্মণৰ শক্তিশেল", "মহীৰাৱণ বধ", "ৰাৱণ বধ" ইত্যাদি। 'আনন্দ প্ৰদানৰ জৰিয়তে

লোকশিক্ষা আৰু আধ্যাত্মিক শিক্ষা প্ৰদানেই কুশান গানৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।[৩]

কুশান গানৰ বন্দনা অংশ ঃ

কুশান গান পালা আৰম্ভ কৰাৰ আগতে গীদালে প্ৰথমে মঙ্গলাচৰণ শ্লোক, সৰস্বতী বন্দনা, ৰঘুবন্দনা, তাৰ মাজতে চাৰিযুগ বন্দনা, মাজতে জপসাল পালা বা কাহিনীৰ আৰম্ভণি আৰু ৰাইজক বা দশজনক বন্দনা আৰু গীদালৰ আত্মলঘিমাৰ দ্বাৰা বন্দনাৰ সমাপ্তি হয়। বন্দনা অংশ শেষ হোৱাৰ পিছতহে মূল পালা আৰম্ভ হয়।

মঙ্গলাচৰণ শ্লোক ঃ

কুশান গানৰ আৰম্ভণিতে মঙ্গলাচৰণ শ্লোক গোৱা হয়।

"জয় আহা হা
জয় আহা হা
ৰাম লক্ষণ পূৰ্বজং ৰঘুবৰং সীতাপতি সুন্দৰম্।
কাকুংস্থং কৰুণাময়ং গুণনিধিং বিপ্রপিয়ং ধার্মিকম্।।
ৰাজেন্দ্রং সত্যসন্ধং দশৰথ তনয়ং শ্যামলং শান্তমূৰ্ত্তিম
বন্দে লোকাভিৰামং ৰঘুকুল তিলকং ৰাঘবং ৰাৱনাৰৰিম।"[৪]

কুশান গানৰ দেৱী বন্দনা ঃ

কুশান গানৰ পালা আৰম্ভ হোৱাৰ সময়ত গীদাল, দোৱাৰী আৰু চুকুৰীবোৰে আঠুকাঢ়ি প্ৰথমে সৰস্বতী বন্দনা আৰু চাৰিদিশ বন্দনাৰে এই গানৰ পালা আৰম্ভ কৰে।

"ঐ... আ... হা... হা
ঐ... আ... হা... হা
প্ৰথমে বন্দনা কৰুং মাও সৰস্বতী
তাৰ পৰে বন্দনা কৰুং উত্তৰ-দক্ষিণ
আৰো পূৱ-পশ্চিম...।

গীদালজনে নিষ্ঠা আৰু সততাৰে দেৱ-দেৱীৰ বন্দনাৰে প্ৰথমে গান আৰম্ভ কৰে। সভাত বহি থকা সকলোকে প্ৰণাম কৰি বৰ্ণনা সুৱত গান কয়। এই গানকে বন্দনা গান বোলে।

"হে মা সৰেস্বতী তোমাৰ পদে জানাই মিনতি।
আইসেক মা মোৰ সৰস্বতী ৰথে কৰিয়া ভৰ
জয় জোকাৰে নামিয়া আয় মা মোৰ সভাৰ ভিতৰ
ও মা জননী মোৰ সভা চাৰিয়া
যদি অন্যৰ সভায় যাও,
অন্য কিছু কিৰা নাদং মা,
ধৰ্মেৰ মাথা খাও।
ও মা জননী, মোক যদি লজ্জা দেও মা
ভৰ সভাৰ মাঝে।
তুইও লজ্জা পাবি মা ঐ দেৱতাৰ সমাজে
ও মা জননী পাইল-বাইনেৰ মস্তকে মা তুই দিয়া
দুইটি পাও
মূলেৰ কণ্ঠেৰে বসি নেহালি খেলাও।
ও মা জননী, যেমন পুষ্প গথে মধ্যে দিয়া ডোৰ
ঐ মতন কৰিয়া দিবেন মা গানেৰ আগাগৰ।" [৫]

এই বন্দনাৰ জৰিয়তে সকলোৰে কণ্ঠত যাতে দেৱী সৰস্বতী থাকে তাৰ বাবে প্ৰাৰ্থনা কৰা হয়। বন্দনাৰ পিছতে চাৰিদিশ, তেত্রিশ কোটি দেৱতা আৰু হিন্দু-মুছলমান ভাইসকলক নমস্কাৰ জনাই আৰু আকাশৰ তৰা আৰু পাতালৰ দেৱতাক প্ৰণাম জনাইছে।

"পূৱে ৰাজ বন্দুং ভানু বা ভাস্কৰ
উত্তৰে কালিকা বন্দুং সাগৰ
পশ্চিমে বন্দনা কৰুং পীৰেৰ সকাম
তেত্রিস কোটি দেৱতা বাচিয়া নিল টাস
আকাশে বন্দনা কৰুং আকাশৰ তাৰা
পাতালে বন্দনা কৰুং পাতালেৰ বালা
সভাতে বসিয়া আছে হিন্দু-মুছলমান
হিন্দুকে জানাই প্ৰণাম মুছলমানকে ছালাম।[৬]

কুশান লোকনাট্যৰ পৰিৱৰ্তন ঃ

ওজাপালি, পুতুলানাচ, খুলীয়া ভাৱৰীয়া, কামৰূপীয়া ঢুলীয়া, কুশান গান, ভাৰী গান আদি লোকনাট্যসমূহৰ

পৰিৱৰ্তনৰ ছাপ পৰা দেখা যায়। এইবোৰৰ বিষয়বস্তু আৰু উপজীব্য কাহিনী মুখে মুখে চলি আহিছিল যদিও বৰ্তমান এইবোৰ লিখিত ৰূপ লাভ কৰিছে। নাটৰ কলা কৌশল আৰু পৰিৱেশনৰ ৰীতিৰো পৰিৱৰ্তন আৰু পৰিবৰ্দ্ধন সাধিত হৈছে। এইবোৰ এতিয়া কমার্চিয়েলাইজেচন (বাণিজ্যিক) আৰম্ভ কৰিছে। নাট পৰিবেশনৰ বাবদ গৃহস্থ বা উদ্যোক্তাসকলে উপযুক্ত মাননি দিয়া বাবে বহুসংখ্যক লোকে এইবোৰৰ পৰিৱেশনক জীৱিকা হিচাপে লৈছে। লক্ষণীয়ভাৱে পাঠকসকলে গীত সুৱবোৰ পৰিৱেশনত আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱো সংযোজিত কৰিছে।

সংৰক্ষণৰ প্ৰয়োজনীয়তা ঃ

সময়ৰ বোঁৱতী সোঁতে লোক সংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত লোক-পৰিবেশ্যকলাৰ বিভিন্ন আওপুৰণি সোঁতক সদায় নতুন বাটেৰে বোঁৱাই আনিছে। আধুনিক শিক্ষাৰে শিক্ষিত এচামে গতিশীল চিন্তা ধাৰাৰ ব্যক্তিৰ দ্বাৰা সংস্কাৰমুখী দৃষ্টিভংগীত প্ৰচলিত লোক পৰিৱেশ্য কলাসমূহ নতুন সংস্কাৰেৰে আগুৱাই নিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। নতুন প্ৰজন্মই লোক পৰিৱেশ্য কলাত সন্নিবিষ্ট হোৱা আধুনিকীকৰণ বিলুপ্তি ঘটাই অতীত ঐতিহ্য বহন কৰি সংৰক্ষণ কৰাৰ প্ৰয়োজন আহি পৰিছে। যদিও আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱ এইবোৰত সন্নিবিষ্ট হৈছে তথাপি এই আপুৰুগীয়া সম্পদৰাজি সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্ধন কৰি ইয়াৰ উচিত মূল্য প্ৰদান কৰিব পাৰিলেহে ই চিৰদিন চিৰকাল নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত জাকত জিলিকা সম্পদ হৈ থাকিব।

উপসংহাৰ ঃ

পৰম্পৰাক গতিহীন অৰ্থাৎ স্থবিৰ বুলিব নোৱাৰি, স্বৰূপাৰ্থত ই গতিশীল আৰু পৰিৱৰ্তনশীল সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে সমাজ পৰিৱৰ্তিত হয় আৰু সমাজৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে ঐতিহ্য বা পৰম্পৰাৰো পৰিৱৰ্তন ঘটে। এতেকে আধুনিক সমাজতো আধুনিক জীৱনৰ অনুকূলে পৰম্পৰা চলি থাকে। আধুনিক জীৱন বা সমাজতো লোক পৰিৱেশ্য কলা কিবা নহয় কিবা প্ৰকাৰে চলি আছে আৰু ভৱিষ্যতলৈও চলি থাকিব। আধুনিকতাৰ গ্ৰাসত পৰি অনেক গোষ্ঠী বা জাতিয়ে নিজৰ নিজৰ লোক পৰিৱেশ্য কলাৰ অতীত হেৰুৱাইছে আৰু আত্ম পৰিচয়হীন হৈও পৰিছে। তেনে গোষ্ঠীয়ে নিজৰ ভুল বুজিব পাৰি তেওঁলোকৰ লোক পৰিবেশ্য কলাক উদ্ধাৰৰ মানসেৰে নৱ জাগৰণৰ সহায়ত স্বকীয় পৰিচয় দিবলৈ সক্ষম হ'ব লাগিব।

অসমৰ পশ্চিম অঞ্চলৰ অনাবিল আনন্দ দিবলৈ সক্ষম হোৱা লোকনাট্য কুশান নৃত্য আজি বিলুপ্তিৰ পথত। এই লোকনাট্য অনুষ্ঠানটো জীয়াই ৰাখিবলৈ পশ্চিম অসমৰ এমুঠিমান শিল্পী তথা সাধকে অক্লান্ত প্ৰচেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে যদিও সেয়া আশাপ্ৰদ নহয়। দৰ্শকৰ অকৃত্ৰিম সমাদৰৰ লগতে চৰকাৰৰ বিশেষ সাহায্য অবিহনে এই মৃত্যুমুখী সাংস্কৃতিক লোকনাট্য অনুষ্ঠানটো জীয়াই থকাটোৱে দুৰহ হৈ পৰিব। ❑

প্ৰসংগটীকা ঃ

১. উদয়ন কোচ; দিহিৰাও, পৃষ্ঠা-৫৭
২. আনন্দ মোহন ভাগৱতী; কুশান গান, পৃষ্ঠা- ১
৩. নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা; অসমৰ লোকনাট্য, পৃষ্ঠা- ১৩৮
৪. দ্বিজেন্দ্ৰ নাথ ভকত, কুশান গান, পৃষ্ঠা- ২৬
৫. তথ্যদাতা- বাবুলাল ৰায়
৬. তথ্যদাতা- শুক্তা ৰায়

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. কোচ, উদয়ন (সম্পা.) ঃ দিহিৰাও, স্মৃতিগ্ৰন্থ, সদৌ কোচ ৰাজবংশী ছাত্ৰ সন্থাৰ চতুৰিংশতিতম প্ৰতিষ্ঠা দিৱস, ২০১৪
২. দাস, উমেশ (সম্পা.) ঃ সাহিত্য সংস্কৃতি মুকুৰ, সাহিত্য চৰা, কোকৰাঝাৰ চৰকাৰী মহাবিদ্যালয়, কোকৰাঝাৰ, ২০১৪ইং.
৩. ভকত, দ্বিজেন্দ্ৰ নাথ ঃ কুশান গান, বনমালী প্ৰকাশন, ধুবুৰী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৫
৪. ভাগৱতী, আনন্দ মোহন ঃ কুশান গান, অসম সাহিত্য সভা, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯০।
৫. শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ ঃ অসমৰ লোকনাট্য, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১০

তথ্যদাতা ঃ

১. শুক্তা ৰায় (৬০), কলবাৰী, কোকৰাঝাৰ
২. দয়ালু ৰায় (৬৫), গঙ্গাৰ জাফলং, কোকৰাঝাৰ
৩. বাবুলাল ৰায় (৭০), হাব্ৰুবাৰী, কোকৰাঝাৰ
৪. কামাখ্যা অধিকাৰী (৫৫) টুনীয়াডাঙ্গা, কোকৰাঝাৰ
৫. ৰত্নেশ্বৰ ৰায় (৫৫), দেবৰগাঁও, কোকৰাঝাৰ

প্রবন্ধ

বড়োসকলৰ খেৰাই উৎসৱ আৰু ইয়াৰ ধর্মীয় তথা সামাজিক তাৎপর্য্য ঃ এক অৱলোকন

বনশ্রী ভৰদ্বাজ

সহায়ক অধ্যাপিকা, ফি'লচফি বিভাগ
কোকৰাঝাড় চৰকাৰী মহাবিদ্যালয়,
কোকৰাঝাড় (বি,চি,এ,ডি,),
অসম-৭৮৩৩৭০
ম'বাইল-৯৮৫৪৭২৯৬৬০

ড° পল্লবী বৰা

গৱেষণা নির্দেশক, লোক-সংস্কৃতি
গৱেষণা বিভাগ,
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠী, ক্ষুদ্র-বৰ ভাষা ভাষী তথা ধর্মাৱলম্বী লোকৰ মিলনভূমি। 'অনৈক্যৰ মাজত ঐক্য' হৈ অসম তথা অসমবাসীয়ে সাতাম-পুৰুষীয়া কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ সম্প্রীতিৰ বান্ধোনেৰে সদায় বিশ্ববাসীৰ দৃষ্টি আকর্ষন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। বড়ো সকল কেৱল অসমৰে নহয় সমগ্র উত্তৰ-পূৰ ভা�ৰতৰে এক বৃহৎ জনগোষ্ঠী। বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি গঠন প্রক্রিয়াত যে বড়ো সকলে বিশেষ ভাবে সাৰ-পানী যোগাইছিল তাত কাৰো তিলমানো সন্দেহ নাই। বড়ো সকলৰ এক সুকীয়া সংস্কৃতি আছে, সুকীয়া সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য আছে। তেওঁলোকৰ ধর্ম-বিশ্বাস, লোকাচাৰ, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, পূজা-পাতল, খাদ্যসম্ভাৰ, পিন্ধন উৰণ, লোক- চিকিৎসা আদি সম্পর্কে ইতিমধ্যে বহু পণ্ডিতে গৱেষণা কৰি বিশদ বিৱৰণ আগবঢ়াই থৈ গৈছে। সেই বিৱৰণ সমূহকে মূল ভিত্তি হিচাপে লৈ আৰু প্রয়োজন সাপেক্ষে ব্যৱহাৰিক ক্ষেত্রখনত নিজে খোজ পেলাই আহৰণ কৰা জ্ঞানৰ জৰিয়তে বড়োসকলৰ 'খেৰাই' উৎসৱৰ বিষয়ে এই গবেষণা পত্রখনত আলোকপাত কৰিব বিচৰা হৈছে। বড়োসকলে পালন কৰা বিভিন্ন উৎসৱ-পার্বনৰ ভিতৰত এক অন্যতম উৎসৱ হৈছে খেৰাই পূজা। এই খেৰাই পূজাৰ লগত জড়িত ধর্মীয় তথা সামাজিক বিশ্বাস, লোকাচাৰ আদি সম্পর্কে আলোচনা কৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

বড়োসকল, খেৰাই উৎসৱ, লোকাচাৰ, খাদ্যসম্ভাৰ, লোক-চিকিৎসা।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমত বাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভিতৰত বড়োসকল কেবাটাও কাৰণত লেখত ল'বলগীয়া এটা অন্যতম প্রধান জনগোষ্ঠী। নৃ-গোষ্ঠীয় বিভাজন অনুসৰি তেওঁলোক মঙ্গোলীয় জনগোষ্ঠীৰ অর্ন্তগত। অসম নামৰ ভূ-খণ্ডৰ আদিম বাসিন্দা হোৱা হেতুকে বড়োসকলক ভূমিপুত্র বুলি গণ্য কৰা হৈ আহিছে। কালৰ সোঁতত, উত্থান-পতনৰ মাজেৰে আহি বড়ো জনগোষ্ঠীটোৱে বর্তমানৰ অৱস্থা

পাইছে। স্বাধিকাৰ - স্বাভিমানৰ সংগ্ৰাম খনত বিপৰ্য্যস্ত হ'লেও যেন বড়োসকলে নিজস্ব ভাষা, সাহিত্য-সংস্কৃতি, ধৰ্ম, লোকাচাৰ, পৰম্পৰা ঐতিহ্য ৰক্ষাত কোনো ফালে কৃপণালি কৰা নাই। বহু ঘাত-প্ৰতিঘাতৰ মাজেৰে, আত্ম পৰিচয়েৰে বড়োসকলে কেৱল নিজৰ জাতিৰেই উত্থান ঘটোৱা নাই, বৰং সামগ্ৰিক ভাবে অসম খনৰে ভেটি সুদৃঢ় কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। বড়োসকলৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যই অসমৰ ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিকো সমানেই সাৰ-পানী যোগাই সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে। চিন্তা আৰু অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিত আজি বড়ো সাহিত্যই আধুনিক জগতৰ নতুন বিকীৰণত উদ্ভাসিত হোৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। বড়োসকলৰ সংঘবদ্ধতা আৰু ঐক্য চেতনাই এই প্ৰয়াসক যে বাস্তবায়িত কৰিব তাত তিলমানো সন্দেহ নাই।

যি কি নহওক বড়োসকল যে সুকীয়া সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যৰে সমৃদ্ধ সেয়া পুনৰবাৰ দোহৰাৰ নিশ্চয় প্ৰয়োজন নাই। পৰম্পৰাগত ভাবে তেওঁলোকে অতীজৰে পৰা কিছুমান ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন, ধৰ্মীয় বিশ্বাস, লোকাচাৰ আদি পালন কৰি আহিছে। খেৰাই উৎসৱ হৈছে তেওঁলোকৰ এক অন্যতম প্ৰধান উৎসৱ। ই মূলতঃ ধৰ্মীয় উৎসৱ যদিও বড়ো সামাজিক- সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যৰ কথা ইয়াক বাদ দি ভাবিবই নোৱাৰি।

এই গৱেষণা পত্ৰখনত খেৰাই উৎসৱৰ বিষয়ে উপস্থাপন কৰিব বিচৰা হৈছে।

০.১ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

বিভিন্ন সময়ত বিভিন্নজন ব্যক্তি বা গবেষকে বড়ো সকলৰ লোক সাহিত্য, লোকাচাৰ সম্পৰ্কে বিভিন্ন দিশ আলোচনা কৰি আহিছে বা নিত্য নতুন তথ্য পোহৰলৈ আনিছে যদিও সেয়া পৰ্য্যাপ্ত নহয়। বড়ো সকলৰ বিশাল সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰখনৰ বিভিন্ন দিশ বহলকৈ আলোচনা কৰাৰ থল আছে। বিশেষকৈ খেৰাই উৎসৱটোৰ লগত জড়িত ধৰ্মীয় তথা সামাজিক দিশসমূহ সঠিক ভাবে বিশ্লেষণ কৰি ৰাইজৰ আগত শুদ্ধ ৰূপত উপস্থাপন কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা নুই কৰিব নোৱাৰি। সেয়ে আমাৰ গবেষণা পত্ৰ খনত বড়োসকলৰ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ উৎসৱ খেৰাই পূজা আৰু

ইয়াৰ ধৰ্মীয় তথা সামাজিক তাৎপর্য্যৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰাৰ উদ্দেশ্যেই বিষয়টো নিৰ্বাচন কৰি লোৱা হৈছে।

০.২ **অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ**

'বড়োসকলৰ খেৰাই উৎসৱ আৰু ইয়াৰ ধৰ্মীয় তথা সামাজিক তাৎপর্য্যঃ এক অৱলোকন' শীৰ্ষক গৱেষণাৰ বিষয়টোৰ ক্ষেত্ৰত অধ্যয়নৰ বাবে বিশেষকৈ কোকৰাঝাৰ জিলাৰ অন্তৰ্গত বড়ো অধ্যুষিত অঞ্চল সমূহক সামৰি লোৱা হৈছে। কোকৰাঝাৰ জিলা বিটিআৰৰ এখন অন্যতম জিলা আৰু ইয়াতেই বিটিআৰৰ ৰাজধানী বা সচিবালয় অৱস্থিত। কোকৰাঝাৰ জিলা ২৬.৪০১৪ N অক্ষাংশ আৰু ৯০.২৬৬৭° E দ্ৰাঘিমাংশ অৱস্থিত। ইয়াত বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোক আছে যদিও কেৱল বড়োসকলকহে এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰত অন্তৰ্ভূক্ত কৰা হৈছে। খেৰাই পূজাৰ লগত জড়িত বিভিন্ন দিশ অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ আওতালৈ আনিব বিচৰা হৈছে।

০.৩ **অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ**

গৱেষণাৰ বিষয়বস্তুটো প্ৰস্তুত কৰোতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক দুয়োটা পদ্ধতিয়ে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

০.৪ **তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ**

উক্ত গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে দুই ধৰণৰ সমল অর্থাৎ মুখ্য আৰু গৌণ সমল ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। বিশেষকৈ খেৰাই উৎসৱ সম্পৰ্কীয় ৰচনাৰাজি, গ্ৰন্থৰাজি, আলোচনী, টোকা, বড়ো সাহিত্য সভা, বাথৌ মহাসভা, নিখিল বড়ো ছাত্ৰ সন্থা, অসম আদিৰ মুখপত্ৰ সমূহৰ পৰা গৌণ সমল গ্ৰহণ কৰা হৈছে। আনহাতে কোনো কোনো নেতৃত্বস্থানীয় ব্যক্তি, বয়সস্থ জেষ্ঠ্য পুৰোহিত বা ধৰ্মৰ লগত জড়িত, বিষয়টোত গভীৰ জ্ঞান থকা ব্যক্তি আদিৰ লগত প্ৰয়োজন সাপেক্ষে সাক্ষাৎকাৰ গ্ৰহণ কৰি, স্থানীয় সংবাদদাতা সকলৰ পৰাও মুখ্য সমল আহৰণ কৰাৰ প্ৰযত্ন কৰা হৈছে। গবেষকে খেৰাই উৎসৱ স্বচক্ষে প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ সুযোগ পোৱা হেতুকে এক সুবিধাজনক স্থিতিত পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

০.৫ **পূৰ্বকৃত অধ্যয়ন ঃ**

অবিনশ্বৰ আত্মাকো প্ৰকাশৰ বাবে দেহৰ প্ৰয়োজন হয়। ঠিক সেইদৰে ভাষা এটাই প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰে সাহিত্য চৰ্চাৰ জৰিয়তেহে। বড়ো ভাষাই বিভিন্ন সাহিত্য, আলোচনা, গ্ৰন্থপঞ্জী, কাব্যপুথি, ৰচনা আদিৰ জৰিয়তে প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰ লাভ কৰি আজিৰ পূৰ্ণ ভাষাৰ মর্য্যদা পাইছে। বড়ো ভাষাক লিখিত ৰূপ দি কিতাপ আকাৰে ৰাইজৰ মাজলৈ উলিয়াই দিয়াত অগ্ৰণী ভূমিকা লৈছিল অৱশ্যেই মিছনেৰী সকলে। Rev. S. Endle চাহাবে 'The Kacharis' নামে প্ৰকাশ কৰি উলিওৱা মূল্যবান কিতাপখনে শিক্ষিত বড়োসমাজৰ চকু মেল খুৱাইছিল। ঠিক সেইদৰে J. D. Anderson ৰ 'Kachari Folk Tales and Rhymes' নামৰ গ্ৰন্থখনেও যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলাবলৈ সক্ষম হৈছিল। ১৯২৬ চনত পদ্মশ্ৰী স্বৰ্গীয় মদাৰাম ব্ৰহ্ম ৰচিত 'বড়োনি গুদিদি বসা' আৰু 'আৰজ' নামৰ পুথি দুখনো লেখতলবলগীয়া।

সময় আগবঢ়াৰ লগে লগে বড়ো ভাষাই বিদ্যালয়, মহাবিদ্যালয়, বিশ্ববিদ্যালয় পর্য্যায়ত স্বীকৃতি লাভ কৰে। ফলত বড়ো শিক্ষিত লোকসকলৰ দায়িত্ব আৰু তাড়না বৃদ্ধি পায়। সেই তাড়নাতেই বিভিন্ন জনে বিভিন্ন দিশত সাহিত্য সৃষ্টি কৰিবলৈ ধৰিলে আৰু জাতীয় জীৱনত বড়ো সাহিত্যৰ অভূত পূর্ব বিকাশৰ ধাৰা তৰান্বিত হ'বলৈ ধৰিলে। ভবেন নার্জীৰ 'বড়ো সমাজ আৰু সংস্কৃতি' (১৯৬৪) , 'বড়ো কছাৰীৰ গীত-মাত' (১৯৮৩) , 'বড়ো ৰাও' (১৯৯০) আদি উল্লেখযোগ্য। ইয়াৰ বাহিৰেও প্ৰমোদ চন্দ্ৰ ভট্টাচার্য্যৰ 'A Descriptive Analysis on Bodo language' (1977), মোহিনী মোহন ব্ৰহ্মৰ 'খুগা মেথায় আৰু খুগা চলো' (১৯৬৮), 'আবৈ আবৌনি চলো' (১৯৬৮), 'বড়ো কছাৰীৰ সাধু' (১৯৭২), ৰোহিনী কুমাৰ ব্ৰহ্মৰ 'সেৰজা চিফুং' (১৯৬৪), মনোৰঞ্জন লাহিড়িৰ A Study of Bodo Folk Song (1985) ইত্যাদি গ্ৰন্থই বড়ো লোক সাহিত্যৰ ভঁৰাল টনকিয়াল কৰিছে। পৰবর্ত্তী পর্য্যায়ত প্ৰকাশ পোৱা বিভিন্ন গ্ৰন্থ যেনেঃ মেদিনী চৌধুৰীৰ 'The Bodo- Dimasa of Assam' (1988), মধুৰাম বৰোৰ 'Historical Development of the Boro language' (1990) , শ্ৰীমতী বিজয়া লক্ষ্মী চৌধুৰীৰ 'Bodos (Kacharis) at a glance' (1993), থমাছ পুল্ল'পিলিন আৰু জেকৰ আলুকলালৰ 'The Bodos: The Children of Bullum butter', ড° লীলাধৰ ব্ৰহ্মৰ 'Religion and Dances of Bodos (2003) , ড° অনিল বৰোৰ 'The Flute and the Harp (Eassy on Bodo Literature and culture) (2004), প্ৰেমলতা দেৰীৰ 'Social and Religious

Institutions of Bodos' (2007), ড° কামেশ্বৰ ব্ৰহ্মৰ 'Aspects of social customs of Bodos' 2008 (reprint) আৰু 'A Study in cultural Heritage of the Boros' 2011 (reprint), ভাষাবিদ সুনীতি কুমাৰ চেটাৰ্জীৰ 'Kirata Jana Kriti' 2011 (reprint), ড° শেখৰ ব্ৰহ্মৰ 'Religion of the Boros and their Socio-cultural Transition' 2011 (reprint), ড° মালবিকা বাগলাৰীৰ 'বড়ো সমাজ আৰু সংস্কৃতি' (২০১৬), এই অভাজন আৰু উমেশ দাস সম্পাদিত The Bodos: The Frontier Aboriginal of Assam' (2014) ইত্যাদি গ্ৰন্থৰাজিৰ পৰা আলোচিত বিষয়বস্তুৰ সম্যক ধাৰণা পাবৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। ইয়াৰ বাহিৰেও বিভিন্ন গৱেষক, লেখক, পণ্ডিতে তেওঁলোকৰ তথ্যসমৃদ্ধ লেখা তথা আলোচনা বিভিন্ন ৰাষ্ট্ৰীয়, আন্তৰাষ্ট্ৰীয় জাৰ্নেলত প্ৰকাশ কৰি থৈ গৈছে। আলোচ্য বিষয়ৰ কাৰণে উক্ত জাৰ্নেল সমূহো সহায়ক বুলি বিবেচিত হৈছে।

২.০ বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

অতীজৰে পৰা বড়োসকলৰ মাজত বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠান প্ৰচলিত হৈ আহিছে যদিও এই উৎসৱ-পাৰ্বন সমূহৰ ভিতৰত খেৰাই উৎসৱৰ বিশেষত্ব অতি তাৎপৰ্য্য পূৰ্ণ। ই ধৰ্মীয় আৰ সামাজিক দিশৰ পৰাও যথেষ্ট গুৰুত্বপূৰ্ণ। ধৰ্মীয় উৎসৱ হিচাপেই বড়োসকলে এই উৎসৱ পালন কৰি আহিছে। বড়োসকলৰ লোক ধৰ্ম হৈছে বাথৌ ধৰ্ম। এই বাথৌ ধৰ্মৰ লগতে খেৰাইৰ আছে গভীৰ সম্পৰ্ক। বাথৌ ধৰ্মক বাদ দি খেৰাইৰ আলোচনা কেৱল অসম্ভৱেই নহয় অসম্পূৰ্ণও। বাথৌ ধৰ্মৰ লগত খেৰাই পূজা (বহুতে উৎসৱৰ ঠাইত 'পূজা' শব্দটোহে পচন্দ কৰে) অঙ্গাঙ্গীভাৱে জড়িত।

বড়োসকলৰ মূল ধৰ্ম বাথৌ মতে, বীৰাই বাথৌ হ'ল মূল দেৱতা যাক তেওঁলোকে হিন্দু ধৰ্মৰ শিৱ দেৱতা বুলি অভিহিত কৰে, লগতে স্মৰণো কৰে। মূল দেৱতা শিৱক আৰাধনা কৰাৰ বাবেই বহুতে প্ৰথমাৱস্থাত বাথৌ ধৰ্মক একেশ্বৰবাদ (Monism) বুলি ধাৰণা কৰে। অৱশ্যে বড়োসকলে বিভিন্ন দেৱ-দেৱীক বিভিন্ন পৰ্য্যায়ত আৰাধনা কৰে কাৰণেই 'বাথৌ ধৰ্মক' কঠোৰ একেশ্বৰবাদ (Strict monism) বুলি একে আষাৰেই কোৱাটো সমীচিন নহ'ব। যি কি নহওক এই শিৱ পূজাৰ কাৰণেই মহাৰাজ নৰনাৰায়ণে খেৰাই পূজা কৰা বুলি উল্লেখ পোৱা যায় আৰু তেতিয়াৰে পৰা সেই পৰম্পৰা ৰক্ষাৰ্থে আজিও বড়োসকলে খেৰাই পূজা পালন কৰি আছে বুলি জনমানসত বিশ্বাস কৰা হয়।[১]

সংবাদদাতা সকলৰ পৰা পোৱা তথ্য অনুসৰি খেৰাই পূজা মূলতঃ তিনিটা কাৰণত অনুষ্ঠিত কৰা হয়-

প্ৰথমতে, আশু খেৰাই পালন কৰা হয় আহুধান আৰু বাৰিষাৰ শস্যৰ মঙ্গল তথা শ্ৰীবৃদ্ধি কামনা কৰি। এই খেৰাই আহাৰ অথবা শাওন মাহৰ অমাৱস্যাৰ ৰাতি অনুষ্ঠিত কৰা হয়। বহুতে ইয়াক 'ওমৰাও খেৰাই' বুলিও ক'ব বিচাৰে।

দ্বিতীয়টো কাৰণ হৈছে যে শালি ধান বা খৰালি কালৰ শস্য শ্ৰীবৃদ্ধিৰ কামনা কৰিও খেৰাই পূজা দিয়া হয়। এই উৎসৱ কাতি মাহৰ অন্ধকাৰ ৰাতি পালন কৰা হয়। ইয়াক 'লক্ষ্মীখেৰাই' বা 'দৰসন খেৰাই' বুলিও কোৱা হয়। মন কৰিবলগীয়া কথাটো এয়ে যে বাথৌ ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতিৰে ইয়াক পালন কৰা হয়।

তৃতীয়তে, ঘৰৰ কোনো লোক অচিন ৰোগত আক্ৰান্ত হ'লে, টান নৰীয়া হ'লে বা বেমাৰৰ পৰা উপশম হোৱাৰ কোনো সম্ভাৱনা নেদেখিলে পৰিয়াল বা আত্মীয়ই ৰোগীৰ আৰোগ্য কামনা কৰি খেৰাই পূজা দিব পাৰে। ইয়াক 'নৰানি খেৰাই' বোলে।[২]

আকৌ অঞ্চল বিশেষে, ব্যক্তি বিশেষে কেতিয়াবা মাগৌ দোমাসি উপলক্ষে মাঘৰ পূৰ্ণিমাতো খেৰাই পূজাৰ আয়োজন কৰা হয়। ইয়াক 'ফালো খেৰাই' বুলি কোৱা হয়।

বড়ো সকলৰ মাজত খেৰাই পূজাই হৈছে সৰ্বাধিক জনপ্ৰিয় উৎসৱ। ইয়াৰ মাহাত্ম্যও আছে বুলি মানুহে বিশ্বাস কৰে। লোকবিশ্বাস মতে, খেৰাই হ'ল গীত-মাত-নৃত্য আৰু বাদ্য-বাজনাৰে ভৰপূৰ এক অনুষ্ঠান। কিন্তু বহু গৱেষক পণ্ডিতে 'খেৰাই'ৰ বুৎপত্তিগত অৰ্থ বিশ্লেষণ কৰিবলৈ গৈ খেৰাইৰ আচল অৰ্থ যে গীত-মাত-নৃত্যতেই আবদ্ধ হৈ আছে তেনে নহয় বুলি কৈ গৈছে। তেওঁলোকৰ মতে, 'খে' মানে 'তৰোৱাল' আৰু 'ৰায়' মানে 'উপাসনা কৰা'। সেয়ে কোনো কোনোৰ মতে তৰোৱালক উপাসনা কৰাই হৈছে খেৰাই উৎসৱ।[৩]

অৱশ্যে খেৰাই পূজাত দৌদিনীয়ে তৰোৱাল লৈ নৃত্য কৰা দেখা যায় আৰু এই প্ৰশস্তিমূলক নৃত্যটোক খেৰাই নৃত্য বুলি কোৱা হয়। সেয়ে হয়তো বহুতে খেৰাই পূজাত 'তৰোৱাল উপাসনা কৰাই' মূল বুলি ক'ব খোজে। আকৌ লোক সংস্কৃতিবিদ, গৱেষক, পণ্ডিত ড° নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই

খেৰাই শব্দটো 'আঠুকাঢ়ি দেৱতা উপাসনা কৰা বা প্ৰাৰ্থনা কৰা' অৰ্থত ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে বুলি ক'ব বিচাৰে।[৪]

২.১ খেৰাই পূজাৰ লগত জড়িত জনশ্রুতি ঃ

খেৰাই পূজাৰ উৎপত্তি সম্পৰ্কে কেবাটাও জনশ্রুতি বা কাহিনী বড়ো লোক সমাজত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। প্ৰচলিত জনশ্রুতি মতে, প্ৰাচীন কালত 'জাৰা-পাগলা' নামৰ এজন বৃদ্ধই বাস কৰিছিল। তেওঁৰ সাতোটা পুত্ৰ সন্তানৰ লগতে বোৱাৰীও আছিল। একেবাৰে কনিষ্ঠা বোৱাৰীৰ প্ৰতি বৃদ্ধ গৰাকীৰ লোলুপ দৃষ্টি আছিল। বৃদ্ধ গৰাকী অৰ্থাৎ শহুৰেকে বোৱাৰী গৰাকীক বেয়া ভাব-ভঙ্গী প্ৰদৰ্শন কৰি মানসিক ভাবে অশান্তি দি আহিছিল। ফলত শহুৰেকৰ অসৎ উদ্দেশ্য গম পাই 'মঙ্গলী' নামৰ কনিষ্ঠতম বোৱাৰী গৰাকী ঘৰৰ পৰা নোহোৱা হৈছিল। বৃদ্ধ শহুৰেকে বহুত বিচাৰিও বোৱাৰীক ওভতাই পাবলৈ সক্ষম হোৱা নাছিল। মনৰ দুখত 'জাৰা পাগলা'ই গীত গাবলৈ ধৰিছিল। কথিত আছে যে সেই বোৱাৰীয়েই নৃত্যৰ জৰিয়তে শহুৰেকৰ কু-কৰ্ম ৰাইজৰ আগত দাঙি ধৰে। আকৌ কোনো কোনোৰ মতে, বোৱাৰী মঙ্গলীয়ে খেৰাই পূজাত দেৱীৰ ৰূপত প্ৰকট হৈ শহুৰেকক নীতি শিক্ষা দিয়ে আৰু ভাল পথৰ সন্ধান দিয়ে। তেতিয়াৰ পৰাই ভৈয়ামৰ বড়ো সকলে 'জাৰা ফাগ্লা' নৃত্যৰ উৎপত্তি হয় বুলি বিশ্বাস কৰে।[৫] গতিকে খেৰাই পূজাৰ লগত 'জাৰা ফাগ্লা' নৃত্যৰো যে সম্পৰ্ক আছে তাক নুই কৰিব নোৱাৰি।

২.২ খেৰাই পূজাত দৌদিনীৰ ভূমিকা ঃ

খেৰাই পূজাত দৌদিনীৰ ভূমিকা অপৰিসীম তথা অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ। দৌদিনীয়ে খেৰাই পূজাত জপিয়াই জপিয়াই নৃত্য কৰে। বড়ো সমাজত লোকবিশ্বাস অনুসৰি দৌদিনীৰ গাত দেৱ-দেৱীয়ে লম্ভে আৰু সেই সময়ত বিভিন্ন ভাৱ-ভঙ্গী, নৃত্য প্ৰদৰ্শনৰে এক অলৌকিক পৰিবেশ ৰচনা কৰে। দৌদিনীয়ে হাতত ঢাল-তৰোৱাল লৈ বিভিন্ন নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰি বাথৌবীৰায়ক সন্তুষ্ট কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে। লোকবিশ্বাস অনুসৰি, লক্ষ্মী আই লম্ভা দৌদিনীৰ মুখেৰে বিভিন্ন বচন ওলায় আৰু পূজাৰীৰো বিভিন্ন প্ৰশ্নৰ উত্তৰ দি যায়। আগন্তুক বছৰত ধান বা আন শস্য নদন-বদন হ'বনে নাই, বতৰ-বাতৰি কেনে যাব তাৰ আগতীয়া খবৰ দৌদিনীৰ মুখেৰে ওলায়। লক্ষ্মী আই সন্তুষ্ট হোৱা বুলি জানিলে ৰাইজ আনন্দিত হয় আৰু লগে লগে দৌদিনীৰ লগত নৃত্য কৰি আনন্দৰ বহিঃ প্ৰকাশ ঘটায়। নৃত্য কৰি কৰি দৌদিনী বাথৌ বেদীৰ সন্মুখত থকা দুডাল বাঁহত ধৰি অচেতন হৈ পৰি ৰয়। পূজাত উপস্থিত থকা ৰাইজে বাথৌ মহাৰাজাৰ নাম লৈ জয়ধ্বনি দিয়ে আৰু দেউৰীয়ে দৌদিনীৰ মূৰত শান্তি পানী ছটিয়াবলৈ ধৰে। তেনে কৰিলেহে দৌদিনী আগৰ অৱস্থালৈ অৰ্থাৎ স্বাভাবিক অৱস্থালৈ ঘূৰি আহে। [৬]

দৌদিনীৰ মুখেৰে প্ৰকাশ পোৱা নীতিবচন বা নিজৰ জাতিক উদ্দেশ্যি কৰা সাৱধানবাণী তলত উল্লেখ কৰা হ'ল-

"ছাইমা গাৰি জানানৌই দাজা, অমা গাৰি জানানৌই দাজা ফিছাফৌৰ। ছাইমা গাৰি জানানৌই জাল্লা, অমা-গাৰি জানানৌই জাল্লা ছাইমা হেঙালি লাগায় গৌনআং।" অৰ্থাৎ 'কুকুৰৰ দৰে হৈ নাখাবা, গাহৰিৰ দৰে হৈ নাখাবা। কুকুৰৰ দৰে পৰৰ মুখাপেক্ষী হৈ খালে, গাহৰিৰ দৰে অনাচাৰ-ব্যভিচাৰ হৈ খালে বাঘ লগাই দি ধ্বংস কৰি দিম।" [৭]

দৌদিনীৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে গবেষক পণ্ডিত ড° কামেশ্বৰ ব্ৰহ্মদেৰে উল্লেখ কৰা মন্তব্যও গুৰুত্বপূৰ্ণ। তেওঁ লিখিছে-"The Doudini is the key of dancer during the kherai puja. The doudini Performs most of the essential rites with the help of oja and a githal....while doudini dances she imitates the nature of Gods and Goddesses. She demonstrates as many as eighteen kinds of different dances."[৮] দৌদিনীয়ে কৰা বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ নৃত্য, ভাৱ-ভংগী আচলতে খেৰাই পূজাৰ লগত অঙ্গাঙ্গীভাবে জড়িত। ইয়াৰ পৰাই কালক্ৰমত দেওধনী নৃত্য প্ৰচলিত হোৱা বুলি বহুতে ক'ব খোজে। অসমৰ প্ৰায়বোৰ জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজতেই দেওধনী নৃত্য প্ৰচলিত হৈ অহা দেখা যায়। বিশেষকৈ অবিভক্ত কামৰূপ, দৰং, নলবাৰী তথা গোৱালপাৰা জিলাৰ মাৰৈ পূজা বা মনসা পূজাত দেওধনী নৃত্যৰ প্ৰচলন দেখা যায়। পাতিৰাভা, বৰো, হাজং আদি জনগোষ্ঠীৰ মাজতো দেওধনী নৃত্য বিশেষ ভাবে সমাদৃত আৰু প্ৰচলিত। গৱেষক হেমন্ত কুমাৰ শৰ্মাই তেওঁৰ গৱেষণাত দেওধনী নৃত্যৰ ওজাপালিৰ লগতো সম্পৰ্ক থকা বুলি উল্লেখ কৰিছে।

এনেদৰে নৃত্য-গীত-বাদ্যৰ লগত সম্পৰ্ক থকা বাবে বহুতে খেৰাই পূজাক আনন্দোৎসৱ বুলিও ক'ব খোজে।

Rev. S. Endle ৰ মন্তব্য এইখিনিতে দাঙি ধৰা হৈছে- "Among the Darrang kacharis the festival lasts for seven days during which little or no work is done the whole period being given up to marry making dances, festival.[৯]

২.৩ খেৰাই পূজাৰ নীতি-নিয়ম তথা কর্ম-পদ্ধতি ঃ

খেৰাই পূজাৰ বাবে প্রয়োজনীয় বেদী তৈয়াৰ কৰোতে কিছু পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, নিয়ম মানি চলা হয়। কোৱা বাহুল্য যে এই নীতি-নিয়মো বাথৌ ধর্মীয় বিশ্বাসৰ লগত জড়িত। খেৰাইৰ বেদী তৈয়াৰ কৰিবলৈ যিখিনি মাটি বা ঠাই নির্বাচন কৰি লোৱা হয়, সেই ঠাই টুকুৰা পৰিস্কাৰ কৰি শান্তি পানী ছটিয়াই পবিত্র কৰি ল'ব লাগে। পাহাৰ বা কোনো ওখ ঠাইৰ পৰা মাটি আনিহে বেদীৰ ঢাপটো নির্মাণ কৰি ল'ব লাগে। এই ঢাপটো প্রচলিত লোকবিশ্বাস অনুসৰি সাধাৰণতে ডেৰহাতমান বহল আৰু আধাহাতমান ওখ কৰা হয়। ঢাপটোৰ বাওফালে আঢ়ৈহাতমান দীঘল আৰু আধাহাতমান বহল আৰু চাৰি আঙুল মান ওখকৈ আলি বন্ধোৱা হয়। ঢাপটোৰ চাৰিওফালে ন-যোৰ বা পাঁচযোৰ কামিৰে গোলাকাৰকৈ বৈ দিয়া হয়। সন্মুখৰ পিনে এহাতমান ওখ ৰাখি তিনিযোৰ কামি মহাৰী ক্রচ (X) চিনৰ দৰে বৈ দিয়া হয়। তাক বৰো সকলে 'দাওখু বিঘা' বুলি কয়।[১০]

বাথৌ বেদীৰ ঢাপ কলহৰ পানীৰে মচি দিয়া হয়। সোণৰ আঙঠি, ন-ডাল দুবৰি, এটা তুলসীৰ ডাল এঘটি ভৰা পানীত সোমাই দি যি পানী তৈয়াৰ কৰে তাক শান্তি পানী বুলি কোৱা হয়। সেই শান্তি পানীৰে ভেঁটিটো পৰিস্কাৰ কৈ মচা হয় আৰু তাৰ পিছত সিজু গছৰ ডাল, তুলসী পুলি আনি বেদীৰ সোঁমাজত ৰুই দিয়া হয়। তাত গোলাকাৰ শিল এটা আৰু মুগীঁৰ কণিও থৈ দিয়া নিয়ম আছে। ইয়াৰ দ্বাৰা বড়োসকলে সৃষ্টিতত্ত্বক নির্দেশ কৰা হয় বুলি বিশ্বাস কৰে। বাথৌ বেদীৰ সন্মুখত দৌদিনীয়ে উত্তৰে মুখ কৰি গমাৰি কাঠৰ পীৰাত বহে। ইতিমধ্যে পূজাৰ বাবে যোগাৰ কৰা আটাইবোৰ নৈবেদ্য, বলি দিবলৈ অনা জীৱ-জন্তু, পশু-পক্ষী ইত্যাদি পূজাৰ বেদীৰ সন্মুখত ৰখা হয়। তাৰ পিছত ওজাই আঠু লৈ মন্ত্রোচ্চাৰণ কৰে। ওজা বা দেউৰীয়ে দৌদিনীৰ ঠিক বাওফালে অলপ আঁতৰত স্থান গ্রহণ কৰি মন্ত্র সমূহ মাতি গৈ থাকে। মন্ত্র পাঠ শেষ হোৱাৰ লগে লগে দৌদিনীৰ গাত কঁপনি উঠে আৰু তেতিয়াই ৰাইজে দৌদিনীৰ গাত লক্ষ্মী আয়ে লম্ভা বুলি বিশ্বাস কৰে। তাৰ পিছত দৌদিনীয়ে ভাল-বেয়া, খেতি-বাতি নদন-বদন হ'ব নে নাই (ইতিমধ্যে আগত উল্লেখ কৰাৰ দৰে) ৰাইজৰ আগত বর্ণনা কৰে। দৌদিনীয়ে সকলো ভাল হ'ব বা আটাইৰে মঙ্গল হ'ব বুলি ক'লে ৰাইজ আনন্দিত হয় আৰু দৌদিনীৰ লগত নৃত্যত সহযোগ কৰে।

২.৪ খেৰাই পূজাত দেৱ-দেৱীৰ স্থান ঃ

খেৰাই পূজাত বাথৌ দেৱতাৰ লগতে অন্যান্য দেৱ-দেৱীকো পূজা কৰা হয়। খৌৰিয়া বুৰা আৰু খৌৰিয়া বুৰি অর্থাৎ বাথৌ মহাৰাজা আৰু আই কামাখ্যা, আয়লেং, আগ্রাং, খৌইলা, কাজি, আল্লা খুংগুৰ, ৰাজখান্দ্রা, ছংৰাজা-ছং ৰাণী আদিক প্রচলিত ৰীতি-নীতিৰে পূজা দিয়া হয়। প্রয়োজন অনুসৰি পঠা ছাগলী, গাহৰি, কুকুৰা চৰাই আদি বলি দি আৰু একলহ মদ দিও পূজা কৰা হয়। ইয়াৰ বাহিৰেও বড়োসকলৰ আদি দেৱতা মৌন সিং সিং বুঢ়া আৰু মৌন সিং সিং বুঢ়ী, ৰণচণ্ডী দেৱী, আলায় খুংগ্রী, লাওখাৰ গোসায়, নবাব বাদছাহ আদি 'হাৰচা' অর্থাৎ বেলেগ দেৱ-দেৱীকো পূজা আগবঢ়োৱা হয়। খেৰাই পূজাৰ শেষত আই লক্ষ্মীক বৰঘৰৰ 'ইসিং'ৰ মাইনাও থানত স্থাপন কৰা হয়।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

খেৰাই পূজা বৰো সকলৰ সর্ববৃহৎ ধর্মীয় উৎসৱ। ইয়াক বৰো সকলৰ সংস্কৃতিৰ মেৰুদণ্ড বুলি ক'লেও অত্যুক্তি কৰা নহয়। বৰো সকলে পৰিয়াল বা আত্মীয়ক অপায়-অমংগলৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ আৰু সমাজৰ জীৱনৰো সকলো স্তৰৰ লোকৰ মঙ্গল কামনা কৰি খেৰাই পূজা অনুষ্ঠিত কৰে। সেইফালৰ পৰা খেৰাই পূজাৰ সার্বজনীনতা প্রকাশ পায়।

যুদ্ধ-বিগ্রহ কৰিবলৈ যোৱাৰ আগতে ৰজাৰ জয় আৰু প্রজাৰ মঙ্গল কামনা কৰিও প্রাচীন কালৰ পৰাই বৰোসকলে অতি শ্রদ্ধা, ভক্তি আৰু নিষ্ঠাৰে এই উৎসৱ পালন কৰি আহিছে। আধুনিক কালত খেৰাই উৎসৱত কিছু নতুন নতুন বস্তু সংযোজিত হৈছে যদিও বৰোসকলে এই উৎসৱতেই বিচাৰি পায় জাতীয় জীৱনৰ সুৰভি। খেৰাই পূজাৰ পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, প্রচলিত লোকাচাৰ, কর্মাদিৰ জৰিয়তেই বৰোসকলৰ জাতীয় জীৱনৰ গূঢ়ার্থ অনুধাৱন কৰিব পাৰি। ❑

প্রসংগটোকাঃ

১) নার্জী ভবেন ঃ বড়ো কছাৰী সমাজ আৰু সংস্কৃতি, পৃষ্ঠা ২০১

চ) সংবাদদাতা ঃ স্বর্গীয় চক্রমণি নার্জাৰী, বাগান শালী, কোকৰাঝাৰ (সাক্ষাৎ গ্রহণৰ তিনিদিনৰ পিছত মৃত্যু হয়।)

৩) বসুমতাৰী, ধুপাৰাম ঃ খেৰাই দৌদিনী নৃত্য, পৃঃ ৪১

৪) শর্মা, নবীন চন্দ্র ঃ অসমৰ লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস, পৃঃ ৩৫০

৫) নার্জী, ভবেন ঃ উল্লেখিত গ্রন্থ, পৃঃ ১৮০-১৮১

৬) উল্লেখিত গ্রন্থ পৃ ঃ ১৯০-১৯১

৭) উল্লেখিত গ্রন্থ পৃ ঃ ১৮২-১৯৮

৮) Brahma, K : Aspects of Social customs of Bodos, 1995 PP-67-68

৯) S. Endle : The Kacharis, P-64

১০) বাগলাৰী, মালবিকা ঃ বৰো সমাজ আৰু সংস্কৃতি, 2016 P-59

গ্রন্থ পঞ্জীঃ

১) গগৈ, লীলা ঃ অসমৰ সংস্কৃতি, বনলতা প্রকাশন, গুৱাহাটী ১৯৯৪।

২) চৌধুৰী, প্রসেনজিৎ ঃ সমাজ- সংস্কৃতিৰ ইতিহাস, অসম প্রকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ২০০৭।

৩) দাস, অংশুমান ঃ অসমৰ উৎসৱ-পার্ৱন বুটলি, জ্ঞানবিদ্যা প্রকাশ, ২০০৩।

৮) নার্জী, ভবেন ঃ বড়ো কছাৰীৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতি, বীণা লাইব্রেৰী, গুৱাহাটী ১৯৬৬।

৫) নার্জী, ভবেন ঃ বড়ো কছাৰীৰ জন সাহিত্য, লয়ার্ছ বুকষ্টল, গুৱাহাটী, ১৯৫৭।

৬) পাটৰ পদ্ম (সম্পাদনা) ঃ জনজাতি, সমাজ-সংস্কৃতি, ৰিংচাং পাব্লিকেচন, ২০০৮।

৭) বসুমতাৰী, ধুপাৰাম ঃ বড়ো কছাৰী সংস্কৃতিৰ কিঞ্চিত আভাস, নলবাৰী ১৯৫৫।

৮) Brahma, Kameswar : Aspects of social custom of Bodos, 1995

৯) Bhardwaj, B & Das, Umesh : The Bodos : The frontier Aboriginals of Assam, N.L Publication, 2014

প্রবন্ধ

ভাৰতীয় ধ্ৰুপদী ভাষা ঃ এক চমু বিশ্লেষণ

ফেঞ্চী চুতীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ, দুধনৈ মহাবিদ্যালয়
গৱেষক, বিশ্বভাৰতী,
শান্তিনিকেতন
জিলা ঃ গোৱালপাৰা, অসম
পিন ঃ ৭৮৩২১২৪
ম'বাইল ঃ ৬০০০৯৫৯৪৬৩
আবাস ঃ এক্‌সিচ বেংক বিল্ডিং, দুধনৈ
ই-মেল ঃ chutiafancy1@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

ভাৰত চৰকাৰৰ ধ্ৰুপদী নীতি অনুসৰি বৰ্তমানলৈকে তামিল, সংস্কৃত, তেলেগু, মালায়ালম, কান্নাড়া আৰু উড়িআ ভাষাই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰিছে। প্ৰাচীনত্বই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মূল উপাদান। আমাৰ এই আলোচনাত ভাৰত চৰকাৰৰ দ্বাৰা প্ৰদত্ত ধ্ৰুপদী নীতি আৰু বৰ্তমানলৈকে স্বীকৃতি প্ৰাপ্ত ধ্ৰুপদী ভাষাসমূহৰ বিষয়ে এক চমু আলোচনা আগবঢ়াবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ ধ্ৰুপদী, প্ৰাচীনত্ব, স্বীকৃতি, ভাষা।

অৱতৰণিকা ঃ

সাধাৰণ অৰ্থত ধ্ৰুপদী ভাষা বুলিলে সেই সমূহ ভাষাকেই বুজা যায় যি ভাষা অত্যন্ত প্ৰাচীন। ভাষাবিদ 'George L. Hart'এ ধ্ৰুপদী ভাষা সম্পৰ্কে কৈছে যে, "A Classical Language should be ancient, it should be an independent tradition that arose mostly on its own not as an offshoot of another tradition and it must have a large and extremely rich body of ancient literature."[১] অৰ্থাৎ ধ্ৰুপদী ভাষা বুলিলে সেই ভাষাকে বুজায় যি ভাষাৰ অত্যন্ত প্ৰাচীন ভাষিক সমল, সুসমৃদ্ধ প্ৰাচীন সাহিত্য আছে। যি ভাষাৰ সাহিত্যিক পৰম্পৰা মৌলিক হোৱাৰ উপৰিও এক বৃহৎ আৰু অত্যন্ত সমৃদ্ধ সাহিত্যৰে ভৰপূৰ, লগতে প্ৰজন্মৰ পাছত প্ৰজন্মৰ বক্তাসকলৰদ্বাৰা মূল্যৱানৰূপে গণ্য হৈ আহিছে।

বিশ্বত প্ৰায় ছয়হাজাৰ পাঁচশ (৬৫০০) ভাষা সাম্প্ৰতিক সময়ত প্ৰচলিত হৈ আছে। এই ভাষাসমূহৰ কোনো কোনো ভাষাই প্ৰাচীনত্ব আৰু সুপ্ৰাচীন সাহিত্যিক পৰম্পৰাৰ বাবে বিশ্বৰ দৰবাৰত নিজকে ধ্ৰুপদী ভাষাৰূপে প্ৰতিষ্ঠিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। বিশ্বত স্বতঃস্ফূৰ্ত ৰূপত ধ্ৰুপদী ভাষাৰূপে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰা ভাষাকেইটা হ'ল - সংস্কৃত, গ্ৰীক, লেটিন, হিব্ৰু, আৰবী, ফাৰ্ছী আৰু প্ৰাচীন চীনা। ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপটত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা অৰ্থাৎ স্বীকৃতি লাভৰ পৰম্পৰা

কিছু পৃথক। ভাৰতীয় পৰম্পৰাত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতিৰ অন্তৰালত এক ৰাজনৈতিক শক্তিয়ে ক্ৰিয়া কৰি আহিছে। ভাৰত চৰকাৰে নির্দ্ধাৰণ কৰি দিয়া নীতি অনুসৰি বর্তমানলৈকে দ্রাবিড়মূলীয় চাৰিটা ভাষা (তামিল, তেলেগু, কান্নাড়া, মালায়ালম) আৰু আর্যমূলীয় (সংস্কৃত, ওড়িআ) ভাষাই এই পর্যন্ত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰিছে।

মূল আলোচ্য বিষয় ঃ

প্রাচীনত্বই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ প্রথম মৌলিক উপাদান। প্রাচীনত্ব বুলি কোৱাৰ লগে লগে আমাৰ প্রত্যেকৰে মনত এটা প্রশ্ন উত্থাপন হ'ব পাৰে যে ভাষা এটাক ধ্ৰুপদী ভাষাৰূপে স্বীকৃতি দিবলৈ হ'লে ভাষাটো কিমান প্রাচীন হ'ব লাগিব। বিশ্বৰ ধ্ৰুপদী ভাষাসমূহলৈ মন কৰিলে ক্লাছিকেল শব্দৰ অর্থত নিহিত হৈ থকা লক্ষণসমূহ যেনে উৎকৃষ্টতা, উচ্চ গুণসম্পন্ন সাহিত্যিক পৰম্পৰা, সুপ্রাচীন ভাষিক ইতিহাস আদিয়ে ভাষা এটাক ধ্ৰুপদী ভাষা হিচাপে চিহ্নিত কৰিবলৈ যথেষ্ট যেন লাগে যদিও ভাৰতীয় প্রেক্ষাপটত আনুষ্ঠানিকভাৱে সেয়াই যথেষ্ট নহয়। ভাৰতবর্ষৰ কোনো এটা ভাষাক ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি প্রদানৰ দায়িত্বত থকা অনুষ্ঠানটো হ'ল কেন্দ্রীয় চৰকাৰৰ সংস্কৃতি মন্ত্রণালয়। কেন্দ্রীয় চৰকাৰৰ ধ্ৰুপদী ভাষা নীতিৰ আধাৰত সংস্কৃতি মন্ত্রণালয়ে সেয়া কার্যকৰী কৰে। ২০০৪ চনৰ ৫ ফেব্রুৱাৰীত কেন্দ্রীয় সংস্কৃতি মন্ত্রী মহাৰাণী চন্দ্রেশ কুমাৰী কাৰ্টোচে ৰাজ্যসভাত ধ্ৰুপদী ভাষা সম্পর্কীয় আধাৰ নীতি ঘোষণা কৰিছিল।

কোনো এটা দেশীয় ভাষাই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভৰ বাবে কেন্দ্রীয় চৰকাৰে নির্দ্ধাৰণ কৰি দিয়া চর্তাৱলী বা আধাৰ নীতি কেইটা হ'ল -

১) ১৫০০ ৰ পৰা ২০০০ বছৰীয়া বা ততোধিক প্রাচীন প্রামাণ্য ইতিহাস, উচ্চ গুণযুক্ত প্রাচীনতম পাঠ থাকিব লাগিব।

২) বহু প্রজন্ম ধৰি সংশ্লিষ্ট ভাষা-ভাষীসকলে ব্যৱহাৰ কৰা কিছুমান প্রাচীন সাহিত্য বা পাঠ, যিসমূহ মূল্যৱান ঐতিহ্য হিচাপে পৰিগণিত হ'ব লাগিব।

৩) ভাষাটোৰ সাহিত্য পৰম্পৰা মৌলিক হ'ব লাগিব আৰু অন্য ভাষিক গোষ্ঠীৰ পৰা ধাৰ কৰা হ'ব নালাগিব।

৪) ভাষাটোৰ আধুনিক ৰূপৰ ভাষা-সাহিত্যৰ পৰা প্রাচীন ৰূপৰ ভাষা আৰু সাহিত্য স্পষ্ট হ'ব লাগিব, ইয়াৰ শেহতীয়া ৰূপ বা ইয়াৰ শাখাবোৰৰ ধ্ৰুপদী ৰূপৰ সৈতে ধাৰাবাহিকতা ক্ষুন্ন হ'ব লাগিব।

এই আধাৰ নীতি অনুসৰি ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰা প্রথমটো ভাৰতীয় ভাষা হ'ল তামিল। জাতীয়গত ভাবে সচেতন এদল তামিল পণ্ডিত ভাষাবিদৰ শতাধিক বছৰীয়া নিৰন্তৰ দাবী আৰু তদানীন্তন ৰাষ্ট্রপতি এ. পি. জে. আব্দুল কালামৰ বিশেষ আগ্রহত কেন্দ্রীয় চৰকাৰৰ সেই নীতি বা চর্তাৱলীৰ আধাৰতে ২০০৪ চনৰ ১২ ছেপ্তেম্বৰত তামিল ভাষাক প্রথমবাৰৰ বাবে ভাৰতৰ ধ্ৰুপদী ভাষাৰ আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি প্রদান কৰা হয়। তামিল ভাষাই কেন্দ্রীয় চৰকাৰৰপৰা ধ্ৰুপদী ভাষা হিচাপে আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি লাভ কৰাৰ লগে লগে সমগ্র দেশৰে বৌদ্ধিক মহল এই ক্ষেত্রত সচেতন হৈ পৰিল। সুপ্রাচীন ইতিহাস বহন কৰা প্রায়বোৰ ভাষাই কেন্দ্রীয় চৰকাৰৰ প্রদত্ত এই স্বীকৃতি বিচাৰি আবেদন কৰিবলৈ ধৰিলে। আৰু সেই মর্মে ২০০৫ চনত 'সংস্কৃত', ২০০৮ চনত 'তেলেগু' আৰু 'কান্নাড়া', ২০১৩ চনত 'মালায়ালম' আৰু ২০১৪ চনত আমাৰ একে মূলৰ প্রতিবেশী ভাষা 'ওড়িআ' ভাষাই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি লাভ কৰিলে। এই প্রক্রিয়া বর্তমানেও অব্যাহত ৰাখি ২০২০ চনৰ ২৭ ফেব্রুৱাৰীত 'মাৰাঠী' ভাষাৰ ধ্ৰুপদী স্বীকৃতি দাবী কৰি মহাৰাষ্ট্র বিধান সভাই এটা সর্বসন্মত প্রস্তাৱ গ্রহণ কৰি কেন্দ্রীয় চৰকাৰলৈ প্রেৰণ কৰিছে।

ভাৰতীয় ধ্ৰুপদী ভাষাসমূহৰ চমু আভাস ঃ

ক) তামিল ভাষা ঃ

দুই সহস্রাধিক বছৰৰ বিভিন্ন ঐতিহাসিক লিখন সমল আৰু কেইবাহাজাৰ বছৰজোৰা অন্যান্য জীৱন্ত পৰম্পৰা-কিংবদন্তিৰে তামিল নিঃসন্দেহে পৃথিৱীৰ অন্যতম প্রাচীন জীৱন্ত ভাষা। ভাৰতৰ দক্ষিণ অঞ্চলৰ ভাষাসমূহৰ

ভিতৰত সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ বুলি অভিহিত কৰিব পৰা তামিল ভাষাতেই দ্ৰাবিড়ী ভাষাৰ প্ৰাচীনতম নিদৰ্শন পোৱা যায়। তামিল ভাষা বৰ্তমান ভাৰতবৰ্ষ, শ্ৰীলংকা, মালেয়েছিয়া, ছিংগাপুৰত বসবাস কৰা তামিললোকসকলে ব্যৱহাৰ কৰে।

তামিল ভাষাক ধ্ৰুপদী স্বীকৃতি দিবৰ বাবে কৰি অহা যুঁজখনৰ অন্যতম যুঁজাৰো 'কেলিফৰ্নিয়া বিশ্ববিদ্যালয়'ৰ তামিল ষ্টাডিজ আসনৰ অধ্যাপক George L. Hart ৰ মতে তামিলক ধ্ৰুপদী ভাষা হিচাপে অস্বীকাৰ কৰাটো এটা জীৱন্ত সংস্কৃতিক অস্বীকাৰ কৰা। "To deny that Tamil is a Classical Language is to deny a vital and central part of the greatness and richness of Indian culture."[২]

তামিল সাহিত্যৰ পৌৰাণিক সাহিত্যকৃতি হ'ল 'সংঘম সাহিত্য' (খ্ৰী.পূ. ৪০০-খ্ৰী. ৩০০)। মানৱজীৱনৰ কেতবোৰ উপাদান যেনে- প্ৰেম, যুদ্ধ, সমাজৰ প্ৰতি মূল্যবোধ আদি বৈশিষ্ট্যযুক্ত বহু কবিতাৰ সংগ্ৰহ এই সংঘম সাহিত্য। সংঘম সাহিত্যৰ ভিতৰত 'এট্টুতটোকেই' উল্লেখনীয়। 'তিৰুক্কুৰল' এই সময়ৰ শ্ৰেষ্ঠ সাহিত্য নিদৰ্শন। খ্ৰী. ওঠৰ-ঊনৈশ শতিকা দুটা তামিল সাহিত্যৰ নৱজাগৰণৰ সময়। এই সময়তে মহাকবি 'সুব্ৰমণিময় ভাৰতি'য়ে তেওঁৰ ৰচনাৰ মাধ্যমেৰে নতুন যুগৰ বাৰ্তা কঢ়িয়াই আনিছিল। 'কন্নন পাট্টু, কুয়িল পাট্টু, পাপা পাট্টু, পাঞ্চালী শপথম, বিদুদলই পাদল কল' আদি ভাৰতিৰ উল্লেখযোগ্য কবিতা। খ্ৰী.পূ. ৪০০ শতিকাতে পাতনি মেলা তামিল সাহিত্যৰ সুপ্ৰাচীন ইতিহাসে বৰ্তমানলৈ প্ৰায় ২৫০০ বছৰ কাল অতিক্ৰম কৰি এক সুৱৰ্ণ ইতিহাস গঢ়ি তুলিছে।

খ) সংস্কৃত ভাষা ঃ

সংস্কৃত ভাষা ইণ্ডো-ইউৰোপীয় ভাষা পৰিয়ালৰ ইণ্ডো-ইৰাণীয় শাখাৰ ভাৰতীয় আৰ্য উপশাখাৰ অন্তৰ্গত ভাষা। সংস্কৃত ভাষাৰ সুপ্ৰাচীন ইতিহাসে স্বতঃস্ফূৰ্ত ভাবে ভাষাটোক বিশ্বৰ ধ্ৰুপদী ভাষাৰ তালিকাত সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। ভাৰত চৰকাৰৰ সংস্কৃতি মন্ত্ৰণালয়ে নিৰ্দ্ধাৰণ কৰি দিয়া নীতি অনুযায়ী ২০০৫ চনত সংস্কৃত ভাষাক ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদান কৰা হয়। কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদানৰ বৰস্থাপনা প্ৰযোজ্য নোহোৱা হ'লেও সংস্কৃত ভাষা পূৰ্বৰে পৰা বিশ্বব্যাপী স্বীকৃত ধ্ৰুপদী ভাষা।

ঋকবেদ হ'ল সংস্কৃত ভাষাৰ প্ৰাচীন সাহিত্য। সংস্কৃত ভাষাৰ ইতিহাসক প্ৰধানকৈ দুটা ভাগত ভগাব পাৰি। বৈদিক যুগ (খ্ৰী.পূ. ১৫০০-২০০) আৰু ধ্ৰুপদী যুগ (খ্ৰী.পূ. ৫০০-খ্ৰী.১০০০)।

ঋকবেদৰ মাজত যি ভাষা পোৱা যায় সি আদি আৰ্যসকলৰ বিশেষকৈ উত্তৰ পশ্চিম অঞ্চলত বা সপ্তসিন্ধু অঞ্চলত পোন প্ৰথমে বসতি স্থাপন কৰা আৰ্যসকলৰ ভাষাৰ সাহিত্যিক ৰূপ। এই সাহিত্যিক ভাষাৰ উপৰিও আৰ্যসকলৰ মাজত দৈনন্দিন জীৱনত ব্যৱহৃত এক লৌকিক বা কথ্য ৰূপ প্ৰচলিত আছিল। পাণিনি প্ৰমুখ বৈয়াকৰণসকলে ব্যাকৰণৰ নিয়ম শৃঙ্খলাৰে বৈদিক কথ্য ভাষাক সংস্কাৰ সাধন কৰিছিল। এই সংস্কাৰীভূত শিষ্ট ভাষাটোৱেই হৈছে সংস্কৃত ভাষা। পাণিনিৰ 'অষ্টাধ্যায়ী ব্যাকৰণ' সংস্কৃত ভাষাৰ শ্ৰেষ্ঠ নিদৰ্শন। সংস্কৃত ভাষাৰ ধ্ৰুপদী যুগ ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰত ৰচনাৰ লগে লগে আৰম্ভ হয়। মহাভাৰত এক লাখ শ্লোকেৰে গঠিত। মহাভাৰতৰ দৰে প্ৰভাৱী আৰু ইমান বিশাল সাহিত্য বিশ্বৰ আন কোনো ভাষাত নাই। "Mahabharata consist of one lakh verses. It is eight times as long as Homer's Iliad and Odyssey put together. In the world of literature there doesnot seem to be any work of comparable dimensions in any languages."[৩]

ঋকবেদৰ সংকলনৰ সময় খ্ৰী.পূ. ত্ৰয়োদশ বা দ্বাদশ শতাব্দী বুলি অনুমান কৰা হৈছে। এই ঋকবেদ আৰু পৰৱৰ্তী কালত ৰচিত হোৱা সাম, যজুঃ, অথৰ্ববেদ, ব্ৰাহ্মণ(যজ্ঞানুষ্ঠানৰ গদ্যাত্মক বিধি বিধান, ব্যাখ্যা আৰু কিছুমান আখ্যান উপাখ্যান), উপনিষদ(গদ্য আৰু পদ্যত ৰচিত আধ্যাত্মিক আৰু দাৰ্শনিক তত্ত্ব), আৰণ্যক(দাৰ্শনিক

তত্ব আৰু কিছু আখ্যান উপাখ্যান) আৰু পৰৱৰ্তী সময়ৰ বৈদিক কথ্য ভাষাক সংস্কাৰ সাধন কৰি সৃষ্টি হোৱা মহাভাৰত, ৰামায়ণ, পুৰাণ, নাট্য সাহিত্য, চম্পু সাহিত্য, গীতিকাব্য আদিৰ গভীৰতম বিষয় বস্তু আৰু উচ্চমান বিশিষ্ট শৈলী, ৰচনা ৰীতিয়ে এই ভাষা আৰু সাহিত্যক গুৰুগম্ভীৰ সদাবন্দিত আৰু মর্যাদা সম্পন্ন ভাষাৰূপে বিশ্বৰ বুকুত প্রতিষ্ঠা কৰাত সহায় কৰিছে।

গ) তেলেগু ভাষা ঃ

দ্রাবিড়মূলীয় ভাষাৰ অন্ধ্রশাখাৰ অন্তর্গত তেলেগু ভাষা। অন্ধ্র শাখাৰ ভাষাসমূহৰ ভিতৰত তেলেগু সর্বশ্রেষ্ঠ ভাষা। সমগ্র দ্রাবিড় গোষ্ঠীৰ ভাষাৰ ভিতৰত তেলেগু ভাষা-ভাষীৰ সংখ্যাই সর্বাধিক। তেলেগু ভাষাৰ প্রধান কেন্দ্রভূমি অন্ধ্রপ্রদেশ যদিও বর্তমান ভাৰতৰ লগতে আন্তঃৰাষ্ট্রীয় পর্যায়ৰ বিভিন্ন দেশ যেনে, ফিজি, মালায়েছিয়া, মৰিচাছ, ছিংগাপুৰ, অষ্ট্রেলিয়া আদিত তেলেগু ভাষাৰ প্রচলন হৈ আছে।

২০০৮ চনত তেলেগু ভাষাই ভাৰত চৰকাৰৰ প্রদত্ত ধ্রুপদী ভাষাৰ মর্যাদা লাভ কৰে। তেলেগু ভাষাৰ প্রাচীনতম নিদর্শনৰ দ্বাৰাই ধ্রুপদী ভাষাৰ মর্যাদা লাভ কৰিলেও উল্লেখনীয় যে— আৰম্ভণিৰ স্তৰত তেলেগু আৰু কান্নাড়া লিপি একেই আছিল। খ্রীষ্টীয় ত্রয়োদশ শতাব্দীৰপৰা তেলেগু আৰু কন্নড় লিপিয়ে স্বতন্ত্র ৰূপে বিকাশ লাভ কৰে।

"তেলেগু লিপিৰ প্রথম স্তৰৰ নিদর্শনসমূহ ৰজা মংগী যুৱৰাজৰ অভিলেখ (চন্দ্রলুৰ লিপি), দ্বিতীয় বিষ্ণু বর্ধনৰ তাম্রলিপি (পগনাবৰম লিপি) ৰজা প্রতাপৰুদ্রৰ প্রথম ভূমিদান লিপি (অৰলুৰ লিপি), কাকতিয়া ৰজা গণপতিৰ শিলালেখ (চেবৰুল প্রাপ্ত) প্রভৃতিত সুৰক্ষিত হৈছে।"[৪]

তেলেগু ভাষাৰ শিলালিপিসমূহৰ ভিতৰত কড্ডপা জিলাৰ ইৰিগুড্ডিপাড্ডুত লাভ কৰা চোল বংশৰ ৰজা (Muthuraju)ৰ শিলালেখ খনেই প্রাচীন। এই শিলালেখখনৰ সময় ৫৭৫ শতিকা। আনহাতে পদ্যৰ আকাৰত খোদিত হোৱা প্রথম তেলেগু শিলালেখ খন হ'ল 'আদাকি শিলালেখ'। শিলালেখখনৰ সময় ৮৪৮ শতিকা বুলি নির্দ্ধাৰণ কৰা হৈছে আৰু চালুক্য বংশৰ ৰজা বিজয়াদিত্যৰ অনুগ্রহত খোদিত কৰোৱা হৈছিল।

তেলেগু ভাষাৰ প্রাচীনতম পুথি হ'ল- একাদশ শতিকাৰ (১০২০ শতিকা) আদি ভাগৰ সুপ্রসিদ্ধ কবি নন্নয় ভট্টই কৰা মহাভাৰতৰ আংশিক অনুবাদ। এই গ্রন্থখনক ভগনুশাসন (Vaganu Sasana) ৰূপে জনা যায়। প্রাচীন তেলেগু ভাষাত সংস্কৃতৰ প্রভাৱ প্রচুৰ আছিল যদিও পৰৱৰ্তী সময়ত নিজস্ব বৈশিষ্ট্যৰে তেলেগু ভাষাই সুকীয়া ৰূপ পৰিগ্রহণ কৰিলে। তেলেগু ভাষাৰ সাহিত্যিক সকলে অহোপুৰুষার্থ প্রচেষ্টাৰে তেওঁলোকৰ ভাষা-সাহিত্যক মহিমামণ্ডিত কৰি আজিৰ পর্যায়ত আসীন কৰাইছে।

ঘ) মালায়ালম ভাষা ঃ

দ্রাবিড়মূলীয় মালায়ালম বা মালায়লী ভাষা কেৰেলা ৰাজ্যত প্রধানকৈ প্রচলিত ভাষা। ইয়াৰ উপৰিও লক্ষদ্বীপতো এই ভাষাৰ প্রচলন আছে। প্রাচীন মালায়ালম সাহিত্যৰ ঐতিহ্য প্রাচীন তামিলৰ সৈতে প্রায় একে বুলি কব পাৰি। প্রাচীন কালছোৱাৰ গ্রন্থসমূহ কিছুমান ঐতিহাসিক কাৰণত ৰজাঘৰীয়া আৰু সম্ভ্রান্ত লোকৰ ভাষা চেনতামিল ভাষাত ৰচিত হৈছিল।

মালায়ালম ভাষাৰ ওপৰত সংস্কৃত ভাষাৰ প্রভাৱ যথেষ্ট। একেবাৰে আদিম কালৰে পৰা এই প্রভাৱ বিস্তাৰিত হৈ আহিছে। চেৰৰজাসকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত যিদৰে চেনতামিল ভাষাৰ বিকাশ ঘটিছিল ঠিক তেনেদৰে নাম্বুদিৰিসকলৰ একনিষ্ঠতাৰ ফলত সংস্কৃত ভাষা সমৃদ্ধ হৈ পৰিছিল। মালায়ালম আৰু সংস্কৃত ভাষাৰ সংমিশ্রণৰ ফলত এক সঙ্কৰ ভাষাৰ সৃষ্টি হৈছিল। এই ভাষা প্রথমতে ধর্ম, ক্রিয়াকাণ্ড আৰু বৈজ্ঞানিক তত্বসমূহৰ ব্যাখ্যা দাঙি ধৰিবলৈ আৰু পৰৱৰ্তীসময়ত শিক্ষিত সকলৰ কথনীয় ভাষাৰূপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। সঙ্কৰ ভাষাৰ শব্দাৱলী প্রয়োগ হোৱা 'কুট্টু আৰু কুদিয়ট্টম' নামৰ অভিনয় কলাই দর্শকৰ মাজত জনপ্রিয়তা লাভ কৰাৰ লগে লগে তামিল ভাষাৰ প্রভাৱ কেৰেলাত কমি আহিল।

মালায়ালম ভাষাত গদ্যত ৰচিত প্রথম গ্রন্থখন হ'ল কৌটিল্যৰ 'অর্থশাস্ত্র'ৰ বিস্তৃত অনুবাদমূলক গ্রন্থ 'কৌটিলিয়ম'। এই গ্রন্থখন পণ্ডিতসকলে নৱম আৰু দশম শতিকাৰ মাজত কোনো এটা সময়ত প্রণীত হৈছিল বুলি

অনুমান কৰে। ইয়াৰ গদ্য পুৰণি গদ্য সাহিত্যৰ সুন্দৰ চানেকি; অৰ্থশাস্ত্ৰৰ নিচিনা প্ৰায়োগিক বিদ্যাৰ পুথিএখন অতিশয় স্পষ্টকাৰে প্ৰকাশ কৰাটোৱে মালায়ালম ভাষাৰ প্ৰকাশিকা শক্তি আৰু সাৰবজাৰ পৰিচয় দিয়ে। মালায়ালম ভাষাৰ এই সাহিত্যিক পৰম্পৰা বৰ্তমানে চহকী ৰূপত চলি আছে। এনে সুপ্ৰাচীন বৰ্ণিল সাহিত্যিক ইতিহাসৰ বাবেই মালায়ালম ভাষা চহকী আৰু উৎকৃষ্টময়। সুপ্ৰাচীন ইতিহাস আৰু উৎকৃষ্টতাৰ ফলশ্ৰুতিতেই ২০১৩ চনত মালায়ালম ভাষাই ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা লাভ কৰিলে।

(ঙ) কান্নাড়া ভাষা ঃ

দ্ৰাবিড় শাখাৰ উল্লেখযোগ্য ভাষা সমূহৰ ভিতৰত কান্নড় বা কান্নাড়ী ভাষা অন্যতম। কান্নাড়া দাক্ষিণাত্যৰ কৰ্ণাটকৰ প্ৰধান ভাষা। ইয়াৰ লগতে মহাৰাষ্ট্ৰ, অন্ধ্ৰ প্ৰদেশ, তামিলনাড়ু, তেলেঙ্গেনা, কেৰেলা, গোৱা আদি অঞ্চল প্ৰভৃতিতো এই ভাষা ব্যৱহাৰ হৈ আহিছে। ২০০৮ চনত তেলেগুৰ লগতে কান্নাড়া ভাষাইয়ো ভাৰত চৰকাৰ প্ৰদত্ত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰিছে। কৰ্ণাটকৰ প্ৰাচীনতা আৰু কান্নাড়া ভাষাৰ প্ৰাচীন প্ৰত্নলেখৰ আধাৰত ভাষাটোৱে ধ্ৰুপদী ভাষা ৰূপে স্বীকৃতি লাভ কৰিলে।

কান্নাড়া লিপিৰ মূল ব্ৰাহ্মীলিপি। নাৰায়ন দাসে তেখেতৰ 'বিশ্বলিপিৰ ভূমিকা'ত উল্লেখ কৰিছে যে- "পল্লৱবংশী যুৱৰাজ শিৱস্কন্ধ বৰ্মনৰ দানপত্ৰ, কদম্ববংশী নৃপতি মৃগেশ বৰ্মাৰ দানপত্ৰ, পশ্চিমী চালুক্য বংশী মংগলেশৰ অভিলেখ, পূৰ্বী চালুক্য ৰজা মংগী যুৱৰাজ সৰ্বলিকাশ্ৰয়ৰ দানপত্ৰ, চালুক্য ৰজা দ্বিতীয় কীৰ্তিবৰ্মনৰ দানপত্ৰ, ৰাষ্ট্ৰকূটৰ তৃতীয় গোৱিন্দৰ দানপত্ৰ আৰু দ্বিতীয় তিৰুবেন্দ্ৰম মন্দিৰ গাত্ৰলিপি প্ৰভৃতিৰে কন্নড়লিপিৰ বিকাশৰ ধাৰাটি স্পষ্ট কৰে।"[৫]

বৰ্তমানলৈকে উদ্ধাৰ হোৱা কান্নাড়া ভাষাৰ প্ৰত্নলেখ সমূহৰ ভিতৰত 'হালমিডি প্ৰত্নলেখ' (Halmidi Inscription) প্ৰাচীন। এই লিপিখনৰ সময় খ্ৰী. ৪৫০ শতিকা বুলি নিৰ্দ্ধাৰণ কৰা হৈছে।

কান্নাড়া ভাষাৰ প্ৰাচীনতম পাণ্ডুলিপি ৰাষ্ট্ৰকূট ৰজা নৃপতুঙ্গা অথবা অমোঘবৰ্ষা আৰু শ্ৰীবিজয়ৰ "কবিৰাজমাৰ্গ"। এই গ্ৰন্থখনি খ্ৰী. ৮১৫-৮৭৭ শতিকাত ৰচনা কৰা হৈছিল। সমসাময়িক সময়ছোৱাতে সংস্কৃত আৰু কান্নাড়া ভাষাৰ সংমিশ্ৰণত চম্পু কাব্য নামৰ একশ্ৰেণীৰ সাহিত্য চৰ্চা হৈছিল।

আধুনিক কান্নাড়া সাহিত্যৰ আৰম্ভণি হয় উন্নবিংশ শতিকাৰ প্ৰাৰম্ভিক সময়ছোৱাত। কেম্পু নাৰায়ণৰ (Kempu Narayana) মুদ্ৰামঞ্জুষা (১৮২৩), বি.এম. শ্ৰীকান্তায়ৰ (B.M. Srikantaiah) 'গীতাগলু', মস্তি ভেঙ্কটেশ আয়েঙ্গাৰৰ (Masti Venkatesh iyengar) 'প্ৰেম আৰু বিৰহৰ কবিতা', মাদালিঙ্গানা কানিভৰ (Madalingana Kanive), 'মাদালিঙ্গ ভেলী' (১৯২৪) আৰু 'গোবিন্দা পাই'ৰ (Govinda Pai) 'কবিতাবাতাৰা' (Kavitavatara, ১৯১৬) আদি আধুনিক কান্নড়া সাহিত্যৰ সম্পদ।

(চ) ওড়িআ ভাষা ঃ

ওড়িআ ইণ্ডো-ইউৰোপীয় ভাষাগোষ্ঠীৰ ইণ্ডো ইৰাণীয় শাখাৰ ভাৰতীয় আৰ্য উপশাখাৰ অন্তৰ্গত ভাষা। ওড়িআ ভাষাই ২০১৪ চনত ভাৰত চৰকাৰ প্ৰদত্ত ধ্ৰুপদী ভাষাৰ মৰ্যাদা লাভ কৰে। ভাৰতৰ প্ৰাচীন ভাষাসমূহৰ ভিতৰত ওড়িআ ভাষা অন্যতম। এই সম্পৰ্কে John Beamsয়ে কৈছে ঃ "At a period when Oriya was already a fixed and settled language, Bengali did not exist. The Bengalis spoke a vast variety of corrupt form of Eastern Hindi."[৬]

ওড়িআ ভাষাৰ প্ৰাচীনতম নিদৰ্শন খ্ৰী.পূ. তৃতীয় শতিকাৰ 'জৌগড় শিলালিপি'ত ৰক্ষিত হোৱা বুলি পণ্ডিত সকলে মত পোষণ কৰিছে। পৰৱৰ্তী সময়ৰ 'হাতিগুম্ফা শিলালিপি'(খ্ৰী.পূ. প্ৰথম শতিকা), 'উদয়গিৰি আৰু খণ্ডগিৰি'ৰ 'শিলালিপি' (প্ৰথম শতিকা), 'মহাৰাজা গণভদ্ৰ ভদ্ৰকলি শিলালিপি' (খ্ৰী. তৃতীয় শতিকা) আদিত ওড়িআ ভাষাৰ প্ৰাচীন ৰূপ খোদিত হৈ আছে।

সৰলা দাসক ওড়িআ ভাষাৰ আদি কবি বুলি কোৱা হয়। তেওঁ ওড়িআ ভাষালৈ মহাভাৰত অনুবাদ কৰিছে। সিদ্ধেশ্বৰ দাসৰ 'বিচিত্ৰ ৰামায়ণ', বৎসা দাসৰ 'কলসা

চৌতিষা', গোৰক্ষ নাথৰ 'শিশুবেদ', 'পঞ্চসখা সাহিত্য', 'ৰীতি যুগীয় সাহিত্য', 'ভীমভোইৰ গীত' আদি ওড়িআ ভাষাৰ উল্লেখনীয় সাহিত্য।

ঊনৈশ শতিকাত ওড়িআ ভাষা-সাহিত্যৰ আধুনিক যুগৰ আৰম্ভ হয়। ১৮০৪ চনত পণ্ডিত পুৰুষোত্তম ৰাম আৰু মৃত্যুঞ্জয় বিদ্যালয়ঙ্কাৰে মিছনেৰী সকলৰ লগ হৈ প্রথম ছপাপুথি 'বাইবেল' ছপা কৰি উলিয়ায়। একে বছৰতে পণ্ডিত পুৰুষোত্তম ৰামে 'A Grammer of the Orissa Language' নামৰ ব্যাকৰণ খন লিখি উলিয়ায়। আধুনিক ওড়িআ সাহিত্যৰ এজন লেখত লবলগীয়া সাহিত্যিক হ'ল ফকীৰ মোহন সেনাপতি। তেওঁৰ আত্মজীৱনী চৰিতখন ওড়িআ সাহিত্যৰ প্রথম আত্মজীৱনী। ওড়িআ সাহিত্যৰ প্রথমটো চুটিগল্পই তেওঁৰ হাততে প্রাণ পাই উঠিছিল। 'বোধদায়িনী' পত্রিকাত প্রকাশিত 'লছমনিয়া' নামৰ গল্পটো প্রথম ওড়িআ চুটিগল্প। এইসকলৰ বাহিৰেও ৰাধানাথ ৰয়, গঙ্গাধৰ মেহেৰ, মধূসুধন ৰাও, প্রতিভা ৰায়, মনোৰঞ্জন দাস, কুন্তলা কুমাৰী সাবত, গোদাবৰীস মহাপাত্র আদি সাহিত্যিক সকলেও ওড়িআ সাহিত্যলৈ যথেষ্ট অৱদান আগবঢ়াইছে।

ওপৰত আলোচনা কৰা এই ভাষাকেইটাই স্ব-বৈশিষ্ট্য আৰু সুপ্রাচীন ইতিহাসৰ বাবে ধ্রুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰিলে। নিজস্ব সাহিত্যিক পৰম্পৰা আৰু এই সাহিত্যিক পৰম্পৰাৰ নিৰৱচ্ছিন্ন ধাৰাবাহিকতাই প্রত্যেকটো ভাষাক স্বগৌৰৱেৰে মহীয়ান কৰি ৰাখিছে। ধ্রুপদী ভাষাৰ স্বীকৃতিয়ে এই ভাষাকেইটাক বিশ্বজুৰি প্রাচীন ভাষা ৰূপে প্রতিষ্ঠা কৰাত নিঃসন্দেহ সহায় কৰিছে। ❑

প্রসংগ সূত্র ঃ

১) Heart, George. L : Statement on the Status of tamil as a clasical language (*https://sangamtamilliterature.wordpress.com/dr-george-harts-letter-recommending- tamil-as-classical-language/*)

২) Heart, George. L : প্রাগুক্ত।

৩) Swamy, V.C. Kulandai. Tamil among the classical languages of the world. Chennai : Pavai publications, 2005, P. 46-47. Print.

৪) দাস, নাৰায়ন। বিশ্বলিপিৰ ভূমিকা। গুৱাহাটী ঃ বীণা লাইব্রেৰী, ২০১৪, পৃ. ১০৮। মুদ্রিত।

৫) দাস, নাৰায়ন। প্রাগুক্ত, পৃ-১০৭।

৬) Beams, John. Comparative Grammar of the modern Aryan language of India. England : Cambridge University Press, Reprint. 2012, P.120. Print.

প্রবন্ধ

ভাসৰ কাল্পনিক নাটক ‘অবিমাৰক’ আৰু ‘চাৰুদত্ত’ৰ প্ৰাকৃতভাষী নাৰী চৰিত্ৰ ঃ এক অধ্যয়ন

দীপামণি বৈশ্য

সহকাৰী অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ
বড়োলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়, কোকৰাঝাৰ
ম'বাইল ঃ ৯৮৬৪১৯৭৪৩১

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

ভাৰতীয় আৰ্য ভাষা, মূল ইণ্ডো-ইউৰোপীয় ভাষাৰ অন্তৰ্গত এটি ভাষা। ভাৰতত আৰ্য আগমনৰ সময়ৰ পৰাই ভাৰতত এই ভাষাৰ প্ৰচলন আৰম্ভ হয়। আৰ্য আগমনৰ সময়ৰ লগে লগেই ভাৰতত এক বিশেষ ভাষিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হয়। আৰ্যসকল ভাৰতত স্থিতি লোৱাৰ পাছত ৰচনা কৰা ঋগ্‌বেদ তথা পৰৱৰ্তী বাকী তিনিখন বেদৰ ভাষা বৈদিক ভাষা হিচাপে স্বীকৃত হ'ল। বৈদিক ভাষা সৰলীকৃত হৈ সংস্কৃত হ'ল। পাণিনিকে প্ৰমুখ্য কৰি বৈয়াকৰণসকলে পৰৱৰ্তী বৈদিক শিষ্ট ভাষাকে সংস্কৃত বুলি আখ্যা দিছে। বৈদিক আৰু সংস্কৃত অভিন্ন বুলি ভবা হয় যদিও মৌলিকত্ব আৰু স্তৰভেদে দুয়োটা ভাষাৰ মাজত পাৰ্থক্য আছে। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ৰ ভাৰতীয় আৰ্যভাষাসমূহৰ লগত সংস্কৃত ভাষাৰহে মিল বা সাদৃশ্য আছে। পিছৰ পৰ্যায়ত যুগবিশেৰে সংস্কৃত ভাষা সৰলীকৃত হৈ লৌকিক কথ্য ভাষাৰ সংমিশ্ৰণত পৰিবৰ্তিত হৈ সেই ৰূপৰ পৰাই আধুনিক ভাৰতীয় আৰ্যসমূহৰ জন্ম হয়।

আৰ্য জনসমাজত প্ৰচলিত লৌকিক বা কথ্য ৰূপটো জনসাধাৰণৰ নিত্যদিনৰ বাক্‌-ব্যৱহাৰত পৰিৱৰ্তনৰ স্বাভাৰিক গতি প্ৰৱাহেৰে অগ্ৰসৰ হৈ ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্বৰ কিছুমান উল্লেখযোগ্য পৰিৱৰ্তনেৰে আত্ম প্ৰকাশ কৰিলে যে ই প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্য ভাষাৰ পৰা বহুখিনি আতঁৰি আহি পৃথক হৈ পৰিল। পৰিৱৰ্তনৰ মাজেৰে ভাৰতীয় আৰ্যভাষাই যি সুকীয়া ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিলে তাকেই ভাৰতীয় আৰ্যভাষাৰ ক্ৰমবিকাশৰ দ্বিতীয় স্তৰ তথা মধ্যস্তৰ হিচাপে মধ্যভাৰতীয় আৰ্যভাষা নামকৰণ কৰা হয় আৰু এই স্তৰৰ ভাষাকে সামগ্ৰিক ভাৱে, ব্যাপক অৰ্থত ‘প্ৰাকৃত’ বুলি অভিহিত কৰা হয়।

০.০১ গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্ৰাকৃত সাহিত্যক্ষেত্ৰলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে খ্ৰীষ্টপূৰ্ব ষষ্ঠ শতাব্দীৰ পৰা খ্ৰীষ্টাব্দ দশম শতাব্দীলৈকে সৰু সৰু বহুতো সাহিত্য সৃষ্টি হৈছে আৰু এই ৰচনাৰাজিৰ মাজেৰে প্ৰাকৃত ভাষাৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ৰূপবোৰে বিকাশ লাভ কৰা দেখা গৈছে। প্ৰাকৃত ভাষাৰ জনপ্ৰিয়তাৰ লগতে ইয়াৰ গ্ৰহণযোগ্যতালৈ লক্ষ্য কৰি সংস্কৃত নাট্যকাৰসকলেও তেওঁলোকৰ নাটকত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লৈছিল। সংস্কৃত নাট্যকাৰ ভাসো তাৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। ভাসে তেওঁৰ নাটকসমূহত প্ৰাকৃত ভাষাৰ আঞ্চলিক ৰূপবোৰ নাটকীয় চৰিত্ৰ বিশেষকৈ নাৰী চৰিত্ৰৰ মুখত কেনেদৰে দিছিল আৰু তাৰ মাজেৰে তেওঁৰ নাটকৰ ভাষিক দিশে কি ধৰণৰ তাৎপৰ্য বহন কৰিছিল, এই দিশসমূহৰ আলোচনাই এই গৱেষণা পত্ৰখনিৰ উদ্দেশ্য।

০.০২ গৱেষণাৰ সমল ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে ভাসৰ 'অবিমাৰক' আৰু চাৰুদত্ত' নাটক (চন্দ্ৰশেখৰ উপাধ্যায় সম্পাদিত) দুখনক মুখ্যসমল হিচাপে লোৱা হৈছে। গৌনসমল হিচাপে প্ৰাকৃত ভাষা আৰু সংস্কৃত নাটক সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন গ্ৰন্থৰ লগতে আলোচনী আৰু পত্ৰিকাৰো সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৩ গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

এই ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্যত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে যদিও বিষয়বস্তুটো স্পষ্টৰূপত প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ তাগিদাত প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৪ গবেষণাৰ পৰিসৰ ঃ

সংস্কৃত নাট্যসাহিত্যত প্ৰাকৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ বহুল। প্ৰায় প্ৰতিজন সংস্কৃত নাট্যকাৰে তেওঁলোকৰ নাটকত সংস্কৃত ভাষাৰ লগতে বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। ইয়াৰ পৰিসৰ বৰ বিশাল। কিন্তু এই গবেষণাৰ বাবে নাট্যকাৰ ভাসৰ 'অবিমাৰক' আৰু 'চাৰুদত্ত' এই দুখন নাটকহে নিৰ্বাচন কৰা হৈছে। গতিকে গৱেষণা পত্ৰখনিৰ পৰিসৰো ভাসৰ এই দুখন নাটকৰ নাৰী চৰিত্ৰৰ প্ৰাকৃত ভাষা এই আলোচনাৰ মাজতে সীমাবদ্ধ থাকিব।

২.০০ বিষয় বস্তুৰ আলোচনা ঃ

সংস্কৃত নাটকত প্ৰাকৃত ভাষাৰ ঐতিহ্য অতি প্ৰাচীন- খ্ৰীষ্টাব্দ প্ৰথম শতাব্দীতে এই পৰম্পৰা আৰম্ভ হয়। সংস্কৃত নাটকত প্ৰয়োগৰ পৰাই প্ৰাকৃত ভাষাই সৰ্বপ্ৰথম শিষ্ট ৰূপ লাভ কৰি সাহিত্যত প্ৰৱেশ কৰে আৰু সাহিত্যিক মৰ্যদা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। এতিয়ালৈ প্ৰাপ্ত তথ্য অনুসৰি খ্ৰীষ্টাব্দ প্ৰথম শতাব্দীৰ বুলি অনুমান কৰা অশ্বঘোষ প্ৰথম সংস্কৃত নাট্যকাৰ, যি গৰাকী নাট্যকাৰে প্ৰথম সংস্কৃত নাটকত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছিল। মধ্য এতিয়াৰ তুৰফান অঞ্চলৰ পৰা উদ্ধাৰ কৰা 'সাৰিপুত্ৰ-প্ৰকৰণ' নামৰ নাটকত প্ৰাকৃত ভাষাৰ প্ৰথম প্ৰয়োগ ঘটা দেখা যায়। কথ্য প্ৰাকৃতৰ ধাৰা অনুধাবন কৰিবৰ বাবে অশ্বঘোষ প্ৰাকৃত অংশ ভাষাতাত্ত্বিক দৃষ্টি কোণৰ পৰা মূল্যবান।

সংস্কৃত সাহিত্য এক সভ্ৰান্ত মননশীলতাৰ প্ৰতিফলন। ইয়াৰ বৈশিষ্ট্য হিচাপে দেখা দিছিল কবিত্বপূৰ্ণ দীৰ্ঘ বৰ্ণনা, বৈদগ্ধপূৰ্ণ প্ৰকশিকা শক্তি, চিত্ৰধৰ্মিতা, অলংকাৰ উপমাৰ ব্যৱহাৰ। সংস্কৃত নাটকৰ নায়ক সদায় উচ্চবংশীয় আৰু সংস্কৃতিবান পুৰুষ হয় আৰু তেওঁৰ মুখত সংস্কৃত ভাষাই বিশেষ ভাৱে স্থান লাভ কৰে। কিন্তু নাটকীয় প্ৰয়োজনত দেখুৱাব লগা সাধাৰণ চৰিত্ৰৰ মুখত সংস্কৃত সংলাপে শোভা নিদিয়ে। সেয়ে চৰিত্ৰানুযায়ী বিভিন্ন প্ৰাকৃত ব্যৱহাৰৰ নীতি প্ৰবৰ্তন হৈছিল।

ভাসৰ নাট্যকলাৰ এটি মহত্বপূৰ্ণ দিশ হৈছে তেওঁৰ নাটকৰ চৰিত্ৰ চিত্ৰণ। ভাসে সকলো প্ৰকাৰৰ চৰিত্ৰ বৰ কুশলতাৰে তেওঁৰ নাটকসমূহত চিত্ৰিত কৰিছে। ধীৰোদাত্ত নায়ক, নায়িকা, দৈবী, আসুৰিক আদি যিমান প্ৰকাৰৰ চৰিত্ৰ পোৱা যায়, ভাসৰ নাটকত সেই সকলোবোৰ চৰিত্ৰই স্বমহিমাৰে উদ্ভাসিত হোৱা দেখা গৈছে। এই ক্ষেত্ৰত তেওঁৰ 'অবিমাৰক' আৰু 'চাৰুদত্ত' নাটক দুখনো ব্যতিক্ৰম নহয়। ভাসে মুঠ তেৰখন নাটক ৰচনা কৰিছে। তাৰে মাজত এই দুখন তেওঁৰ কাল্পনিক বা মৌলিক নাটক।

'অবিমাৰক' এখন পূৰ্ণদৈৰ্ঘ্যৰ নাটক। ইয়াত মুঠ ছটা অংক আছে। বহু পণ্ডিতে এই নাটকখনৰ উৎস হিচাপে গুণাঢ্যৰ 'বৃহৎকথা'ৰ কথা বিবেচনা কৰে যদিও এই বিষয়ত নিশ্চিত হোৱাটো টান। 'বৃহৎকথা'খনক অনুসৰণ কৰি ৰচিত একাধিক গ্ৰন্থ পোৱা যায়। বুদ্ধিস্বামীৰ 'বৃহৎকথা শ্লোকসংগ্ৰহ' ক্ষেমেন্দ্ৰৰ 'বৃহৎকথা মঞ্জুৰী লগতে 'কথা-সৰিৎসাৰ' নামেৰে সোমদেৱৰ এখন গ্ৰন্থকে লৈ তিনিখন গ্ৰন্থ প্ৰচলিত আছে। সোমদেৱৰ 'কথা-সৰিৎসাৰ'ত ৰাজকুমাৰী কুৰঙ্গী আৰু এজন চণ্ডাল পুত্ৰৰ বিবাহ আখ্যান পোৱা যায়। চণ্ডভাৰ্গৱ নামৰ অতি খঙাল মহৰ্ষিৰ অভিশাপত ৰাজভ্ৰষ্ট হৈ সৌবীৰৰাজে পত্নী-পুত্ৰৰ সৈতে কুন্তীভোজৰ ৰাজ্যত বাস কৰিব লগীয়া হয় তাকো চণ্ডাল হিচাপেহে। সৌবীৰ পুত্ৰ ৰাজকুমাৰ বিষ্ণু সেন আৰু তেওঁৰেই অবি অৰ্থাৎ ভেৰা ৰূপধাৰীদৈত্য বধ কৰি 'অবিমাৰক' নামেৰে জনাজাত হয়। বিষ্ণুসেনেই নিজ মোমায়েকৰ পুত্ৰী কুৰংগীক এদিনাখন মদমত্ত হস্থীৰ কবলৰ পৰা ৰক্ষা কৰে। শেষলৈ এই কুৰংগীয়ে অবিমাৰকৰ প্ৰেমিকা হৈ পৰে আৰু বিষ্ণুসেন- কুৰংগী বিবাহ পাশতো আৱদ্ধ হয়। ভাসো এনেদৰেই তেওঁৰ 'অবিমাৰক' নাটক কাহিনীভাগ উপস্থাপন কৰিছে। এহাল প্ৰেমিক - প্ৰেমিকাৰ প্ৰেম আৰু ভালপোৱাৰ সুখকৰ পৰিণতি দেখুৱাবলৈ যাওঁতে নাট্যকাৰ ভাসে কিছু অতি লৌকিক আৰু অ-নৈসৰ্গিক ঘটনাৱজিৰো অৱতাৰণা কৰিছে।

'অৱিমাৰক' নাটকখন মুঠ বাইশটা (২২) চৰিত্রৰ উপস্থিতি আছে। ইয়াৰে এঘাৰটা পুৰুষ আৰু এঘাৰটা নাৰী চৰিত্র আছে। নাৰী চৰিত্র কেইটা হ'ল —

দেৱী ঃ সৌবীৰৰ পত্নী
কুৰংগী ঃ সৌবীৰৰ কন্যা
সুদর্শনা ঃ কুন্তীভোজৰ পত্নী
সৌদ্ধামিনী ঃ নায়ক অবিমাৰকৰ বন্ধু বিদ্যাধৰৰ পত্নী
নটী ঃ নাট্য পৰিচালক 'সূত্রধাৰৰ' পত্নী
চেটী ঃ ভৃত্যা
ধাত্রী ঃ ,,
নলিনিকা ঃ ,,
বিলাসিনী ঃ ,,
মাগধিকা ঃ ,,
বসুমিত্রা ঃ ,,

নাটকখনৰ নায়িকা হ'ল কুৰংগী। তেওঁ বৈৰন্ত্যৰ ৰজা কুন্তীভোজৰ জীয়ৰী। তেওঁ নবযৌৱন সমাগতা পাট গাভৰু। কুৰংগীয়ে প্রথম দর্শনতে নায়ক অবিমাৰকৰ মন জয় কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। ভয় আৰু লাজে আৱৰি থকা নাৰীসুলভ স্বাভাৱিক গুণসম্পন্না ৰাজকন্যা কুৰংগী এটি উত্তমা নাৰী চৰিত্র। ইপিনে নটী (সূত্রধাৰৰ পত্নী) দেৱী, সুদর্শনা এওঁলোকো ৰাজপৰিয়ালৰ সংযুক্তা উচ্চ নাৰী চৰিত্র আৰু বাকীবোৰ চৰিত্র নায়কৰ বন্ধু পত্নী আৰু ভৃত্যাৰ চৰিত্র কেইটি নিচ নাৰী চৰিত্র হিচাপে ধৰা দিছে নাটকখনত। আলোচনাৰ সুবিধার্থে এই চৰিত্রবোৰৰ মুখৰ সংলাপৰ কিছু অংশ তুলি লোৱা হ'ল—

নটী — আর্য ঙ্গ ইঅমহি। (প্রাঃ)
(আর্য, এয়া আহিছো।)

সুত্রধাৰ — আর্যেঙ্গ তব বদনজনিত কৌতুহলেন স্মিতেন নিবেদিত ইবান্তগতো। ভাৱঃ ননু কশ্চিদ বক্তুকামাসি। (সং)
(হে আর্যা,তোমাৰ মনত কৌতুক সৃষ্টি কৰা হাঁহিয়ে আন্তৰিক ভাৱ সূচাইছে। তুমি কিবাকবা যেন পাইছো।)

নটী ঃ কো এথ বিম্হঅ অয্যো ভাবঞ্ঞো ত্তি। (প্রাঃ)
(আর্য, আপুনি ভাবাজ্ঞ, আপোনাৰ বাবে ই একো আচর্য্যকৰ কথা নহয়।)
(ভাস নাটক চক্রম, পৃ ঃ)

দেবী ঃ জেদু মহাৰাও। (প্রাঃ) (মহাৰাজৰ জয় হওক।)

ৰজা ঃ দেবী ঙ্গ নিত্যপ্রসন্নমপি তে মুখমধ্যাতিপ্রসন্নমিৱ। কিঙ কৃতোয়ং প্রহর্ষঃ। (সং)
(দেবী। নিত্য প্রসন্ন হৈ থকা তোমাৰ মুখত আজি অলপ বেলেগ প্রসন্নতাৰ প্রতিফলন
হৈছে। এই প্রসন্নতাৰ কাৰণ কি?)

দেবী ঃ ণং মহাৰাঅেণ কহিদং - কুৰঙ্গীনিমিত্তিং দুদো আঅদত্তি। তা অইৱেণ জামাদুঅং
পেক্খামি ত্তি। (প্রাঃ)
(মহাৰাজ, আপুনিয়েই কৈছিলে যে, কুৰংগীৰ বাবে দুত আহিছে। শীঘ্রেই জোৱাইৰ মুখদর্শন লাভ কৰিম।)
(ভাস নাটক চক্রম. পৃঃ)

সুদর্শনা ঃ অব্ভাঅদো দেবৰিসী। (প্রাঃ)
(অ দেৱর্ষি আহিছে)

ভূতিক ঃ এবম (হয়) (এনে কৰাই)

সুদর্শনা ঃ সনাহো দানি মে পুত্ত অস্স বিবাহো সংবুত্তো। ভঅবং বন্দামি। (প্রাঃ)
(তেন্তে আমাৰ পুত্রৰ বিবাহ আজি সফল হ'ল। আপোনাৰ বন্দনা কৰিছোঁ।)

নাৰদ ঃ এৱ মেৱ মহাভাগেঙ্গ নিত্যং প্রীতিমৱানুহি। কুন্তিভোজশ্র ভুপালো নিত্যং ম্যাত
প্রীতিপীডিতঃ ।। (সং) (তুমি সদায় এনেকৈ প্রীতিত থকা, লগতে ৰজা কুন্তীভোজো প্রীতিতে আৱদ্ধ হৈ থাকক) (ভাস নাটক চক্রম. পৃঃ ৩৩২)

চেটী ঃ অয্য। কচ্ছি বমহণং অন্নেসামি। (প্রাঃ)
(আর্যঙ্গ এজন ব্রাহ্মন বিচাৰি আছোঁ)

বিদুষক ঃ বমহনেন কিং কযযং। (প্রাঃ)
(ব্রাহ্মমৰ কি আৱশ্যকতা আহিল?)

চেটী ঃ কিমন্নং ভোঅণতথং ণিমন্তেদুং। (প্রাঃ)
(ভোজনৰ বাবে নিমন্ত্রণ কৰিলোহেঁতেন)
(ভাস নাটক চক্রম.পৃঃ)

কুৰংগী ঃ হলাঙ্গ কি তেন ভনিঅং। (প্রাঃ)
(সখীঙ্গ তেওঁ কি কৈছিল।)

চেটী ঃ ভট্টিদাৰিয়েঙ্গ কেণ। (প্রাঃ) (কোনে ৰাজকুমাৰী)

কুৰংগী ঃ (স্বগতম) হং ভিন্দামি খু মন্দভাআ। (প্রকাশম) কন্নেউৰচেডেণ। (প্রাঃ)
(স্বগতোক্তি' মই মন্দভাগিনীয়েই নিশ্চয় ভাগি পৰিম।)

মাগধিকা ঃ দিটথো মত্র কন্নে উৰচেডো। ভনিদংচ। ণ কিশ্রি আহ। ময়া কন্যাপুৰচেটঃ। ভণিতং চ। ন কিশ্রিদাহ।)
(মই কন্যাপুৰুষ ভৃত্য লগত দেখা কৰিছিলোঁ। কথাও হ'লো। কিন্তু তেওঁহে একো নক'লে।)

কুৰংগী ঃ হন্ত ভট্টিনীএ নিৱেদেমি - কন্নেউৰচেডে মম

সুঅপজ্জৰংণ কৰেদি ত্তি। (প্রাঃ)
(বাৰুঙ্গ মই এই মাত্র মাক জনাময়ে কন্যাপুৰৰ ভৃত্যবোৰে মোৰ বাবে শুকপক্ষীৰ বাঁহটো তৈয়াৰ কৰা নাই।)
(ভাসনাটকচক্রম. পৃঃ)

চাৰুদত্ত — এইখন নাটকত চাৰিটা অংক বিভাজন আছে। নাটকখনৰ নায়ক চাৰুদত্তৰ নামেৰে নাটকখনৰ নামকৰণ কৰা হৈছে। চাৰুদত্ত জাতিগত ভাবে ব্রাহ্মণ হ'লেও পেছাগতভাৱে তেওঁ এগৰাকী বণিক। অতিশয় ধীৰ-গম্ভীৰ প্রকৃতি চাৰুদত্ত আছিল অত্যন্ত দানী লগতে গুণৱান। দানশীল গুণৰ বাবেই তেওঁ এদিন দৰিদ্র হৈ পৰে। বিবাহিত হোৱাৰ পিছতো তেওঁৰ গুণমুদ্ধা হৈ উজ্জয়িনীৰ বণিতা বসন্তসেনা চাৰুদত্তৰ প্রেমত পৰে। শেষলৈ চাৰুদত্তয়ো বসন্তসেনাৰ পাণি গ্রহণ কৰে।

'চাৰুদত্ত' নাটকখনৰ মুঠ চৰিত্রৰ সংখ্যা ষোল্লাটা (১৬) টা। ইয়াৰে নটা পুৰুষ আৰু সাতটা নাৰী চৰিত্র সমাৱেশ ঘটিছে। ইয়াৰে নাৰী চৰিত্র কেইটা হ'ল —

গণিকা বসন্তসেনা	—	নায়িকা
ব্রাহ্মণী	—	নায়ক চাৰুদত্তৰ পত্নী
মদনিকা	—	বসন্তসেনাৰ ঘৰৰ চেটী
বিচ্ছিত্তিকা	—	বসন্তসেনাৰ ঘৰৰ চেটী
চতুৰিকা	—	বসন্তসেনাৰ ঘৰৰ চেটী
ৰদনিকা	—	চাৰুদত্তৰ ঘৰৰ চেটী
নটী	—	সূত্রধাৰৰ স্ত্রী।

নাটকখনৰ নাৰীবোৰৰ মুখত ভাসে প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। ইয়াতো নাট্যকাৰ ভাসে চৰিত্রানুযায়ী ভাষাৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্রত বিচিত্রতা আনিছে। এইখন নাটকটো তেওঁ নাৰী চৰিত্রবোৰৰ মুখত প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। আলোচনাৰ সুবিধাৰ বাবে এইখন নাটকৰো নাৰী চৰিত্রসমূখৰ মুখৰ সংলাপ কিছু উল্লেখ কৰা হ'ল —

নটী — অয্যঙ্গ ইঅমহি। অয্য। দিট্থিয়া খু সি আঅদো। (প্রাঃ)
(আর্যঙ্গ মই ইয়াতে আছো । সৌভাগ্য যে আপুনি আহি পালে।)
সুত্রধাৰ —অয্যেঙ্গ কি অতিথি অম্হাণং গেহে কো বি পাদৰাসো। (প্রাঃ)
(আর্যাঙ্গ এইখন ঘৰত প্রাতঃ ভোজনৰ প্রবন্ধ কৰা হৈছে নেকি?) (ভাস নাটক চক্রম. পৃঃ)
গণিকা (বসন্তসেনা) — অদিন্ন ভুমিপ্প ে বেসপধৰিসণেণ অৱৰদ্ধা অহং অয্যং সীসেন পসাদেমি। (প্রাঃ)
(শ্রীমান, আজ্ঞা অবিহনে মই - আপোনাৰ ঘৰলৈ আহিলোঁ ইয়াৰ বাবে মই অপৰাধী আৰু মই আপোনাক ক্ষমা মাগিছোঁ।)
নায়ক (চাৰুদত্ত) — যদ্যেবমহমপি তাবদবিজ্ঞাত প্রযুক্তেণ প্রেষ্যাসমুদাচাৰেণ সাপৰাধো ভক্তি প্রসাদযামি (সং)
(যদি এয়াই হয় তেন্তে মইয়ো পূর্ব সুচনা নোহোৱাৰ বাবে উচিত ব্যৱহাৰ কৰিব
নোৱাৰাৰ অপৰাধত অপৰাধী আৰু মইতো আপোনাৰ প্রসন্নতাৰ প্রার্থী হ'লো।)
বিদুষক —ভোঙ্গ বিবহন্তা ইব সঅভিঅং দ্ধব্বি ণীদব শ্লীবদ্দা অণ্ণোণ্ণং সঙ্কিল্লেসন্তি। অহং দানি কং পসাদেমি। ভোদু দানি ৰদনিঅং পসাদেমি। ৰদণিত্র। পসীদদু পসীদদু হোদী। (প্রাঃ)
(অহঃ এয়াতো দুটা বলধে গাড়ী টনাৰ দৰে হ'ল। এওঁলোকে পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ অনুনয় প্রার্থনা কৰিছে। মই এতিয়া কোনজনক প্রসন্ন কৰোঁ। ৰদনিকা, ভদ্রা তুমি প্রসন্ন হোৱা।) (ভাস নাটক চক্রম. পৃঃ)
ব্রাহ্মণী —ৰদনিএঙ্গ ৰদনিএঙ্গ আঅচ্ছ। নাহি সুণাদি। কবাডসদ্দং দাব কৰিস্সং। (প্রাঃ)
(ৰদনিকাঙ্গ ৰদকি। শুনা নাই? আহাচোন। দুৱাৰত শব্দ কৰোঁ।)
চেটী — হং কবাডসদ্দো বিঅ। ভট্টিদাৰিআ মং সদ্দাবেদি। ভট্টিদাৰিও ই অ ম্হি। (প্রাঃ)
(হা, দুৱাৰত ঢকিয়াইছেচোন। গৃহিনীয়ে মোক মাতিছে। আই,মই এয়া।) (ভাস নাটক চক্রম. পৃঃ)

অবিমাৰক আৰু চাৰুদত্ত - এই দুয়োখন নাটকৰ পৰা উদ্ধৃত চৰিত্রসমূহৰ বিশেষকৈ নাৰী চৰিত্রবোৰৰ মুখৰ সংলাপসমূহৰ পৰা এটা কথা ক'ব পৰা যায় যে নাটকীয় কার্যকলাপ আৰু কাহিনীভাগ আগবঢ়াই লৈ যাওঁতে নাট্যকাৰ ভাসে নাটক দুখনত তিনি প্রকাৰৰ ভাষিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি কৰিছে —

(ক) প্রাকৃত - প্রাকৃত
(খ) প্রাকৃত - সংস্কৃত
(গ) সংস্কৃত - প্রাকৃত

অবিমাৰক আৰু চাৰুদত্ত - নাটক দুখন নাট্যকাৰ ভাসৰ কাল্পনিক তথা মৌলিক সৃষ্টি - কোনো মহাকাব্যৰ অৱলম্বন কৰি নাটক দুখনৰ কাহিনীয়ে গতি কৰা নাই। বুৰঞ্জীৰো ইয়াত কোনো ধৰণৰ উপস্থিতি নাই। ই সম্পূর্ণ অনাশ্রিত মৌলিক সৃষ্টি আৰু এই সৃষ্টিত তেওঁৰ মৌলিকতাই বিশেষ অগ্রাধিকাৰ পাইছে। নাট্যকাৰে

স্বকীয়তাৰে চৰিত্রসমূহ সৃষ্টি কৰিছে আৰু ইয়াত লোক কথাৰহে প্ৰভাৱ পৰিছে। তেওঁ নাটক দুখনত উত্তম চৰিত্র সৃষ্টি কৰাতকৈ জনসাধাৰণৰ ওচৰ চপা মানৱীয় গুণসম্পন্ন মানৱ-মানৱী চৰিত্র সৃষ্টিতহে মনোনিৱেশ কৰিছে।

সাধাৰণতে জন-মানসত লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায়যে পুৰুষ চৰিত্রতকৈ নাৰী চৰিত্রবোৰ লৌকিকতাৰ অধিক কাৰ চপা । সেয়ে তেওঁ নাটক দুখনত উপস্থিত থকা প্রত্যেকটো নাৰী চৰিত্রৰ মুখতে প্রাকৃত ভাষাত সংলাপ সংযুক্ত কৰিছে। যাতে জন-সাধাৰণৰ বাবে চৰিত্রবোৰৰ গ্রহণযোগ্যতা বৃদ্ধি পায়। অবিমাৰক-নাটকৰ নটী, দেৱী, কুৰংগী, সুদর্শনাৰ দৰে উচ্চ পর্যায়ৰ অর্থাৎ এওঁলোকৰ সম্পর্ক ৰাজ পৰিয়ালৰ লগত জড়িত আৰু এইবোৰ চৰিত্রৰ মুখত প্রাকৃত ভাষাৰ সংলাপ দিছে , আনহাতে চেটী, নলিনিকা, বিলাসিনী, মাগধিকা আদিৰ দৰে ৰাজ-পৰিয়ালৰ ভৃত্য বা লিগিৰীবোৰৰ ওঠতো প্রাকৃত ভাষা প্রদান কৰিছে। কাৰণ উচ্চ বা নীচ হ'লেও সকলো নাৰী চৰিত্র। ইয়াৰ দ্বাৰা নাৰীৰ নাৰীসূলভ স্বাভাৱিকতা বাৰুকৈ প্রকট হৈ পৰিছে। কিন্তু সেয়া হ'লেও উচ্চ পর্যায়ৰ নাৰী চৰিত্র কেইটাৰ লগতে নাটকখনৰ নিম্ন নাৰী চৰিত্র কেইটাও সংস্কৃত ভাষা জানিছিল। কাৰণ কুৰংগীয়ে সংস্কৃতত সোধা প্রশ্নৰ উত্তৰ চেটি, মাগধিকা বা আন আন ভৃত্যাবোৰেও তাৰ শুদ্ধ প্রত্যুত্তৰ প্রাকৃতত উপস্থাপন কৰিছিল, সেয়াই প্রমান কৰে যে তেওঁলোকে সংস্কৃত বুজি পাইছিল। নাৰীচৰিত্রবোৰ পৰস্পৰ মাজত প্রসংগ ক্রমে সংস্কৃত ভাষা ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছিল যদিও তেওঁলোকে নাটকৰ সুত্রধাৰ, ৰজা, বিদুষক আদি চৰিত্রবোৰৰ সতে কথপোকথনত সংস্কৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

ইপিনে চাৰুদত্ত নাটকৰ - আটাইকেইটা নাৰী চৰিত্রৰ মুখতে নাট্যকাৰ ভাসে অকল প্রাকৃত ভাষাৰ সংপাল সংযোগ কৰিছে। তেওঁলোকে নিজৰ মাজত লগতে পুৰুষ চৰিত্রৰ লগত হোৱা কথপোকথনতো অকল প্রাকৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰা দেখা গৈছে। কৰো মুখত এফাঁকিও সংস্কৃত ভাষাৰ উপস্থিতি নাই। ইয়াত নটী আৰু ব্রাহ্মণী এই চৰিত্র দুটা ৰাজ পৰিয়ালৰ সৈতে সম্পর্কিত নহলেও অভিজাত্য প্রদর্শন কৰিব পৰা চৰিত্র। কিন্তু এই দুটি চৰিত্রও প্রাকৃততে নিজক উপস্থাপন কৰা দেখা গৈছে। নাটকখনৰ নায়িকা বসন্ত সেনা যিহেতুকে এগৰাকী গণিকা, লগতে তেওঁৰ সখী আৰু দাসীসকলোৰ মুখৰ প্রাকৃতে নাটকখনত অধিক স্বাভাৱিক কৰি তুলিছে। কিন্তু নায়ক চাৰুদত্ত, বিদুষক, শকাৰ, সুত্রধাৰৰ সৈতে হোৱা কথপোকথনত এই চৰিত্রবোৰে নাৰীচৰিত্রবোৰৰ সন্মুখত সংস্কৃতত নিজকে উপস্থাপন কৰা দেখা গৈছে, ইয়ে প্রমাণ কৰে যে আটাইকেইটা নাৰী চৰিত্রই সংস্কৃত ভাষা জ্ঞাত আছিল।

দ্বিতীয়তে, প্রাকৃত - সংস্কৃত - কথোপকথন। অর্থাৎ প্রাকৃত ভাষা আৰু সংস্কৃত ভাষা উভয়ৰ মাধ্যমেৰে হোৱা কথোপকথন। নাটক দুখনত আমি দেখিবলৈ পাইছো যে পুৰুষ চৰিত্রৰ ভিতৰত অবিমাৰকৰ নায়ক চৰিত্র অবিমাৰক,ৰজা সৌবীৰ ৰাজ, মন্ত্রী কৌঞ্জায়ন, জয়সেন, ৰজা কুন্তীভোগ প্রমুখ্যে চৰিত্রবোৰে নিজ ব্যক্তবাণী সংস্কৃতত প্রকাশ কৰিছে । নাটকখনৰ নাৰী চৰিত্রবোৰৰ সৈতে কথোপকথনতো তেওঁলোকে সংস্কৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰিছে। নাৰী চৰিত্র নটী, দেৱী, নায়িকা কুৰংগীয়েও বহু সময়ত পুৰুষ চৰিত্রবোৰৰ আগত নিজকে প্রাকৃত ভাষাতে ব্যক্ত কৰিছে।

চাৰুদত্ত নায়কৰ নায়ক চাৰুদত্ত, বিদুষক, শকাৰ, সুত্রধাৰ আদি চৰিত্রবোৰৰ সংস্কৃত কথোপকথনৰ উত্তৰ নায়িকা বসন্তসেনা প্রমুখ্যে আটাইবোৰে নাৰী চৰিত্রই প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰা দেখা গৈছে। প্রত্যুত্তোৰত পুৰুষ চৰিত্রবোৰে পুনৰ সংস্কৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ইয়াৰ পৰা এইটো সিদ্ধ হয় যে নাটক দুখনত উপস্থিত প্রত্যেকটো পুৰুষ চৰিত্রই প্রাকৃত ভাষা জানিছিল আৰু সেয়ে তেওঁলোকে নাৰী চৰিত্রৰ প্রাকৃত কথপোকথনত অংশগ্রহণ কৰিব পাৰিছিল। নাট্যকাৰ ভাসে নাট্য বিধিমতে লগতে নাটকদুখনৰ গ্রহণযোগতালৈ দৃষ্টি ৰাখি এনে ভাষিক পৰিবেশৰ সৃষ্টি কৰিছে।

তৃতীয়তে, সংস্কৃত-প্রাকৃত কথোপকথন। নাটকদুখনত থকা পুৰুষ চৰিত্র, অবিমাৰকৰ - নায়ক অবিমাৰক,ৰজা সৌবীৰাজ, বিদুষক, মন্ত্রীদ্বয় কৌতহায়ন, জয়সেনা, ৰজা কুন্তীভোজ প্রমুখ্যে চৰিত্র কেইটাই নাৰী চৰিত্র কেইটাক সংস্কৃত ভাষাত সম্ভাষণ কৰিছে আৰু সংস্কৃততে বার্তালাপ আগবঢ়াই নিয়া দেখা গৈছে। কিন্তু তাৰ বিপৰীতে নাৰী চৰিত্র কেইটাই তেওঁলোকক প্রাকৃতত সম্ভাষণ জনোৱা দেখা গৈছে। নলিনিকা, বিলাসিনী বসুমিত্রা আদিৰ ভৃত্যা বা পৰিচালিকা, লিগিৰীবোৰেও কিন্তু সংস্কৃতত সম্ভাষণ বা সংস্কৃতত সোধা প্রশ্নৰ উত্তৰ প্রাকৃত ভাষাৰেই প্রদান কৰিছিল।

ইপিনে 'চাৰুদত্ত' নাটকতো নায়ক চাৰুদত্ত, বিদুষক,

শকাৰ, সূত্রধাৰ প্ৰমুখ্যে চৰিত্ৰবোৰে নাৰী চৰিত্ৰবোৰক সংস্কৃত সম্ভাষণ আগবঢ়াইছে আৰু নায়িকাকে ধৰি আটাইকেইটি নাৰী চৰিত্ৰই প্ৰাকৃতত সম্ভাষণ আগবঢ়াই কথপোকথনত অংশগ্ৰহণ কৰা দেখা গৈছে। ইয়াৰ পৰা এইটো প্ৰতিপন্ন হয় যে নাটক দুখনৰ প্ৰত্যেকটো নাৰীচৰিত্ৰই সংস্কৃত ভাষা শুদ্ধকৈ জানিছিল, নহ'লে নিশ্চয় বাৰ্তালাপত ত্ৰুতি -বিচ্যুতি ঘটিলেহেতেঁন। চৰিত্ৰসমূহৰ মুখৰ ভাষা সংস্কৃত নাইবা প্ৰাকৃত প্ৰদান কৰাৰ লগে লগে সামাজিক স্থিতিৰ অনুৰূপে চৰিত্ৰবোৰে পৰস্পৰৰ প্ৰতি কৰা ব্যৱহাৰৰ দিশবোৰ গুৰুত্ব সহকাৰে উপস্থাপিত হৈছিল।

উপসংহাৰ ঃ

'অবিমাৰক' আৰু 'চাৰুদত্ত' ভাসৰ এই দুখন কাল্পনিক নাটকত উপস্থিত প্ৰত্যেকটো নাৰী চৰিত্ৰই নিজৰ নিজৰ ভাষিক বৈশিষ্ট্য অক্ষুণ্ণ ৰাখিছে। দেখা গৈছে যে প্ৰত্যেকটো নাৰী চৰিত্ৰই সংস্কৃত আৰু প্ৰাকৃত, উভয় ভাষা জ্ঞাত আছিল, কিন্তু নাৰী চৰিত্ৰবোৰে নিজৰ নিজৰ স্থিতি অনুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। নাটকীয় কাহিনী আগবাঢ়ি যাওঁতে আমি দেখিছোঁ যে নাৰী চৰিত্ৰ কেইটাই যেতিয়া পুৰুষ চৰিত্ৰৰ সৈতে কথপোকথনত অংশগ্ৰহণ কৰে - তেতিয়া উত্তম পুৰুষ চৰিত্ৰবোৰে সংস্কৃত ভাষাত নিজক ব্যক্ত কৰে আৰু নাৰী চৰিত্ৰ কেইটায়ে প্ৰতি উত্তৰত নিজক প্ৰাকৃতত ব্যক্ত কৰে। নাট্যশাস্ত্ৰীয় বিধি অনুসৰি নাৰী চৰিত্ৰৰ মুখত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহৃত হৈছে। কিন্তু সংস্কৃত ভাষাধাৰী উত্তম পুৰুষ চৰিত্ৰই প্ৰাকৃত ভাষাধাৰী উত্তম বা অধম নাৰী চৰিত্ৰ কাকোৱেই উপহাস বা ইতিকিং কৰা পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। আনকি প্ৰত্যেকটো নাৰী চৰিত্ৰই নিজৰ নিজৰ স্থানত নিজস্ব তথা স্বকীয় ভাষিক বৈচিত্ৰ্যৰে উদ্ভাসিত হৈ উঠা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। ইয়াৰ পৰা আমি সমসাময়িক ভাষিক পৰিস্থিতিৰো এক উমান পাঁও। সেই সময়ত সংস্কৃত আৰু লৌকিক সংস্কৃত বা প্ৰাকৃত উভয়ৰে ব্যৱহাৰ আছিল। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে দুয়োটা ভাষাকেই আয়ত্ব কৰিব লাগিছিল। ৰাজপৰিয়ালৰ লগত সংযোজিত হৈ থকা নিম্ন নাৰীচৰিত্ৰসমূহেও তাগিদাত পৰি সংস্কৃত ভাষা আয়ত্ব কৰিছিল। ৰাজ পৰিয়ালৰ নাৰীচৰিত্ৰৰ সৈতে প্ৰাকৃততে বাৰ্তালাপত অংশগ্ৰহণ কৰিলেও, উত্তম পুৰুষ চৰিত্ৰসমূহৰ লগত সংস্কৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

সেয়ে তেওঁলোকে সংস্কৃত ভাষা আয়ত্ব কৰাটো জৰুৰী আছিল। সংস্কৃত নাটকৰ মুখ্যত ভাসৰ নাটকৰ নাৰী চৰিত্ৰসমূহে প্ৰাকৃত ভাষাৰ পৰিবাহক ৰূপত ধৰা দিছে। ভাসৰ দৰে নাট্যকাৰ সকলে নাট্য বিধি অনুসৰি বা অন্যান্য যি কাৰণতে নহওঁক কিয় নাৰী চৰিত্ৰৰ মুখত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰা হেতুকে আমি প্ৰাকৃত ভাষাৰ বিচিত্ৰ আঞ্চলিকৰূপসমূহ পাবলৈ সক্ষম হৈছে। নহ'লে ব্যৱহাৰ আবিহনে প্ৰাকৃত ভাষাৰ বিচিত্ৰ্য ৰূপবোৰ কালৰ গৰ্ভত হেৰাই গ'লহেতেন। ভাসৰ পৰৱৰ্তী নাট্যকাৰ ভৱভূতিয়েও (অষ্টম শতাব্দী) তেওঁৰ 'উত্তৰ ৰামচৰিতম' নাটকত সীতা প্ৰমুখ্যে অইন নাৰী চৰিত্ৰৰ মুখত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰাটোৱে এক বিশেষ তাৎপৰ্য বহন কৰিছে। কাল বা সময়ৰ কালৰ পৰা ভাসতকৈ ভবভূতি বহু বছৰ পিছৰ যদিও, তেওঁৰো নাটকৰ নাৰী চৰিত্ৰ মুখত প্ৰাকৃত ভাষাই ব্যৱহাৰ কৰিছে। অৰ্থাৎ নাট্যকাৰ অশ্বঘোষৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ভৱভূতিলৈকে সংস্কৃত নাট্যকাৰসকলে তেওঁলোকৰ নাটকত চৰিত্ৰ অনুযায়ী প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰি নাটকত চৰিত্ৰ বিশেষে প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰৰ তাৎপৰ্য তথা ধাৰাবাহিকতা অক্ষুন্ন ৰাখিছে। এনেদৰে সাম্প্ৰতিক সময়ৰ নাট্যকাৰ সকলেও যদি চৰিত্ৰানুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰত মনোনিৱেশ কৰে তেন্তে বহুবোৰ ভাষাৰ বৈচিত্ৰতা তথা স্বকীয়তা ধৰি ৰাখিব পৰা যাব আৰু হয়তো বিপদাপন্ন বহুভাষাৰ পুনৰ উদ্ধাৰ তথা পুনঃজীৱিতকৰণত ইয়ো এক বলিষ্ঠ আহিলাৰ ৰূপত ধৰা দিব। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মূল্য সমল ঃ

উপাধ্যায়, চন্দ্ৰশেখৰ (সম্পা.) ঃ ভাস কে নাটক ভাগ III, নাগ পাব্লিছাৰ্চ, দিল্লী, প্ৰথম সংস্কল, ২০০১।

দেৱধৰ, চি.কে. (সম্পা.) ঃ ভাস নাটকচক্ৰম, মতিলাল বেনাৰসিদাস, দিল্লী, পুনঃসস্কৰণ, ১৯৮৭।

গৌণসমল ঃ

গোস্বামী, সতেন্দ্ৰনাৰায়ণ ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্য, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ১৯৯৩।

ঠাকুৰ, নগেন ঃ পালি-প্ৰাকৃত- অপভ্ৰংশ ভাষা আৰু সাহিত্য, ক্ষেত্ৰম পাৱলিছিং, গুৱাহীটী ১, সংশোধিত আৰু পৰিবৰ্দ্ধিত সংস্কৰণ, ১৯৯৭।

ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্য চয়ন, জ্যোতি প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০০১,

ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্যৰ অধ্যয়ন, জ্যেতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ , ২০০৭।

প্ৰবন্ধ

অসমৰ টাই ফাকেসকলৰ লোকগীতৰ এক পৰিচয়মূলক আলোচনা

ৰেবিকা হাজৰিকা

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
ম'বাইল - ৭০৮৬৯১৬৯৬৯
ই-মেল ঃ rebikahazarika5@gmail.com

ড° দিলীপ ৰাজবংশী

গৱেষণা নিৰ্দেশক,
সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী -৭৮১০০১, অসম

সাৰাংশ ঃ

প্ৰত্যেক জনগোষ্ঠীৰ লৌকিক আৰু লিখিত সাহিত্যৰ ভঁৰাল সমৃদ্ধিশালী কৰি ৰখাত লোকগীত, সাহিত্যৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা আছে। মৌখিক গীত-মাতৰ অবিহনে কোনো এটা জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক জীৱনৰ চিত্ৰ পৰিপূৰ্ণ নহয়। গীত-মাতসমূহে কেৱল গীতৰ বিশিষ্টতা ধৰি নাৰাখি জনগোষ্ঠীটোৰ পৰম্পৰাগত জীৱন চিত্ৰও দাঙি ধৰে।

অসমৰ টাই ফাকে জনগোষ্ঠী মৌখিক গীত-মাতত যথেষ্ট চহকী। তেওঁলোকে বিভিন্ন পৰিৱেশ, উপলক্ষত নিৰ্দিষ্ট বৈশিষ্ট্যৰ লোকগীতসমূহ পৰিৱেশন কৰে। প্ৰাত্যহিক জীৱনৰ, সমাজৰ ৰীতি-নীতি, কৃষি, প্ৰকৃতি, ধৰ্মীয় আদি বিভিন্ন বিষয়ৰ পৰা সমল আহৰণ কৰি স্বভাৱ শিল্পীসকলে লোকগীত সমূহ ৰচনা কৰা দেখা যায়। প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ আৱেগ-অনুভূতিকে লোকগীত সমূহৰ বিষয়বস্তু হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হয়। টাই ফাকে সকলৰ মাজত প্ৰচলিত লোকগীত সমূহৰ ভিতৰত কৃষিকৰ্ম, উৎসৱ-পাৰ্বণ, ধৰ্ম, আনন্দ-বিনোদন, খেল-ধেমালি, বিভিন্ন আখ্যান, নিচুকণি গীত, নীতিশিক্ষা আৰু আশীৰ্বাদ আদিৰ লগত জড়িত গীতসমূহে প্ৰধান। টাই ফাকে সকলে বিভিন্ন উপলক্ষত পৰিৱেশন কৰা শ্লোক, স্তুতি, বন্দনা, প্ৰাৰ্থনা, আশীৰ্বাদ দিয়া পৰম্পৰা সমূহত সুৰৰ বিচিত্ৰতাৰ আৱেশে তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত গীত-মাতবোৰক সমৃদ্ধিশালী আৰু মাধুৰ্যময় কৰি তুলিছে।

সূচক শব্দ ঃ টাই, ফাকে, লোক-গীত, শ্ৰেণীবিভাজন, অসম।

পৰিচয় ঃ

উত্তৰ-পূৱ ভাৰতবৰ্ষ বহু জাতি-জনজাতিৰ মিলন ভূমি । এই জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত টাই ফাকে সকল উল্লেখযোগ্য। উজনি অসমৰ সিচঁৰতি ডিব্ৰুগড় আৰু তিনিচুকীয়া জিলাৰ নখন গাঁৱত দুহেজাৰো কম জনসংখ্যাৰে সিঁচৰিত হৈ বসবাস কৰি আছে। ডিব্ৰুগড় জিলাৰ নাহৰকটীয়া সমীপৰ নামফাকে আৰু টিপামপাকে, তিনিচুকীয়া জিলাৰ মাৰ্ঘেৰিটাৰ সমীপৰ বৰফাকে, মান ম', নংলাই, লিডুৰ সমীপৰ মৌলাং, লাংফাকে, টিৰাপ গেটৰ সমীপৰ নিংগাম আৰু জাগুনৰ সমীপৰ ফানেংৰ উপৰিও তেওঁলোকৰ বসতি সম্প্ৰসাৰিত অৰুণাচলৰ নামচাই জিলা আৰু চাংলাং জিলা, অসমৰ মাৰ্ঘেৰিটা, কেতেটং, ডিব্ৰুগড় চহৰ, নাহৰকটীয়া লংজং, চেৰেপাজান, আলিছিগা আদিতো

স্থায়ীভাৱে সংস্থাপিত হৈছে। ১৭৭৫ চনত অসমলৈ প্ৰব্ৰজন কৰি অহা টাইফাকেসললৰ মাজত এতিয়াও সামাজিক-সাংস্কৃতিক স্বকীয়তা বৰ্তি আছে। সাংস্কৃতিক সমলেৰে চহকী টাইফাকে সকলৰ মাজত ভাষা-সাহিত্য, গীত-মাত, উৎসৱ-পাৰ্বণ, সামাজিক তথা আধ্যাত্মিক আচাৰ-অনুষ্ঠান, খাদ্যাভাস, সাজপাৰ আদি উপাদানসমূহেই প্ৰধান।

উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত প্ৰচলিত অন্যান্য টাই জনগোষ্ঠীয় ভাষাসমূহৰ দৰে ফাকে ভাষাও চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত। অসমৰ অন্যান্য টাইগোষ্ঠীয় লোকৰ দৰে ফাকে সকল দ্বিভাষী। ঘৰুৱা জীৱনত নিজৰ ভাষা আৰু ওচৰ-চুবুৰীয়া অন্যান্য ভাষীৰ লগত অসমীয়া ভাষাৰে যোগাযোগ কৰি আহিছে। শৈক্ষিক ক্ষেত্ৰত আৰু ৰাজহুৱা জীৱনত অসমীয়া ভাষা প্ৰয়োগ কৰে। ফাকে ভাষা সুৰ প্ৰধান আৰু একাক্ষৰী। তেওঁলোকৰ ভাষাৰ নিজা লিপি আছে। এই লিপি ব্ৰাহ্মীলিপিৰ অন্তৰ্গত টাইলিপি আৰু ই বৃত্তাকাৰী। কেইবাশ বছৰৰ পূৰ্বে টাই জনগোষ্ঠীয় লোকসকলে বৌদ্ধ ধৰ্ম গ্ৰহণৰ সমসাময়িকভাৱে টাই সমাজত ব্ৰাহ্মী লিপিৰ ব্যৱহাৰ আৰম্ভ কৰে। তেতিয়াৰ পৰাই বহু মৌখিক সাহিত্যিক লিখিত ৰূপ দিয়াৰ সূচনা হয়। বিশেষকৈ বৌদ্ধ ধৰ্ম সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন ধৰণৰ কাহিনী যেনে বৌদ্ধধৰ্ম প্ৰচাৰৰ বাবে সেই সময়ছোৱাত ইন্দোচীন খণ্ডলৈ যোৱা বৌদ্ধ ধৰ্ম প্ৰচাৰকসকলে প্ৰচাৰ কৰা বোধিসত্ত্ব, জাতকৰ কাহিনী আদিবোৰৰ লিখিত ৰূপেৰে প্ৰচাৰৰ ব্যৱস্থা কৰি টাইসকলক সংস্কাৰ আৰু জীৱনবোধৰ শিক্ষা দিয়াৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। ধৰ্মীয় গুৰুসকলে এনে পুথিক ধৰ্মৰ প্ৰতিনিধি ৰূপত প্ৰতিষ্ঠা কৰি ধৰ্ম প্ৰচাৰত সকল হৈছিল। তেতিয়াৰে পৰা পৰম্পৰাগত ভাৱে সেইদিনৰ পৰম্পৰা আৰু সামাজিক দৰ্শনে টাইসকলৰ মাজত পুথিক বিশেষ সন্মান জনোৱা আৰু ভক্তি ভাৱনাৰ দৃষ্টিৰে চাবলৈ শিকোৱা প্ৰথা চলি আহিছে। ধৰ্মৰ সৈতে পুথিৰ সম্পৰ্ক আৰু সেইবোৰ সংৰক্ষণৰ পৰম্পৰাই টাইফাকে ভাষা আৰু সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰখন চহকী কৰি এক সুন্দৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হ'ল। সুৰ বিশিষ্ট টাই ফাকে ভাষা কেৱল শব্দ উচ্চাৰণতে নিহিত হৈ নাথাকি ই দৈনন্দিন কথন ভংগীবোৰতো সুৰৰ প্ৰয়োভৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। কথন ভংগীত সুৰৰ প্ৰভাৱ আৰু গুৰুত্ব কিমান; ব্যৱহাৰিক জীৱনত সেই সুৰৰ কাৰ্যকাৰিতা সম্পৰ্কে অনুধাৱন কৰিবলৈ হ'লে লোকগীত, আশীৰ্বাদ, লোক কাহিনী, সাঁথৰ, ফকৰা-যোজনা আদিৰ সহায় ল'ব লাগিব। টাই ফাকে সমাজত মৌখিক আৰু লিখিত দুয়োবিধ সাহিত্যৰ চহকী পৰম্পৰা প্ৰচলন আছে। মৌখিক সাহিত্যৰ ভিতৰত আছে বিভিন্ন লোকগীতি পৰম্পৰা, আশীৰ্বাদ দিয়া প্ৰথা, ধৰ্মীয় কাম-কাজত ব্যৱহৃত কথাংশখিনি, নিচুকণি গীত, বিভিন্ন সাধু কথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, ফকৰা-যোজনা আদি। আনহাতে লিখিত সাহিত্যৰ মাজত আছে ধৰ্মীয় পুথিৰ অনুবাদ, সামাজিক ৰীতি-নীতি সম্পৰ্কীয় পুথি, সৃষ্টিশীল লোকে প্ৰণয়ন কৰি যোৱা মৌলিক ৰচনাৰাজি অৰ্থাৎ মহাকাব্য ৰূপত তেওঁলোকৰ মাজত প্ৰচলিত সাহিত্য আৰু পৰম্পৰাগতভাৱে লিখিত বুৰঞ্জী পুথি আদি।

বষয় অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

টাইফাকে সমাজ জীৱনত লোকগীতৰ চৰ্চা বিভিন্ন ধাৰাৰ মাজেৰে উজ্জীৱিত হৈ আহিছে। সমাজ জীৱনৰ প্ৰায় সকলো বিষয়, সকলো পৰ্যায়ৰ আৱেগ অনুভূতি এই লোকগীতসমূহে সামৰি ল'বলৈ সক্ষম হৈছে। টাইফাকে লোকজীৱনৰ দুখৰ দিনৰ বিষণ্ণ ভাৱনা, সুখ, হেঁপাহৰ আনন্দ মুহূৰ্তবোৰৰ প্ৰতিফলন লোকগীতৰ মাজত অন্তৰ্লীন হৈ প্ৰকাশ ঘটিছে। এই গীত মাতত লোক মনৰ দ্যাতনাই নহয় ভক্তি ভাৱনাৰ মননশীল পৰিৱেশ প্ৰতিফলিত হৈছে সমৃদ্ধিশালী হৈছে। তেনেদৰে শিশুমনক নীতিশিক্ষা দিয়াৰ চলেৰে গীতিময়তাৰে পৰিৱেশন কৰাৰ পৰম্পৰা টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। আনহাতে এই লোকগীতৰ মাজত নিহিত থকা বিশিষ্টতাখিনি, এইবোৰৰ সাহিত্যিক মূল্যায়ন, প্ৰয়োগ কৰা উপমা, অলংকাৰ আদিবোৰৰ বিষয়ে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব দেখা যায়। এই সম্পৰ্কে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে। এই বিষয়টোৰ প্ৰাসংগিকতা উপলব্ধি কৰি বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে আলোচনাটি আগবঢ়োৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনত মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনত টাই ফাকে সমাজত প্ৰচলিত মৌখিক সাহিত্যৰ ভিতৰত লোকগীত সমূহেই প্ৰধান। এই গীতসমূহৰ বিষয়বস্তু আৰু উপস্থাপন শৈলী, সুৰ আদিক সামৰি এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ আলোচনাত অন্তৰ্ভুক্ত কৰি লোৱা হৈছে।

বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ ঃ টাই ফাকেসকলৰ সমাজ জীৱনত লোকগীতৰ চৰ্চা বিভিন্ন ধৰণেৰে প্ৰচলিত আছে। টাই ফাকে সমাজ জীৱনৰ সকলোবোৰ বিষয়, মানুহৰ আৱেগ-অনুভূতি, ভক্তি-ভাৱ, নীতিশিক্ষা মূলক গীতসমূহ সুৰ সংগত কৰি পৰিৱেশন কৰা পৰম্পৰাৰ প্ৰচলন আছে। টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত লোকগীতসমূহক অন্তনিৰ্হিত অৰ্থ, ব্যাখ্যা তথা উপলক্ষৰ ভিত্তিত কেইবাটাও ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। [১] (পেইম থি গোঁহাই, পৃ.৪৬)

সেইবোৰ হৈছে —

ক) ধৰ্মীয়, উপাসনা লগত জড়িত লোকগীত
খ) উৎসৱৰ লগত জড়িত লোকগীত
গ) আনন্দ, বিনোদনমূলক লোকগীত
ঘ) খেল-ধেমালিমূলক লোকগীত
ঙ) কৃষিকৰ্ম/শ্ৰমৰ লগত জড়িত লোকগীত
চ) আখ্যান গীত, মালিতা
ছ) নিচুকনি গীত (খাম লাওলুক অন')
জ) উপদেশমূলক বা নীতিশিক্ষামূলক গীত
ঝ) আৰ্শীবাদমূলক গীত

আনহাতে, গণেশ চন্দ্ৰ শৰ্মা ঠাকুৰে তেওঁৰ The Tai Phakes of Assam (2015) গ্ৰন্থত টাইফাকে সকলৰ লোকগীতক পাঁচটা শ্ৰেণীত বিভক্ত কৰিছে।[২] (ঠাকুৰ, পৃ. ২০৮) সেইকেইটা হৈছে —

১. মুখাম্ (Mokham) -প্ৰণয়মূলক গীত
২. মু খাম্ ঐ মা পিঙ চা - ছন্দোৱদ্ধ প্ৰেমৰ গীত
৩. মু খাম্ লাও লুক্— নিচুকনি গীত (Lullaby)
৪. খ্যে খ্যায়াং — সমূহীয়া গীত
৫. মু খাম্ চয় য়য় — কৃষিকৰ্মৰ লগত জড়িত গীত (Special festival song)

আনহাতে ভীমকান্ত বৰুৱাই ফাকেসকলৰ লোকগীতক ৭টা ভাগত ভাগ কৰি বৰ্ণনা কৰিছে।

১। নিচুকনি গীত - মখাম লাও লুক
২। বৰ্ণনামূলক বিহুগীত - খ্যে খ্যাং
৩। ছন্দোৱদ্ধ প্ৰেমৰ লোকগীত - ছা ঐ, যাম ঐ
৪। ধান বনা গীত - ম খাম ছয় য়য়
৫। প্ৰাৰ্থনা গীত - লিক পাই ফ্ৰা
৬। মৈত্ৰী ভাৱনা আৰু বসুন্ধৰাক সাক্ষী কৰি গোৱা গীত - লিক ৱৈ মাছাংইনি
৭। বিলাপ বা বিননি - কাম হাই কাপ'
(বৰুৱা, পৃ. ২২১-২২৫)

টাইফাকে লোকগীত সমূহক উপস্থাপন শৈলী, সুৰ আৰু বিষয় বস্তু অনুসৰি ভাগ কৰিব পাৰি। এই শ্ৰেণীবিভাজন উক্ত দুয়োটা শ্ৰেণীবিভাজনৰ অন্তৰ্গত কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি। এই সমূহৰ ভিতৰত —'চা-ঐ', 'চয় য়য়', 'খ্যে খ্যাং', 'খাম নন চ্ছান', খাম লাও লুক অন', 'খাম লেইন', 'খাম লাক মলম', 'খাম পাই ফ্ৰা', 'খাম পু চন লান', 'খাম ঐ', 'খাম য়ন কং', 'খাম তা', 'লিক ৱৈ', 'খাম ফ্ৰা', 'খাম কাম্মাথান', 'খাম চিখু' আদি অন্যতম।

টাইফাকে সমাজত প্ৰচলিত এই লোকগীতৰ বিষয়বস্তুৰ প্ৰমূল্য লোকশিল্পীসকলে সমাজৰ নীতি শিক্ষা, জীৱনমুখী শিক্ষাৰ নীতি কথাবোৰ সুকীয়াকৈ উপস্থাপন কৰে। টাই ফাকে ভাষা লোককাহিনীবোৰত প্ৰচুৰ পৰিমাণে আছে। তেওঁলোকৰ গীতসমূহত বস্তু, জীৱ, ৰীতি-নীতি আৰু পৰম্পৰাৰ উৎপত্তি বৰ্ণনা কৰাৰ উপৰিও সামাজিক লোক ৰীতি-নীতি আৰু লোক কলাৰ প্ৰদৰ্শনো কৰি আহিছে। টাই ফাকে সকলে মূল গৃহভূমিৰ পৰা দীঘলীয়া সময়ৰ প্ৰব্ৰজনৰ সময়ত বিভিন্ন প্ৰাকৃতিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, সামাজিক কাৰণত বহুতো লিখিত নথি হেৰুৱাইছে, যেনে ঐতিহাসিক নথিপত্ৰ। কিন্তু তেওঁলোকৰ অতীত ইতিহাস যেনে তেওঁলোকৰ মূল গৃহভূমি, প্ৰব্ৰজনৰ পথ আদিৰ বিষয়ে লোকগীত সমূহৰ জৰিয়তে পুনৰ নিৰ্মাণ কৰা সম্ভৱ। তেওঁলোকৰ কিছুমান লোকগীতত তেওঁলোকৰ প্ৰব্ৰজন পথৰ স্থানৰ নাম উল্লেখ কৰা হৈছে, যেনে— ফাকে চেৰিং, নো গটাও আদি।

তু তি হং নঙ নেং ঐ
য়েইন যাক পা হাও য়ু পীন নন য়েইন
কত কং হং নোগটাও
মীং লাউঙ তীঙ হাও চাও য়ে পীন ননয়াও[৩]
(ফুকন, পৃ. ২০৯)

ইয়াৰ অৰ্থ হৈছে আমি সুন্দৰ বিলৰ কাষত শান্ত পৰিৱেশেৰে আবৃস্থ মছৰ শেলাই চাদৰ পাৰি শুওঁ আৰু য'ত চৰাইৰ গানবোৰে বতাহ মুখৰিত কৰি তোলে।

মী হাও অন ঐ নীঙ চিন অন চে পয়
মী হাত য়াও য়ে হীঙ চিন মাই চম খ' হম
ফুং মাও মীঙ খাম খাও পান লু'ম লু'ম খাও হাই[৪]
(ফুকন, পৃ. ২০৯)

এই গীতটোৰে টাই ফাকে টাইলু আৰু মৌনখামৰ মাজত থকা সৌহাৰ্দ্যপূৰ্ণ সম্পৰ্ক প্ৰতিফলিত কৰে।

ক) ধর্মীয়, উপাসনাৰ লগত জড়িত লোকগীতঃ বৌদ্ধ ধর্মাৱলম্বী টাই ফাকেসলকৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণৰ প্রার্থনা বা স্তুতি গীত মৌখিকভাৱে প্রচলিত হৈ আহিছে। এনে গীতবোৰৰ বিষয়বস্তু প্রায় একেধৰণৰ হ'লেও গীতবোৰত বহু মৌলিকত্ব বিচাৰি পোৱা যায়। ব্যক্তি বিশেষৰ স্তুতিবোৰত নিজা চিন্তা ভাৱনাৰে বা বোধেৰে নতুন নতুন শব্দ চয়ন সংযোগ কৰি পৰিৱেশন কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। ধর্মীয় উপাসনাৰ লগত জড়িত গীত সমূহৰ ভিতৰত খাম পাই ফ্রা, খাম লিক্ লু ছি মি, খাম লিক্ তাং চম্ খাম লিক্ চাং কেন, খাম লিক্ চিখু ফ্রা, চাই লিক্ে প্রধান।

(i) **খাম পাই ফ্রা ঃ** বৌদ্ধ ধর্মাৱলম্বী টাই ফাকেসকলৰ মাজত প্রচলিত বুদ্ধক স্তুতি কৰা গীত সমূহক খাম পাই ফ্রা বোলে। 'খাম পাই ফ্রা' মানে ফাকে ভাষাত খাম মানে কথা বা গীত পাই ফ্রা মানে বুদ্ধৰ স্তুতি। টাই ফাকে সকলৰ প্রতিটো পৰিয়ালে পুৱাৰ ভাগত পৰিয়ালৰ সদস্যসকলে আহাৰ গ্রহণৰ পূর্বে ভগৱান বুদ্ধৰ সন্মুখত আহাৰ আগবঢ়াই স্তুতি কৰে। সেই সময়ছোৱাত ত্রিৰত্ন আৰু পঞ্চশীল আওৰাৰ উপৰিও বুদ্ধৰ সন্মুখত জীৱনৰ আৰু পৰিয়ালৰ কুশল কামনা কৰি আৰু ভৱিষ্যতৰ বুদ্ধ 'আলিমিটেয়া'পক সাক্ষাৎ লাভৰ প্রার্থনাৰে স্তুতি কৰে। নির্দিষ্ট উপলক্ষ্যত গোৱা প্রার্থনাৰ মূল কাঠামো একে হ'লেও ব্যক্তি বিশেষে তাৰ উপস্থাপন তথা গায়ন শৈলী, শব্দ চয়ন আদিত পার্থক্য থকা পৰিলক্ষিত হয়। পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা খাম পাই ফ্রা বোৰ প্রজন্মৰ পিছত প্রজন্ম অতিক্রম কৰি আহোতে পৰিৱেশন শৈলীৰ তাৰতম্য হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিভিন্ন ধর্মীয় অনুষ্ঠান, পূর্ণিমা, অমৱস্যা তিথি, উৎসৱ অনুষ্ঠান আদি উপলক্ষে স্তুতি কৰে। এই গীতসমূহ স্তুতিৰ সময় আৰু বিষয় অনুসৰি পৰিশেৱনৰ ভিত্তিত বেলেগ বেলেগ হয়। যেনে—লিক্ লু ছিমি (মম দান কার্য), লিক্ তাং চম (নৈৱেদ্য আগবঢ়োৱা সময়ৰ প্রার্থনা), লিক্ চাংকেন (চাংকেন উৎসৱৰ সময়ৰ প্রার্থনা), লিক্ চিখু ফ্রা (বুদ্ধ বন্দনা) লিক্ চাই লিক্ (বুদ্ধ বন্দনা) আদি।

অ কা ছা মৌন ঐ খা মা লু ছি মি কই ছা হাউ নাই পেইন খং ফাক নিক পান ফা চৌন না পানলুন। ছাই ফাই হৌৱ মাই মাই পেইন মু। হাউ পেইন ৱং ফা ছা ৱা ফু পং চাইং। হৌ কৌম হৌ য়ন হৌ আলং ৱাং ৱিং। ছাই ফাই তং ৱাং ৱিং মাউ ফাক। নাও ৱি, নাও নৌন খৌন কাং হাও কৌং কাং। হাউ নাই হৌপ তৌং চাক চং নং লা মা হা মিতেইয়া খ্যত খাও নিক পান ৱেইং খাম তা থা নৈ নে মৌন ঐ মৌন ঐ।[৫] (গোহাঁই পৃ. ২৬)

(ii) **খাম লিক্ লু ছি মি ঃ** টাইফাকে সকলে প্রার্থনা কার্য সমাপনৰ সময়ত স্তুতি কৰোতে বিভিন্ন ধৰণৰ বন্দনা কৰে। মম জ্বলোৱাৰ সময়ত বন্দনা কৰা গীতকে খাম লিক্ লু ছি মি বোলে। 'খাম' মানে কথা বা গীত 'লিক' মানে পুথি, 'লু চি মি' হৈছে মম দান কার্য।

(iii) **খাম লিক্ তাংচম ঃ** এই গীত বা বন্দনা টাই ফাকে সকলে ঘৰুৱা পৰিৱেশত বা উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ সময়ত বুদ্ধ মূর্তিৰ সন্মুখত নৈবেদ্য যেনে 'ফুল' আগবঢ়োৱাৰ সময়ত কৰা প্রার্থনা গীত। এই গীত কিছু লোকে পালি ভাষাত পৰিৱেশন কৰে যদিও টাই ফাকে ভাষাতো পৰম্পৰাগত ভাৱে এই গীত পৰিৱেশন কৰি আহিছে। টাই ফাকে ভাষাত পৰিৱেশন কৰোতে নিজা মৌলিক ভাৱনা সংযোজন কৰি বুদ্ধক স্তুতি কৰে।

অ কা ছা মৌন ঐ খা মা তা নু ফা হৌ মৌং লাইং চাং। মোং নুছি পেত মক ঔম ফা পুত চাং লাইং তা। খা ক ছা থা ছেইন চাউ অন খা ও ত। মৌৱ কাম ছম খাউ লু চন ঙন কাপ চাও। হেইত মা য়াও পান অন পা পাম। হাউ নাই পৌন ছে ছি তি মুক ফাই কাম ঙা লাই। ছিং ছে ফাউ নাই য়া মি খি হাও নাই খৌন তৌং হান মৌং ফি তি তেইং নেৱান মৌন ঐ মৌন ন।[৬] (গোহাঁই, পৃ. ২৮)

(iv) **খাম লিক্ চাং কোন ঃ** বৌদ্ধ ধর্মাৱলম্বী টাই ফাকে সকলৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ উৎসৱ হৈছে পয় চাংকেন। 'পয় চাংকেন'ৰ মূল পর্বৰ সময়ত প্রার্থনা কৰোতে পৰিৱেশন কৰা গীতি ধাৰাক খাম লিক্ চাং কেন বুলি কোৱা হয়।' এই গীত সমূহত প্রকৃতি ৰূপ, বিশ্ব ব্রহ্মাণ্ডৰ গুণ গৰিমা, বুদ্ধৰ জন্ম, বুদ্ধত্ব লাভৰ উপৰিও গাঁওবাসীৰ কুশল-মঙ্গলৰ বাবে প্রার্থনা কৰে।

(v) **খাম লিক্ চিখু ফ্রা ঃ** খাম লিক্ চিখু ফ্রা হৈছে বুদ্ধক কৰা বন্দনা। এই বন্দনা যিকোনো সময়ত, পৰিৱেশত, ঠাইত বন্দনা কৰা হয়। পুৰুষ-মহিলা লিংগ, বয়স নির্বিশেষে এই বন্দনা পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। এনে বন্দনাবোৰ পৰম্পৰাগতভাৱে পৰিৱেশন কৰি যাওতে ব্যক্তিভেদে নতুন শব্দ সংযোজন কৰা দেখা যায়। আনহাতে সংযোজিত সুৰৰ বাবে বন্দনাসমূহ শুনিবলৈ অতি মনোমুগ্ধকৰ হয়। তেনেদৰে লিক্ চাই লিক্, লিক্ চিখু ফ্রাৰ দৰে বুদ্ধ বন্দনামূলক গীতৰ প্রচলন আছে।

(খ) উৎসৱৰ লগত জড়িত লোকগীত ঃ টাই ফালেসকলৰ মাজত উৎসৱ-অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ প্ৰচলন আছে। এই গীতসমূহৰ ভিতৰত খাম য়ন কং আৰু খাম লাক মলম আদি উল্লেখযোগ্য।

(i) খাম য়ন কং ঃ খাম য়ন কং হ'ল সমূহীয়াভাৱে ঢোল আৰু অন্যান্য বাদ্য পৰিবেশনৰ সময়ত গোৱা গীত। ৰাজহুৱা তথা ব্যক্তিগত পৰ্যায়ত আয়োজন কৰা দানোৎসৱত ডেকাসকলে টাইফাকে পৰম্পৰাগত বাদ্যসহিতে নৃত্যত অংশ গ্ৰহণ কৰে। টাই ফাকে সমাজত উদযাপিত উৎসৱসমূহত গীত পৰিৱেশন আৰু কং বাদ্যৰ তালে তালে তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত নৃত্য কৰি গৃহস্থ আৰু ৰাইজক প্ৰশংসা কৰি শিল্পীসকলৰ বাবে দান-দক্ষিণা বিচাৰে। এই গীতসমূহৰ পৰিৱেশন কৰিবলৈ গৃহস্থই বা ৰাইজৰ ফালৰ পৰাও ডেকাসকলক উদ্দেশ্যি গীতেৰে আহ্বান জনায়। এনে গীত সাধাৰণতে তাৎক্ষণিকভাৱে সৃষ্টি কৰি পৰিৱেশন কৰে। পৰিৱেশন আৰু পৰিস্থিতি অনুৰূপে শিল্পীসকলে গীতৰ সুৰ তথা ছন্দ ধৰি ৰাখি নতুন নতুন শব্দ চয়ন সংযোজন কৰি গীতসমূহ পৰিৱেশন কৰে। এই গীতসমূহকে খাম য়ন কং বোলে।

চৌম ক'প্য লা
পি ফা চাও নি চু ত' ঐ
খুম চাথে।
হী নাই কৌ তান ভিন পাও
হেইত পৌং - লৌম পাও হৌ খন
মাও নু ছে খাউ তান।
পৌং পে পই লা,
হেইত পৌং - লৌম পাও হৌ খন
মাও নু ছে খাউ তান।
পৌং পে পই লা,
হেইত পৌং আই ল' লৌম ঔম
মৌং কৌন মৌত খুন...
চৌং নান, খাও চাও চি খু মাতা লি
টেইম পাপ পে য়ুং কুফান য়াও না
মাং চা, খুন য়াউ ফাউ হান অন প' আম
লৌম ফিং ঐ। [৭] (গোহাঁই, পৃ. ৪২)

কোনো কোনো সময়ত এই গীতক খাম ঐ য়ন চু কা কং বা খাম কাকং বুলি কোৱা হয়। খাম য়ন চু কা কং ৰ অৰ্থ হৈছে ঢোল পৰিৱেশন কৰাৰ বাবে মাননি আহ্বান কৰা গীত। [৮] (গোহাঁই, পৃ. ৮৯) ঢোল লৈ বা কা কংৰ ছেৱে ছেৱে নৃত্য কৰি গীত পৰিৱেশন কৰাটো অন্যতম টাইফাকে সকলৰ ৰাজকীয় পৰম্পৰা। যিকোনো ধৰ্মীয় কাম কাজত আৰু কোনো বিশিষ্ট অতিথিক আদৰিবলৈ এই নৃত্য পৰিৱেশন কৰা হয়। ফাকেসকলৰ ডেকা-গাভৰু আদি কৰি সকলোৱে সমানে অংশ গ্ৰহণ কৰা এই গীতসমূহ সকলো উপলক্ষত পৰিৱেশন কৰা নহয় বা কৰিলেও মাননি বিচাৰি গীত গোৱা নহয়, তাৰ পৰিৱৰ্তে প্ৰশংসাসূচক গীত পৰিৱেশন কৰে। গীত পৰিৱেশনৰ শেষত মুচুংত্রী অৰ্থাৎ বসুন্ধৰালৈ সেৱা জনাই দান দক্ষিণা খিনি গ্ৰহণ কৰি গৃহস্থ বা ৰাইজলৈ আশীৰ্বাদ কৰে।

(ii) **খাম লাক মলম ঃ** ফাকে সকলে উদযাপন কৰা মাইক' চুম ফাই উৎসৱত পৰিৱেশন কৰা ব্যাংগাত্মক বা ধেমেলীয়া গীতি ধাৰাই হৈছে খাম লাক মলম। বৰ্তমান সময়ত চৰ্চা স্তিমিত হৈ অহা এই গীতিধাৰা মাইক' চুম ফ্ৰাইৰ উৎসৱত ৰাজহুৱা ভোজৰ বাবে ৰাইজে মুক্ত হস্তে দান কৰা খাদ্য সামগ্ৰী সংগ্ৰহ কৰিবলৈ যাওঁতে পৰিৱেশন কৰা হয়।

(গ) আনন্দ, বিনোদনমূলক লোকগীত ঃ ফাকে সকলৰ লোক গীতৰ ভিতৰত আনন্দ, বিনোদনমূলক লোকগীতসমূহ উল্লেখযোগ্য। দৰাচলতে খাম য়ন কং, খাম লাক মলম উৎসৱৰ সৈতে জড়িত গীতসমূহক এই শ্ৰেণীৰ গীত হিচাপে আলোচনা কৰা হয়। এই শাখাত অন্তৰ্ভুক্ত আন এটি লোকগীতি ধাৰা হৈছে চা ঐ, খ্যে খ্যাং, খাম হং চাও আদি।

(i) **চা ঐ ঃ** চা ঐ হৈছে টাই ফাকে সকলৰ মাজত প্ৰচলিত এক প্ৰকাৰৰ বনগীত। এই গীতসমূহৰ মূল উপজীব্য হৈছে ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰেমপ্ৰীতি। এই গীতত প্ৰকৃতি, প্ৰকৃতিক লৈ নানান বৰ্ণনা মূল অলংকাৰ বুলিব পাৰি। প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন উপাদানৰ সৌন্দৰ্যৰ বৰ্ণনা, জোন-তৰা, ফুল-পখিলা, গ্ৰাম্য পৰিৱেশ আদিবোৰক প্ৰতীক উপমা হিচাপে লৈ ব্যৱহাৰ কৰি ডেকা-গাভৰুৰৰ প্ৰেম নিবেদন এই গীত সমূহত প্ৰতিফলিত হয়। চা ঐ গীতৰ প্ৰধান বিষয়বস্তু ডেকা-গাভৰুৰ বৈষয়িক প্ৰেম, আৰু প্ৰেম নিবেদন। ইয়াৰ উপৰিও জন জীৱনৰ সকলো বিষয়, দুখ-বিষাদ, হৰ্ষ-আনন্দৰ অনুভূতিও প্ৰকাশ পায়। চা ঐ গীত সমূহ দুটা অংশত বিভক্ত হৈ থাকে। প্ৰথম অংশত পোনপটীয়াকৈ প্ৰকাশ নকৰি প্ৰতীক উপমা আদিৰে

উপস্থাপন কৰা হয় আৰু দ্বিতীয় অংশত ক'বলৈ বিচৰা মূল কথাখিনি প্ৰকাশ পায়। যেনে—

(অসমীয়া অনুবাদ)
তুমি ক'ৰপৰা আহি পালাহি
এই গভীৰ অৰণ্যৰ উপবনত ঘূৰি ফুৰি
পূৰ্ণিমাৰ চন্দ্ৰমাৰ দৰে উজ্বলি উঠিছে।
কোমল বয়সীয়া গাভৰু
তুমি কোন দেশৰ পৰা আহিছা?
এই অৰণ্যৰ 'চ্চামকা' উপবনত ঘূৰি ফুৰি উজ্বলি থকা
পূৰ্ণিমাৰ চন্দ্ৰমাৰ দৰে উজ্বলি উঠিছে।[৯]
(গোহাঁই, পৃ. ৩৭)

অতীতৰ পৰা এনে গীতসমূহ মৌখিকভাৱে চলি আহিছে। স্বভাৱ শিল্পীসকলে থাওকতে ৰচনা কৰি এনে গীত পৰিৱেশন কৰে। চা ঐ গীতত অতীতৰ চিন্তা চেতনাৰ প্ৰকাশ ঘটাৰ লগতে আধুনিক যুগৰ ধ্যান ধাৰণাৰো প্ৰকাশ ঘটিছে।

আমি টাই জাতি, এতিয়াৰ যুগৰ নহয়
চা ঐ, হা লৈ
সেই দিনৰ চৌখানফা দিনৰ
আমি টাই জাতি
এতিয়াৰ যুগৰ মুঠেই নহয় চা ঐ, হালৈ
এই ধৰণী আৰম্ভ হোৱাৰ সময়ৰ আমি।[১০]
(গোহাঁই, পৃ. ৪০)

'চা ঐ' শব্দৰ পোনপটীয়া অর্থ ব্যাখ্যা কৰিব নোৱাৰি যদিও ই স্বগতোক্তিমূলক। এনেকুৱাও ঘটিছিল, এনেকুৱাই আছিল এনেধৰণৰো হয় শব্দটিয়ে তেনেধৰণৰ অর্থ প্ৰকাশ কৰে। এটা সময়ত ডেকা-গাভৰুসকলেই চা ঐ গীত ৰচনা আৰু পৰিৱেশন কৰিছিল। যুগ যুগ ধৰি লোক শিল্পীসকলে এই গীতি ধাৰাক নিজৰ ধৰণেৰে পৰিমার্জন, পৰিৱর্ধন কৰি পৰিৱেশন কৰি আহিছে। বর্তমান সময়ত এই লোকগীতি ধাৰাৰ পৰিৱেশ প্ৰায় নাইকীয়া হৈছে বুলিব পাৰি। বয়োজ্যেষ্ঠ সকলেহে চা ঐ গীতিধাৰা চর্চা কৰি বর্তাই ৰাখিছে।

(ii) **খ্যে খ্যাং ঃ** 'খ্যে খ্যাং' হ'ল সমূহীয়াভাৱে পৰিৱেশন কৰা গীত আৰু ইয়াৰ মূল বার্তা ধেমেলীয়া আৰু আনন্দদায়ক। 'খ্যে খ্যাং' গীতসমূহ মূল শিল্পীয়ে প্ৰথমতে গীতটি জুৰি যায় আৰু অন্য সহশিল্পী সকলে তাক পুনৰবাৰ দোহাৰে। খ্যে খ্যাং গীত লোকশিল্পীৰ সম্পূর্ণ নিজা ৰচনা। কোনো সমসাময়িক ঘটনাৰ স্মৰণ, বিশেষ ঘটনাৰ উল্লেখ, বিশেষ অনুষ্ঠান বা বিশেষ ব্যক্তিক স্মৰন কৰা স্মৰনীয় কৰি তোলাৰ অর্থে 'খ্যে খ্যাং' গীতিধাৰাত শব্দ আৰু বাক্য সজাই লৈ পৰিৱেশন কৰা হয়। এনে গীতবোৰত সম্পূর্ণ কাহিনীটো কোৱা হয় বাবে গীতবোৰ দীঘলীয়া হয়। অসমীয়া জোৰা নামৰ সৈতে খ্যে খ্যাং গীতৰ সাদৃশ্য আছে। এই গীতৰ বিষয়বস্তু যিকোনো ধৰণৰ হয়। অতি গহীন আৰু সমাজ জীৱনৰ গুৰুত্বপূর্ণ বিষয়ক লৈ কেতিয়াবা খ্যো খ্যাং ৰচিত আৰু পৰিৱেশিত হয়। কেতিয়াবা দর্শকৰ মনোৰঞ্জন দিবৰ বাবে সাধাৰণ বিষয় ৰস লগাই ব্যাংগাত্মকভাৱে অথচ ছন্দোবদ্ধভাৱে খ্যে খ্যাং পৰিৱেশন কৰা হয়। সাধাৰণতে এনে গীতবোৰ উপলক্ষমূলক হোৱাৰ বাবে এবাৰ ৰচনা কৰা খ্যে খ্যাং এবাৰহে পৰিৱেশন কৰা হয়। কাৰণ এই গীতত অনুষ্ঠানটোৰ বর্ণনা সন্নিৱিষ্ট হৈ থাকে।

খ্যে খ্যাং গীতৰ প্ৰথম পদটো পৰিৱেশন কৰোতে দ্বিতীয় শাৰী ব্যাংগাত্মক হ'ব নে গহীন হ'ব অনুমান কৰিব পাৰি। গীতবোৰ পৰিৱেশন কৰোতে প্ৰথম শাৰীৰৰ লগত দ্বিতীয় শাৰীৰ সাদৃশ্য নাথাকে। দ্বিতীয় শাৰীৰ লগত তৃতীয় শাৰীৰ শেষৰ শব্দৰ মিল থাকে। আনহাতে তৃতীয় শাৰীৰ চতুর্থ শাৰীৰ লগত মিল থকাৰ পৰিৱর্তে চতুর্থ শাৰীৰ শেষৰ শব্দ পৰৱর্তী পদৰ বিষয়বস্তুৰ প্ৰথম শাৰীৰ সৈতে মিল থাকে। অর্থাৎ শাৰীবোৰ ক, খ - খ, গ - গ, ঘ-ঘ, ঙ এনেদৰে আগবাঢ়ি গৈ থাকে। উদাহৰণস্বৰূপে—

পাথামা খ্যে খ্যাং পাই অ'ৱা মৌ নুং নাও চাই লে কি লৌম থুপ পাই চামাহা কান্ত মৌ কাহান খিং কৌন চিং খান থা মজাং টুং পৌঙ য়ং মাও ইটান হান থুং চাং চাৰা ৰাই মাও হৌন মজাং মান মান কৌক খাম ফ্রা খাও জা লাই পৌং অনিক্ষা পি মাও থুংমা পয় চাংকেন দোখা নাই নাই নাও জ্যেং পে তাঙ চম নাঙ যেন টনি যৌম ন্যং ইং ফাক চে পাই লৌং খ্যা
.....
..... [১১] (ফুকন, পৃ. ৩১২)

(iii) **খাম হং চাও মাউ ঃ** টাই ফাকে বিবাহ অনুষ্ঠানৰ সময়ত কইনা ঘৰত দৰাৰ উপস্থিতিত সকলো সামাজিক কর্ম সমাজৰ জ্যেষ্ঠসকলৰ উপস্থিতি সমাপনৰ পিছতে

কইনাক দৰাৰ ঘৰলৈ আদৰি আনিবলৈ ধেমেলীয়াভাৱে পৰিৱেশন কৰা গীতি ধাৰাকে খাম হং চাও মাউ বুলি কোৱা হয়। দৰা-কইনা উভয়ৰে ঘৰ একেখন গাঁৱত হ'লে কইনাক নিজৰ কোঠাৰপৰা ওলাবৰ বাবে আৰু ৰাস্তাত মাজে সময়ে দৰাৰ পদুলিমুখ পোৱালৈকে চেগাচোৰাকাকৈ দৰা পক্ষৰ ফালৰ পৰা গীতটি পৰিৱেশন কৰে। দৰা-কইনা পৃথক গাঁৱৰ হ'লে কইনাৰ কোঠাৰপৰা কইনা ঘৰৰ পদুলিকৈ এই গীতটি পৰিৱেশন কৰা হয়। ই বিবাহ কার্য সম্পাদনৰ আনুষ্ঠানিক নীতি-নিয়মৰ ভিতৰত নপৰে যদিও সকলোৱে গীতটি পৰিৱেশন কৰাৰ পৰিৱেশত আনন্দ-উল্লাহেৰে ডেকা-গাভৰুৱে অংশ গ্ৰহণ কৰে।

মা হাউ লৈ, মা হাউ লৈ
খুন যাও, খুন চাও খাও ঐ মা হাউ লৈ
মা হাউ লৈ, মা হাউ লৈ
চাও মাও, চাও চাও খাও ঐ মা হাউ লৈ। [১২]

(গোহাঁই, পৃ. ৯৭)

(ঙ) **খেল-ধেমালিৰ গীত ঃ** লোকগীত সমূহ বিশ্বজনীনতা এক উল্লেখযোগ্য বৈশিষ্ট্য। সকলো সমাজতে সৰু ল'ৰা-ছোৱালীৰ খেলৰ লগত জড়িত গীতৰ উদাহৰণ পোৱা যায়। টাই ফাকে সমাজতো ওমলা গীত অথবা খেল-ধেমালিৰ গীতৰ প্ৰচলন আছে। টাই ফাকে সমাজত প্ৰচলিত খাম লেইন আৰু খাম নন চ্ছান এই শ্ৰেণীৰ লোকগীত।

(i) **খাম লেইন ঃ** সমবয়সৰ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে একে লগে সময় অতিবাহিত কৰোঁতে, খেলোতে কিছুমান গীত পৰিৱেশন কৰে। সেইবোৰ ধেমেলীয়া ধৰণৰ, ছন্দোৱদ্ধ গীত। এই গীত সমূহ পৰম্পৰাগত ভাৱে শিশুসকলৰ মাজত চলি আহিছে। বহুক্ষেত্ৰত কিছুমান অৰ্থহীন শব্দৰ সমষ্টি সাংগীতিক লয় বিশিষ্ট গীতসমূহে খেলৰ আমোদৰ যাত্ৰা যথেষ্ট বৃদ্ধি কৰে। আনকি এনে কিছুমান খেল গীতৰ অবিহনে খেলাৰ আনন্দই লাভ কৰিব নোৱাৰি। টাই ফাকেসকলৰ খাম লেইন দুই ধৰণৰ—এবিধ ধেমালিৰ চলেৰে গোৱা আৰু আনবিধ নীতি শিক্ষামূলক। সাঁথৰ বা খাম তা এই শ্ৰেণীৰ গীতি ধাৰাত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। খেলি থাকোতে প্ৰয়োজনীয় কথাবোৰ কিশোৰ-কিশোৰেয়ে সুৰত উপস্থাপন কৰে। এইবোৰ গীতিধাৰা কিশোৰে নিজে সৃষ্টি নকৰে। বৰঞ্চ পৰম্পৰাগত ভাৱে সমাজত চলি অহা ধৰণেৰে তেওঁলোকে পৰিৱেশন কৰে। এই গীতৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য হৈছে আনন্দ দান দিয়া বা সময়খিনি আনন্দৰে পৰা কৰোৱা। আনহাতে এই গীতৰ প্ৰধান বৈশিষ্ট্য হৈছে বাস্তৱধর্মিতা। গীতৰ বিষয় বস্তুত কোনোধৰণৰ অতিৰাঞ্জিত বা অলৌকিক ব্যাখ্যা আৰু কল্পনাপ্ৰসূত অদ্ভুত উপস্থাপন নাথাকে। তাৰ বিপৰীতে থাকে বাস্তৱ ঘটনা প্ৰবাহৰ ব্যাখ্যা আৰু উপস্থাপন। আনহাতে এই গীতৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য হৈছে যুক্তি আৰু বিশ্বাসযোগ্যতা। শিশুৰ সৰল মনক আনন্দ দিয়ে আৰু নীতিশিক্ষাৰে কৌতুহলী কৰি তোলে। উদাহৰণ—

ই চং লাই চাং হুই তা মাউ মত লাই নাম খুন
নাম লাই চাং মাউ খুন লাই লা পাং
লা লাই চাং মাউ পাং লাই মু মৌন
মু লাই চাং মাউ মৌন লাই মিচিং খিং তৌক লাং কাও
মিচিং খিং, লাই চাং মাউ তৌক লাংমু লাই লালিং থাও মাই লালিং, লাই চাং মাউ খাও মাই লাই মৌত চৌম কাপ হাং কাও মৌত চৌম, লাই চাং মাউ কাম হাং লিং লাই লাকা য়া হাং কাও লাকা, লাই চাং মাউ য়া হাং মৌত চৌম লাই কাও মানাই কিন কাই অন
কাই অন, লাই চাং মাউ মাহাউ কিন চা লাকা ত' কাও কৌ চৌপ লৌং মৌন না টাক টাক। [১৩] (গোহাঁই, পৃ. ৮৭)

(ii) **খাম নন চ্ছান ঃ** এই গীত নিচুকনি গীতৰ প্ৰায় সমপর্যায়ৰ। শিশুসকলক নীতিশিক্ষা দিয়াৰ উদ্দেশ্যে আনন্দ বিনোদনৰ বাবে ছন্দোবদ্ধভাৱে পৰিৱেশন কৰা অর্থযুক্ত গীত। অতীজতে চাং ঘৰৰ মুকলি চাঙত সন্ধিয়াতে পৰিয়ালৰ সকলোৱে মিলি বহোতে গীতবোৰ ৰচনা আৰু পৰিৱেশন কৰিছিল বাবে এই গীতৰ নামকৰণ পৰিৱেশন অনুযায়ী কৰা হৈছে। অর্থাৎ খাম নন চ্ছানৰ অর্থ হৈছে - 'খাম' মানে কথা বা গীত, 'নন চ্ছান' মানে মুকলি চাঙত জিৰণি লোৱা। বয়োজ্যেষ্ঠসকলে কনিষ্ঠসকলক গীতৰ মাধ্যমেৰে নীতি শিক্ষা দিয়া, সংস্কৃতিৰ সৈতে পৰিচয় কৰোৱা শিশুমনৰ বোধৰ জগতখন সম্প্ৰসাৰিত কৰা উদ্দেশ্যে পৰিৱেশন কৰি শুনায়। এই গীতৰ প্ৰতিটো ব্যাখ্যাৰ বা সংযোজনৰ আঁৰত আছে বাস্তৱতা, যুক্তি আৰু বৈজ্ঞানিক পর্যবেক্ষণ। খাম নন চ্ছান গীতসমূহ টাই ফাকে সমাজত যুগ যুগ ধৰি প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলন হৈ আহিছে আৰু জনপ্ৰিয়তাও লাভ কৰিছে।

(চ) কৃষিকর্ম/শ্রমৰ লগত জড়িত লোকগীত ঃ

গ্রাম্য জীৱন, শ্রম আৰু কৃষি কর্মৰ লগত জড়িত টাই ফাকে সকলৰ মাজত প্রচলিত লোকগীতৰ ভিতৰত চয় য়য় (ধান বনা গীত) খাম হং খন খাও (লখিমী আৱাহনী গীত), মৰণা মাৰি শেষ কৰা পিছত গোৱা গীত, খাম হং খন খাও উল্লেখযোগ্য।

(i) খাম চয় য়য় ঃ টাই ফাকে সমাজত প্রচলিত খাম চয় য়য় গীত আটাইতকৈ জনপ্রিয় লোকগীত বুলিব পাৰি। চয় য়য় শব্দই টাইফাকে ভাষাত কোনোধৰণৰ আভিধানিক অর্থ প্রকাশ নকৰে। দৰাচলতে 'চয়' শব্দৰ অর্থ হৈছে সুললিত, 'য়য়' চয় শব্দৰ লগত যুক্ত কৰি লোৱা এক প্রকাৰ অনুকাৰ শব্দহে। গ্রাম্য জীৱনৰ পৰিৱেশত (অতীজত) উৰালত ধান বানোতে হোৱা লয়ৰ লগত সংগতি ৰাখি গীত গাইছিল। সুখ-দুখ, আনন্দ-বিষাদ সকলোবোৰ অনুভূতিকে এই গীতৰ বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ গীত ৰচনা কৰিছিল। গতিকে গীতসমূহৰ বিষয়বস্তু সুনির্দিষ্ট নহয়। সেয়েহে গায়ক-গায়িকাই ঘৰুৱা পৰিৱেশ বা সামূহিকভাৱে গাঁওবাসীক গীতৰ বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ পৰিৱেশন কৰে। এইবোৰ গীত বিশেষকৈ বর্ণনামূলক। বর্তমান সময়ত চয় য়য় গীতি পৰম্পৰাকেই কিছু পৰিমার্জন কৰি আধুনিক গীতৰ ছন্দ, তাল লয়ৰ সৈতেও পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। যেনে—

চয় য়য় - চয় য়য়
চয় ঐ-মৌং লং হাও চাও য়ে তাই হিম নই পাপুন কই
চয় য়য়, চয় ঐ মা পেইন তি য়ু টউ চ্যাং মাই কুম কুম নাই
পাউ আন মাহম চাউ ম য়ু চয় য়য়।
চয় য়য়, চয় য়য় চয় আ ঐ..... [১৪] (গোহাঁই, পৃ. ৯৩)

(ii) **খাম হং খন খাও ঃ** কৃষিজীৱি টাই ফাকে সমাজত ধান কটাৰ শেষত পথাৰৰ পৰা শেষ মুঠি ধান অনাৰ সময়ত অর্থাৎ ঘৰলৈ লখিমী আহৱান কৰা গীতবোৰো প্রচলন আছে। এই গীত কেইবাটা পর্যায়ত গোৱা দেখা যায়। যেনে পথাৰৰপৰা শেষৰ ধান মুঠি অনাৰ সময়ত গোৱা, মৰণা মৰাৰ পিছত ধান গুটি ভঁৰালত ভৰোৱাৰ সময়ত, ধান কাটিবলৈ আৰম্ভ কৰা প্রথম দিন, পথাৰত হাল বাবলৈ যোৱা প্রথম দিনটো, কৃষি কর্মত সফলতা লাভ কৰিবৰ বাবে এই গীত গোৱা হয়। সকলো পর্যায়তে সেই গীতৰ বিশিষ্টতা বেলেগ বেলেগ হোৱাৰ উপৰিও ধানৰ লগত যুক্ত অন্য লোকাচাৰতো এই গীত পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়।

আ চাও চাও চাও চাও চাও
চাও যন খাও লৌং কং খাও য়াউ
চাও কে যু
মানাই কাও হং যা যাঁং হাঁং মাউ
.....
.....
.....
খন খাও যেইম মৌ খুন তাং ফাঁন কৌন কী মা মা
খন খাও যেইম মৌ খাও য়াউ মাউ লৌং
ও যাঁ নাউ তান নাউ চিক' মা মা
চি চুপ কাও হং যা যা খা যাঁং যাঁং মা নাই। [১৫]
(গোহাঁই, পৃ. ৭১)

লখিমী আৱাহনী গীতবোৰ সম্পূর্ণ মৌখিক আৰু মৌলিক। এই গীতৰ বিশিষ্টতা হৈছে যে শিল্পীসকলে গীতসমূহত দীঘলীয়াকৈ বহু কথা সন্নিৱিষ্ট কৰি পৰিৱেশন কৰিব পাৰে। আনহাতে যিসকলৰ এই গীতৰ চর্চা নাথাকে তেওঁলোকে যিমান পাৰে মূল কথা খিনি চমুকৈ গদ্য আকাৰে সামৰি থব পাৰে। বর্তমান সময়ত এই গীতৰ পৰম্পৰা বয়োজ্যেষ্ঠ ফাকে মহিলাৰ মাজতে সীমাবদ্ধ হৈ থকা দেখা যায়।

(ছ) আখ্যান গীত, মালিতা ঃ টাই ফাকে সকলৰ সমাজত মালিতাৰ প্রচলন আছে। এই মালিতা সমূহক ফাকে ভাষাত খাম পুং বুলি কোৱা হয়। 'খাম' মানে কথা বা গীত আৰু 'পুং' মানে কাহিনী। এই গীত কোনো এক কাহিনীৰ পৰা বা জনশ্রুতিৰ পৰা বিষয়বস্তু লৈ গীত আকাৰে উপস্থাপন কৰি গোৱা হয়। এই কাহিনীসমূহৰ দুখজনক পৰিণতিৰ অংশবোৰক বিশেষকৈ গীত হিচাপে পৰিৱেশন কৰা হয়।

(i) **'ৱ' পেইম চাম ল' ঃ** টাই ফাকে সমাজত প্রচলিত জনশ্রুতিমূলক কাহিনীৰ ভিতৰত আটাইতকৈ জনপ্রিয় কাহিনী হৈছে 'ৱ' পেইম-চাম ল'ৰ কাহিনী। এই কাহিনী টাই ফাকে সকলৰ ফাকে হিচাপে প্রতিষ্ঠা লাভ কৰা বহু বছৰ পূর্বৰ ৰচনা। এই গীত য়ুনান, ম্যানমাৰৰ

শ্বান প্রদেশৰ টাইসকলৰ মাজত প্রচলিত গীতৰ কাহিনীৰ লগত একে। ভাৰতীয় মহাকাব্য ৰামায়ণ, মহাভাৰত, গ্রীক মহাকাব্য 'ইলিয়াদ' 'ওদিচি'ৰ দৰে 'ৱ' পেইম চাম-ল' এক ট্রেজিক মহাকাব্য হিচাপে সমাদৃত। এই গীতত এগৰাকী সুন্দৰী ছোৱালী 'ৱ' পেইম' আৰু সুঠাম ডেকা চাম ল' ৰ দুর্দান্ত প্রেম মহাকাব্যৰ মূল বিষয় যদিও সেই সময়ৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ প্রতিফলিত হোৱা কাহিনীক গীতৰ মাত্রা দিয়া হৈছে। এই কাহিনীৰ আধাৰত গীত ৰচনা কৰা হয় বাবে এইবোৰক মালিতাধর্মী গীত বুলি কোৱা হয়।

টাই ফাকে সমাজত 'ৱ' পেইম চাম ল'ৰ দৰে প্রচলিত অন্যান্য জনশ্রুতিমূলক কাহিনী আৰু গীত হৈছে য়ে খাম ল' ফ্যাকুংমা, ছকছুন আদি।

(ii) **খাম ঐ বা খাম এ'ন' ঃ** খাম ঐ টাই ফাকে সমাজত প্রচলিত গদ্যক গীতৰ আকাৰে পৰিৱেশন কৰা লোকগীতি ধাৰা। কবিতা পাঠ আৰু আবৃত্তিৰ মাজত থকা পার্থক্যৰ দৰে খাম ঐত গাওঁতা গৰাকীয়ে কথাখিনিৰ অর্থ আৰু ভাৱৰ দাবী অনুৰূপে সুকীয়াকৈ উপস্থাপন কৰে। এই গীতসমূহ বর্ণনামূলক, আবৃত্তিধর্মী আৰু স্বগতোক্তিমূলক। টাই ফাকে পৰম্পৰাগত নাটক, উৎসৱ পার্বণত বা সাধাৰণভাৱেও গীত পৰিৱেশন কৰে। এই গীত সমূহ দুই ধৰণে উপস্থাপন কৰি গাব পাৰে। লোকশিল্পীয়ে যিকোনো বিষয় এই গীতত উপস্থাপন কৰিব পাৰে আৰু দ্বিতীয়তে উল্লেখনীয় পুথিৰ কিছু অংশৰ পৰা পৰিৱেশন কৰিব পাৰে। মহাকাব্য, উল্লেখনীয় ধর্মীয় পুথি, জাতক পুথিবোৰৰ নির্বাচিত অংশকলৈ এই খাম ঐ পৰিৱেশন কৰা হয়। খাম এ' ন' বা খাম ঐ শব্দটো গীতৰ মূল অংশৰ অন্তর্ভুক্ত নহয়। আনহাতে এই গীত পৰিৱেশন কৰোতে এ' ন' শব্দৰ উচ্চাৰণ কৰিলে বা নকৰিলে গীতৰ মূল অর্থৰ পার্থক্য নঘটে। এই গীতৰ লগত নৃত্যৰ কোনো বাধ্যবাধকতা নাই। অর্থাৎ এ' ন' গীত সকলো পৰিৱেশতে পৰিৱেশন কৰিব পৰা, সকলো বিষয় উপস্থাপন কৰিব পৰা আৰু অন্যান্য বিষয় সংযোজন কৰিব পৰা কথা কবিতাধর্মী গীত। এই গীতৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য হৈছে ইয়াত সুৰৰ কোনো বিশেষ বিবিধতা নাই। লোক শিল্পীয়ে ৰচনা কৰা সকলো এ' ন' গীতৰ পৰিৱেশন শৈলী বা গায়ন শৈলী প্রায় একে হয়।

(iii) **খাম ঙিন ফান ঃ** মৃত্যু, মানৱ জীৱনৰ বাস্তৱ আৰু কৰুণ সত্য। মানুহৰ আত্মীয়ৰ মৃত্যুৰ স্মৃতিৰ কৰুণ্য প্রকাশ পায় মৃতকৰ আত্মীয়ৰ বিননিত। ফাকে সমাজত কোনো লোকৰ মৃত্যু হ'লে আত্মীয়ই স্মৃতিকাতৰ হৈ বিলাপ কৰে। এই বিলাপত এক সুৰৰ পয়োভৰ দেখা যায় বাবে এই গীতক একপ্রকাৰৰ বিলাপ বা বিননি গীত বুলিব পাৰি।

(জ) খাম লাও লুক অন (নিচুকনি গীত) ঃ টাইফাকে ভাষাত নিচুকনি গীতক খাম লাও লুক অন বুলি কোৱা হয়। কেঁচুৱাক নিচুকাবলৈ বা টোপনি নিয়াবলৈ মাকে বা বুঢ়ীমাকে নিচুকনি গীত গায়। কোমল, মধুৰ সুৰৰ গীতবোৰৰ নির্দিষ্ট কোনো বিষয়বস্তু নাথাকে। সুৱ হৈছে এই গীতৰ মূল আধাৰ। শিশুৱে কোমল মনৰ সপোন, কল্পনাৰ ৰহন হানি পৰিৱেশৰ বিচিত্র ৰূপ একোটিয়ে মাতৃৰ মনৰ আবেগ অনুভূতিৰ মাজত প্রাণ পাই উঠে। কোমলতা আৰু আবেগ প্রৱণতাই ধীৰ লয়ত গোৱা এই গীতৰ মূর্চ্ছনাই শিশুৰ মন স্পর্শ কৰি শান্ত কৰে। শিশু মনৰ ৰহণ সনা কাল্পনিক জগতখনৰ লগত সামঞ্জস্য থকাকৈ এই গীত সমূহো বাস্তৱ-অবাস্তৱ কথাৰে সানমিহলি হৈ থাকে। শিশুৰ কাল্পনিক জগতখনক হৃদয়স্পর্শী অলৌকিক বর্ণনাই মোহাচ্ছন্ন কৰি তোলাই এই গীতৰ উদ্দেশ্য।

নন্ ঐ নন্ নন্
ছৌং মাউ মানন্ য়ে
হেইন্ তামা ছাছে তাও লাং কাইনা না মক্ মাই হাও
তা নন্ কন ছে য়নন ঐ নন্ নন্য়মক্
মাই ছাও হাং নি হাও তান্ ন কন্ ঐ নন্ ননয়... [১৬]
(গোহাঁই, পৃ. ৮৪)

কণ কণ শিশুৰ সৈতে মুকলি চাঙত বহি বুঢ়ীমাকে মধুৰ সুললিত কণ্ঠেৰে মানৱ দেহৰ ইন্দ্রিয়; অংগ-প্রত্যংগৰ সাম্যক গুণাগুন সম্পর্কে বর্ণনা কৰি ওমলাইছিল।

মা কক্ টৌক পাখা
হু নাই ঙিণ, হু মা হান
টা হান, টা মা কা
টিন কা, টিন মা কিন
মৌ কিন, মৌ মা য়েইম
খিইও য়েইম, খিইও মা ঔন
খ ঔন, খ মা ইম

তং ইম, তাং মাও খি
কৌ খি, কৌন মা মিন
নাং মিন, নাং মাও টং
ছৌপ টং, খাকলাই ছি ফ'ক। [১৭]
(ঙি পে থৌন গোহাঁই, টাই ফাকে সাংস্কৃতি,পৃ. ৩৬)

(ঝ) উপদেশমূলক বা নীতি শিক্ষামূলক গীত ঃ নীতি শিক্ষামূলক লোকগীত টাই ফাকে ভাষাত লিক্ পু চন লান বুলি কোৱা হয়। সমাজৰ নীতি শিক্ষা আৰু জীৱনমুখী শিক্ষাৰ অৱলম্বন হিচাপে লিক্পু চন লান এক স্থায়ী প্রমূল্য সম্বলিত গীত। এই গীত সমূহ ল'ৰা-ছোৱালীৰ উদ্দেশ্যে নীতি শিক্ষামূলক ভাৱ ভাষাৰে ৰচনা কৰা হয়। গীত সমূহ বাস্তৱ জীৱনৰ তাত্ত্বিক আদর্শৰ প্রকাশক হোৱাৰ বাবে এই গীতসমূহত দার্শনিক ভাৱৰ স্পষ্টকৈ আভাস পোৱা যায়। লিক্ পু চন লানৰ অর্থ হৈছে ককাদেউতাকে নাতিয়েকক দিয়া শিক্ষা। 'লিক্' মানে পুথি 'পু' মানে ককাদেউতা, 'চন' মানে শিক্ষা দিয়া আৰু 'লান' মানে নাতি। বিভিন্ন স্থান বা কালক প্রতিনিধিত্ব কৰা জনসমাজৰ অভিজ্ঞতা জ্ঞান আদি এই গীতসমূহত প্রতিফলিত হয়। ল'ৰা-ছোৱালীয়ে বুজি পোৱাত সুবিধা হোৱাকৈ সহজ-সৰল পৰিশীলিত শব্দচয়ন আৰু ভাষাৰে নীতি কথাসমূহ সুৰীয়াকৈ উপস্থাপন কৰি এক কলাত্মক ৰূপ দিয়া হৈছে। চাংঘৰ সমূহৰ বাৰান্দা বা চাংখনত বহি বয়োজ্যেষ্ঠসকলে চেমনীয়াসকলক গীতৰ মাজেৰে নীতিশিক্ষা প্রদান কৰাৰ প্রায়স কৰিছিল। নীতিশিক্ষাৰ জ্ঞান গম্ভীৰ আদর্শমূলক কথাবোৰ প্রতীক উপমা ব্যৱহাৰ কৰি সুকীয়াকৈ গীতৰ ৰূপত প্রকাশ কৰাৰ বাবে কিশোৰৰ কোমল মনত সহজে ৰেখাপাত কৰিব পাৰিছিল। এনে কৰাৰ ফলত কালক্রমত এই গীতৰ ধাৰাই এক স্বকীয় ৰূপ লৈ টাই ফাকে সমাজত প্রতিষ্ঠিত হ'ল। আৰম্ভণিতে এনে নীতিশিক্ষা কেৱল ককাইদেউতাকেই দিয়া নাছিল, ঘৰৰ আন জ্যেষ্ঠসকলেও এই নীতি শিক্ষা দিছিল। কিন্তু কালক্রমত সেয়া ককাইদেউতাই দিয়া শিক্ষা হিচাপে জনপ্রিয় হৈ পৰিল।

ক) নেই ৱান নেং পু
খাং, চাই নাউ তা হু
চুত কাও খক হ হক
খিং য়ম, য়িং নাই
য়ু চাও হ্যাং পান
চিং, থুং মা অনিক্ষা
তাতকাই খাম চাং মৌনাই
চাং চন ৱাই, পু চাও
খম ৱান চাই, চাও
ৱক ল'মলাম নেই লে
মৌং পুক চিং তি
বিন না ক পাক হং
খা খাম চাং
পু তাক লাও

খ) হু চাং য়াই তা মেপ
য়ু য়ং চ্ছা

গ) পয় চুং খিং লং
কাই হাউং পাই ৱাই ৱাং য়ু [১৮]
(ঠাকুৰ, পৃ. ১৯৯, ২০২,২০৩)

আনহাতে 'খাম লান থিন পু' হৈছে নাতি ল'ৰাই ককাক দিয়া উপদেশ। এই গীতিধাৰাই বর্তমান সময়ত লিখিত ৰূপ পাইছে। 'খাম লান থিন পু' গীতৰ জৰিয়তে নাতিয়েকে তুলনামূলকভাৱে আধুনিক জীৱন দর্শন, নতুন জীৱন বিষয়ক অভিজ্ঞতাবোৰ ককাদেউতাকৰ সন্মুখত বা বয়োজ্যেষ্ঠসকলৰ আগত গীত আকাৰে উপস্থাপন কৰে।

ঞ) আশীর্বাদ মূলক গীত ঃ প্রতিখন সমাজতে জ্যেষ্ঠজনে কনিষ্ঠ জনৰ মংগল কামনাৰে আশীর্বাদ দিয়া প্রথাৰ প্রচলন হৈ আহিছে। পূর্বৰে পৰা অসমৰ প্রতিটো টাই গোষ্ঠীয় লোকৰ মাজত আশীর্বাদ দিওঁতে গোৱা এক গীতিধাৰাৰ প্রচলন হৈ আহিছে। টাই ফাকে সকলো ইয়াৰ ব্যতিক্রম নহয়। ব্যক্তিভেদে বেলেগ বেলেগ পৰিৱেশন শৈলীৰে অতি মনোগ্রাহীকৈ কথাৰ ৰস লগাই, নিজা নিজা মৌলিক শব্দচয়ন সংযুক্ত কৰি পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। এনে গীত সমূহৰ ভিতৰত খাম ফুক মাই (সূতা বান্ধি আশীর্বাদ দিয়া গীত), খাম লিক ৱৈ (সমজুৱা শলাগ জ্ঞাপনমূলক গীত) আদি উল্লেখযোগ্য।

(i) খাম ফুক মাই ঃ জ্যেষ্ঠসকলে কনিষ্ঠসকলক আর্শীবাদ দিওতে গোৱা সুৰীয়া গীতকে খাম ফুক মাই বুলি কোৱা হয়। 'খাম' মানে গীত বা কথা, 'ফুক মাই'

মানে 'সূতা বন্ধা'। অর্থাৎ সূতা বন্ধা গীত। কোনো পূণ্য কর্মৰ অন্তত জ্যেষ্ঠসকলে কনিষ্ঠ জনক সূতা বান্ধি আশীর্বাদ কৰে। বিশেষভাৱে বিবাহ কার্য সম্পাদনৰ সময়ত আৰু পাছত জ্যেষ্ঠজনে দৰা-কন্যাক, বৌদ্ধ ধর্মৰ পৰম্পৰা অনুসৰি বর্ষাবাসৰ ব্রত পালনৰ শেষত অষ্টশীল ব্রত ৰখা ককা-আইতাসকলে কনিষ্ঠ তথা নাতি-নাতিনীসকলক আশীর্বাদ দিয়ে। নতুন বছৰ উদযাপন অর্থাৎ পয় চাংকেন উদযাপনৰ শেষত জন্মদিন উদযাপনৰ সময়ত সমাজৰ জ্যেষ্ঠসকলে কনিষ্ঠসকলৰ হাতত শুধ বগা সূতা বান্ধি কুশল কামনাৰে আশীর্বাদ দিয়ে। এই আশীর্বাদ ব্যক্তিভেদে আৰু উপলক্ষ ভেদে কথাংশৰ কিছু তাৰতম্য হয়।

এই আশীর্বাদক পোনপটীয়াকৈ গীত আখ্যা দিব নোৱাৰি যদিও ইয়াৰ মাজত নিহিত থকা সুৰে গীতৰ মর্যাদা দাবী কৰিব পাৰে।

(ii) খাম লিক্ ৰৈ ঃ টাই ফাকে সমাজত প্রচলিত এটি আকর্ষণীয় পৰম্পৰা হৈছে লিক্ ৰৈ। এই পৰম্পৰা সকলো ধর্মানুষ্ঠান, ঘৰুৱা অনুষ্ঠানৰ শেষত পালন কৰা এটি মৌলিক লোকাচাৰৰ অংগ বুলিব পাৰি। 'লিক্ ৰৈ' একধৰণৰ শলাগ জ্ঞাপনৰ গীত বা পুণ্যভাগ বিতৰণ কৰা গীত। অর্থাৎ 'লিক' মানে পুথি বা লেখনি আৰু 'বৈ' হৈছে শুভেচ্ছা বা পুণ্যভাগ বিতৰণ কৰা। অর্থাৎ শুভ কর্ম সম্পাদনৰ শেষ পর্যায়লৈকে যিসকলে নানা ধৰণেৰে সহায় কৰে, অনুষ্ঠানৰ আনন্দ মুহূর্তবোৰ উপভোগ কৰিবলৈ অহাসকলক, যিসকলে কায়িক ভাৱে, মানসিক ভাৱে আর্থিক ভাৱে সহায় সহযোগিতা আগবঢ়ায় তেওঁলোকক শুভ কামৰ পূণ্যভাগ দি তেওঁলোকৰ নাম কৈ ধন্যবাদ জ্ঞাপনৰ লগতে কৃতজ্ঞতা জ্ঞাপন কৰে। এই কৃতজ্ঞতা ব্যক্তিবিশেষৰ উপৰিও দৈৱিক শক্তি, দেৱতা, মৃতক, গছ-গছনি, জীৱকুল, পোক পতংগ, ভূত-পেত সকলোকে সামৰি সকলোৰে যাতে পূণ্য বা সৎ কর্মৰ ভাগ লাভ কৰে তাৰবাবে ৰাজহুৱাকৈ স্মৰণ কৰি গীতৰ মাজেদি কৃতজ্ঞতা নিবেদন কৰে। শুভ কর্ম বা ধর্মীয় অনুষ্ঠানৰ শেষত এই লিক্ ৰৈ গোৱা হয়। টাই ফাকে ভাষাত দখল থকা বা সুন্দৰকৈ লিক ৰৈ পৰিৱেশন কৰা শিল্পীক (পুজেল) এই দায়িত্ব অর্পন কৰা হয়, যাতে কোনো ব্যক্তি বা জীৱকুল, দেৱতা বাদ পৰি নৰয় আৰু লিক্ ৰৈ শুনিবলৈ সুৱলা হয় তাৰ প্রতি গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়। লিক্ ৰৈ সমূহৰ উপস্থাপন শৈলী আৰু গায়ন শৈলী অতি মনোমোহা। ইয়াৰ মূলতে আছে এই গীতবোৰৰ কলাত্মক দিশ যেনে উপমা, অলংকাৰ, ব্যঞ্জনা আৰু বিভিন্ন ধৰণৰ উদাহৰণৰ সহায় লৈ পৰিৱেশন কৰা হয়। সেয়েহে ইয়াক এক প্রকাৰৰ আধুনিক কবিতা বুলিব পাৰি। জীৱনৰ সুখবোধ আৰু পুণ্যৰ ধাৰণাক বিভিন্ন দৃষ্টান্তৰ সৈতে সমতা ৰাখি উপস্থাপন কৰে। এই কাম কর্মত নিয়োজিত কৰা জনৰ সৃষ্টিশীল মন আৰু উপস্থাপনৰ শৈল্পিক উপস্থাপন কলাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি লি ৰৈ কিমান সুন্দৰ আৰু কিমান মনোমোহা সেইটো নির্ভৰ কৰে।

খাম লিক্ ৰৈ ম'নাম ৰ অসমীয়া অনুবাদৰ কিয়দাংশ তলত দিয়া হ'ল—

অৱকাশ দিয়ক,
মোৰ এই কুশল কর্মৰ গুণৰ পুণ্যাংশ সর্বপ্রথমে
মোৰ পিতৃ-মাতৃলৈ যাচিলোঁ।

যাচিছোঁ মোৰ শিক্ষা গুৰুক,
তেওঁৰ বিশাল, বিস্তৃত অন্তৰৰ সুবচনে মোৰ চৰিত্র আৰু অভ্যাসক
পৰিশুদ্ধতা আনিছে।
জীৱনটোক আগবঢ়াই নিয়াত অৰিহনা যোগাইছে। (অসম্পূর্ণ) [১৯] (গোহাঁই, পৃ. ৯৯)

ট) খাম কাম্মাথান (দেহতত্ত্ব বিচাৰক গীত) ঃ টাই ফাকে ভাষাত দেহতত্ত্বৰ বিষয়ক কিছুমান গীতৰ প্রচলন আছে। এই সমূহ গীতক কাম্মাথান বুলি কোৱা হয়। মানুহৰ জীৱন পৰিক্রমা জন্মৰ পৰা মৃত্যু পর্যন্ত বিভিন্ন ধৰণেৰে পৰিৱর্তন হয়। আনহাতে এই জীৱন পৰিক্রমাত মানৰ জীৱনৰ সুখ-দুখ, কাম-ক্রোধ-লোভ-মোহ আদিৰ প্রভাৱ, দেহৰ ক্ষণস্থায়িত্ব, আত্মাৰ অবিনশ্বৰতা আদি এই গীতৰ বিষয়বস্তু। এই গীতসমূহত এনে মানৰ দেহৰ উপাদানৰ বিষয়ে শিল্পীসকলে সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰি পৰিৱেশন কৰে। এই গীতসমূহত আধ্যাত্মিকতাৰ কিছু ৰেঙণি দেখিবলৈ পোৱা যায়।

ঠ) খাম অ' ৰাতি (আৰম্ভণিৰ বিনয় গীত) ঃ টাই ফাকে সমাজত ধর্মীয় বা ৰাজহুৱা অনুষ্ঠানৰ আৰম্ভণিতে নৃত্য গীত পৰিৱেশন কৰা হয়। এই অনুষ্ঠানসমূহত নৃত্য-গীত পৰিৱেশন কৰাৰ আগমুহূর্তত বা আৰম্ভণিতে একধৰণৰ বিনয় গীত পৰিৱেশন কৰা হয়। এই গীত বিশেষভাৱে বুদ্ধ, ধর্ম সংঘক স্মৰণ কৰি গোৱা হয়।

অ' ৰাতি মুতিতা পাই লু চে,
অ' ৰাতি মুতিতা পাই লু চে
হাও খা কানত', মানা পুকথা আজিংতে।
হাও খা কানত' মানা পুকথা আজিংতে। (অসম্পূর্ণ)[২০]
(গোহাঁই, পৃ. ৯৫)

ড) খাম হায় কাপ ঃ টাই ফাকে সমাজত কোনো লোকৰ আত্মীয়ৰ মৃত্যুৰ সময়ত বা মৃতকক বিদায় দিয়াৰ মুহূর্তত বিলাপ কৰা কথাংশকে খাম হায় কাপ বুলি কোৱা হয়। এই গীতৰ প্রধান বৈশিষ্ট্য হৈছে ই স্বতঃস্মূর্ত। আত্মীয়ৰ মৃত্যুৰ আপোনজনৰ মনত এক স্বাভাৱিক প্রতিক্রিয়া সৃষ্টি কৰে। এই মানসিক প্রতিক্রিয়াৰে পৰিণতিত কান্দোনৰ লগে লগে বিলাপ কৰে। নিজৰ মনৰ দুখ পাতলাবলৈ বিলাপ কৰোতে জীৱনৰ অতীতৰ চিত্র, ভৱিষ্যতৰ দুখবোধ, দুর্যোগৰ চিত্র প্রতিফলিত হয়। বিলাপৰ বাবে কোনেও চর্চা নকৰে বা শিক্ষা নলয়। পৰিৱেশ আৰু পৰিস্থিতিয়ে মানুহৰ সেই অৱস্থাৰ সম্মুখীন হ'বলৈ সাহস দিয়ে। এনে পৰিস্থিতিত বিলাপ কৰোতাজনে জীৱনৰ অতীত, বর্তমান, ভৱিষ্যতৰ সুখ-দুখ, বিষাদ, দুর্যোগ আদি বিষয় সমূহ ছন্দোৱদ্ধভাৱে সুৰীয়াকৈ উপস্থাপন কৰে। এই গীতসমূহ, গীত হিচাপে পৰিৱেশন কৰা নহয়। কিন্তু কথাসমূহ উপস্থাপন কৰোতে যি সুৰৰ প্রয়োগ হয় সেই সুৰেই এই কথাসমূহক একধৰণৰ গীতি পৰম্পৰাৰ দাবী কৰে।

ঢ) খাম যী মলং ঃ টাই ফাকে সমাজত বিবাহ সম্পাদনৰ শেষত দৰাঘৰৰ পদুলিমুখত ন কইনা বা ন বোৱাৰীক দৰাঘৰলৈ দৰাৰ মাক বা মাকৰ অনুপস্থিতিত সম্বন্ধীয় মহিলাই বিশেষ পৰম্পৰাৰে আদৰণি জনোৱা হয়। কইনা দৰা ঘৰলৈ আহি থাকোতে বাটত কোনো অপশক্তিয়ে কইনাৰ গাত লম্ভিছেনেকি বা কইনাৰ পৰা দৰাৰ ঘৰত অপদেৱতা অপশক্তি প্রৱেশ কৰিব জাতে নোৱাৰে তাৰ বাবে 'যী মলং' লোকাচাৰ সম্পাদন কৰা হয়। অপশক্তিক উদ্দেশ্য কৰি সুৰ লগাই কথাখিনি পৰিৱেশন কৰোতে গীতৰ ৰূপ লাভ কৰে। ই একপ্রকাৰৰ মন্ত্র বুলিব পাৰি। এই যী মলং গাওতে কন্যাৰ সন্মুখত অস্থায়ীভাৱে সৰুকৈ সাজি লোৱা সজা এটাত কিছু খাদ্য বস্তু ভৰাই লোৱা লোকাচাৰ প্রচলিত আছে।

হাও আও লুক পাউ মাউ নাং না
মৌ মা মাউ মাউ নে
কাও মা যেইন হাউ, যী হাউ
মলং চৌপ, মলং খাম, মলং টা মৌন
থোক মা চাই মা মলং মলং টিন, মলং মৌ
কাও যেইন হাউ, যী হাউ

আও খাও, আও ফাক, আও খীং খৌ আনৱান। (অসম্পূর্ণ) [২১] (গোহাঁই, পৃ. ৭৩)

আনহাতে বেমাৰ ভাল কৰিবলৈও যী মলং গোৱা হয়। ল'ৰা-ছোৱালী অকস্মাতে বেমাৰ পৰিলে অপদেৱতা, অপশক্তি প্রভাৱৰ ফলত হোৱা বুলি ফাকে, সকলে বিশ্বাস কৰে। এই অপদেৱতা বা অপশক্তিৰ দৃষ্টি নিবাৰণৰ বাবে এই লোকাচাৰৰ জৰিয়তে বেমাৰ ভাল কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হয়। এই লোকাচাৰকো যী মলং বুলি কোৱা হয়। কথন ভঙ্গীকে সুৰ লগাই পৰিৱেশন কৰি বেমাৰী ব্যক্তিৰ পৰা আঁতৰি যাবলৈ আহ্বান জনায়। ই এক প্রকাৰৰ মন্ত্র বুলিব পাৰি।

লুক অন নাই খাই কা যেইপ কা
কাও যী হাউ যেইন হাউ
যী ফী, যী, ফী যি মলং মকং
চাম চপি মলং খা, হাচিপ মলং টাই
মলং টাই চাম খা, মলং টাই চাম চং
মলং টাই য়াউ কা মে যাই
মলং খা য়াউ কা মে খাই
মলং কান তাউ, কা কান তাউ কইনা
মলং কান নৌ, কা কান নৌ কইনা.....২২

(গোহাঁই, পৃ. ৭৬)

সামৰণি ঃ

প্রায় আঢ়ৈশ বছৰৰ পূর্বে অসমলৈ প্রব্রজন কৰা টাই ফাকে সকলে অসমৰ ভৌগোলিক পৰিৱেশৰ সৈতে বিভিন্ন সাংস্কৃতিক উপাদান, সামাজিক পৰিকাঠামোৰে বসতি কৰি আহিছে। প্রজন্মৰ পৰা প্রজন্ম ধৰি তেওঁলোকে

সাংস্কৃতিক, সামাজিক পৰম্পৰা বা লোকাচাৰ সমূহ পৰিৱেশন চৰ্চা আৰু সংৰক্ষণৰ দিশত গুৰুত্ব দি আহিছে। টাই ফাকে সকলৰ মাজত তেওঁলোকৰ সকলোবোৰ লোকগীত সমানে প্ৰচলিত হৈ থকা নাই। স্বভাৱ শিল্পীৰ অভাৱৰ বাবে কিছুমান উল্লেখযোগ্য গীতৰ প্ৰচলন সীমিত হৈ পৰিছে। বৰ্তমান সময়ত শিল্পীসকলে পূৰ্বতে কোনো শিল্পীয়ে ৰচনা কৰি যোৱা গীতসমূহকে কলাত্মকভাৱে পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। বৰ্তমান সময়ত টাই ফাকে ভাষাৰ চৰ্চা, লোকগীতৰ চৰ্চা লাহে লাহে কমি আহিব ধৰিছে। উপযুক্ত পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিত টাই ফাকে লোক সাহিত্য জনা ব্যক্তিৰ তত্ত্বাৱধানত লোকগীতসমূহ নৰ প্ৰৱন্মক শিকোৱাৰ উপৰিও আগ্ৰহী কৰি তুলিব লাগে। তাৰ মাজতো চামে চামে বহুকেইজন লোকশিল্পীৰ একক প্ৰচেষ্টাত লোকগীত মাত সমূহৰ ঐতিহ্য আৰু আঁত নেহেৰুৱাকৈ টাই ফাকে সমাজত প্ৰচলন হৈ আছে। এই গীতসমূহ সংৰক্ষণ কৰিবৰ বাবে লিপ্যান্তৰকৰণৰ যোগেদি অনুবাদ কৰিলে টাই সাহিত্যৰ লগতে টাই ভাষাৰো প্ৰচাৰ, প্ৰসাৰ তথা বিকাশৰ পূৰ্ণ সম্ভাৱনা থকা দেখা যায়। ❑

প্ৰসংগ টোকা আৰু গ্ৰন্থ ঃ

১. গগৈ, লীলা, অসমৰ লোক সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, বনলতা, গুৱাহাটী, ডিব্ৰুগড়, পুনৰমুদ্ৰণ ২০০৮ চন।

২. গোহাই, ঙি পে থৌন, টাই ফাকে সংস্কৃতি, পয় ফাউণ্ডেচন নাম ফাকে, নাহৰকটীয়া, অসম, প্ৰথম প্ৰকাশঃ ফ্ৰেব্ৰুৱাৰী, ২০২০ চন।

৩. গোহাঁই, পেইম থি, টাই ফাকে সমাজ আৰু সংস্কৃতি, পয় ফাউণ্ডেচন, নামফাকে, নাহৰকটীয়া, অসম, চতুৰ্থ প্ৰকাশ ২০১৯ চন (পৰিৱৰ্ধিত)

৪. গোহাঁই, পেইম থি, (সম্পাদনা), টাই ফাকে লোকগীত আৰু লোক কবিতা, পয় ফাউণ্ডেচন, নামফাকে গাঁও, নাহৰকটীয়া, অসম, ৩ আগষ্ট, ২০২০।

৫. গোহাঁই, পেইমথি, বুটীদিহিঙৰ পাৰে পাৰে টাইফাকেৰ সুৰভি, পয় ফাউণ্ডেচন, নামফাকে গাঁও, নাহৰকটীয়া, অসম, ফেব্ৰুৱাৰী,২০২০ চন।

৬. শৰ্মা, উপেন্দ্ৰজিৎ; অসম সাহিত্য সভা পত্ৰিকা, প্ৰকাশক শ্ৰীযাদব চন্দ্ৰ শৰ্মা প্ৰধান সম্পাদক, অসম সাহিত্য সভা, চন্দ্ৰকান্ত সন্দিকৈ ভৱন যোৰহাট,পঞ্চ সপ্ততিতম বৰ্ষ, তৃতীয় সংখ্যা অক্টোবৰ, নৱেম্বৰ।

৭. বৰুৱা, ভীমকান্ত, অসমৰ ভাষা, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, গুৱাহাটী, পঞ্চম পৰিবৰ্ধিত সংস্কৰণ ঃ জানুৱাৰী, ২০১০ চন।

ইংৰাজী ঃ

1. Thakur, G.C. Sharma, The Tai Phakes of Assam, B.R-Publishing Corporation, 425. Nimri colony Ashak Vigar, Delhi, 2013.

2. Morey, Stephen, The Tai Languages of Assam: A grammar and Texts, Pacific Linguistics, Research School of Pacific and Asian Studies. The Australian National University, Canberra. Australia, First Edition, 2005.

3. Phukan, Supriti, Tai Phakes: A Historical and Cultural Study, EBH Publishers, Panbazar, Guwahati, 2015.

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का 84वाँ स्थापना दिवस समारोह संपन्न

दिनांक 3 से 6 नवंबर तक विभिन्न कार्यक्रमों के साथ असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने अपने 84वें स्थापना दिवस मनाया। 3 नवंबर को समिति के कार्याध्यक्ष श्री भारतभूषण महंत, उपाध्यक्ष डॉ. अंजलि काकति, कोषाध्यक्ष श्री प्रफुल्ल चंद्र बरा और मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया जी की गरिमामयी उपस्थिति में सुबह 9.30 बजे समिति के झंडोत्तोलन के जरिए स्थापना दिवस के कार्यक्रम की शुरुआत हुई। इस अवसर पर समिति के प्रेक्षागृह में कर्मी मिलन समारोह का भी आयोजन हुआ। 6 नवंबर को आयोजित स्थापना दिवस समापन समारोह के अवसर पर असम के पूर्व शिक्षा मंत्री तथा विधायक श्री सिद्धार्थ भट्टाचार्य, उच्चा शिक्षा शोध संस्थान, चेन्नई के कुलसचिव प्रो प्रदीप के शर्मा एवं राज्य शिक्षा विभाग के सचिव श्री एस.एन. चौधरी सहित पूर्वोत्तर के अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहें।

सभा में असम के पूर्व शिक्षा मंत्री तथा पूर्व गुवाहाटी के विधायक श्री सिद्धार्थ भट्टाचार्य ने हिंदी को राष्ट्रभाषा का संवैधानिक दर्जा देने पर जोर देते हुए कहा कि हिंदी भाषा सीखने से असमीया या अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम कम नहीं होता। उन्होंने कहा कि मातृभाषा की उपेक्षा न हो, लेकिन हिंदी ही एक भाषा है, जो देश की संपर्क की भाषा बन सकती है। उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि खुद स्नातक तक हिंदी पढ़ी है और उनकी बहन कॉटन कॉलेज में हिंदी विभाग की प्रमुख रही हैं, लेकिन इसका मतलब कतई नहीं है कि हम कमतर असमीया हैं।

राज्य के पूर्व शिक्षा मंत्री ने कहा कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को चुनने वाले महात्मा गांधी और आज हिंदी के पैरोकार माननीय प्रधानमंत्री और गृहमंत्री हिंदी भाषी नहीं हैं। उनकी मातृभाषा गुजराती है। इसी तरह से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना करने वाले लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै असमीया थे। समिति की नवनिर्मित महारजत जयंती भवन का उद्घाटन करने के बाद समारोह को संबोधित करते हुए भट्टाचार्य ने कहा कि यह धारणा बनाई गई है कि मेडिकल और तकनीकी की पढ़ाई मातृभाषा में नहीं हो सकती, लेकिन सच्चाई यह है कि जर्मनी और जापान जैसे विकसित देशों में इसकी पढ़ाई उनकी अपनी भाषा में होती है और वहाँ के डॉक्टर-इंजीनियरों की दक्षता में कोई कमी नहीं होती। इसलिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मातृभाषा पर बल दिया गया है।

इस मौके पर उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (चेन्नई) के कुलसचिव प्रो. प्रदीप के शर्मा ने कहा कि तमिलनाडु में हिंदी के विरोध के कारण यह राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी। सच्चाई यह है कि वहाँ सामूहिक रूप से हिंदी का विरोध होता है, लेकिन व्यक्तिगत रूप से लोग हिंदी को अपनाना चाहते हैं। उन्हें हिंदी सीखने की ललक है और विरोध के बीच हिंदी बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही है। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार-प्रसार में लगे असम के सपूत प्रो. शर्मा ने कहा कि तमिलनाडु में बड़ी संख्या में डॉक्टर, इंजीनियर और वकील जैसे पेशेवर लोग हिंदी सीख रहे हैं और इनमें से अधिकांश की उम्र 50 से ऊपर है।

दूसरी ओर, कार्यक्रम को संबोधित करते हुए असम राज्य पाठ्यपुस्तक निर्माण और प्रकाशन निगम लिमिटेड के प्रबंध निदेशक तथा शिक्षा विभाग के सचिव एस.एन. चौधरी ने योग्य हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया। उन्होंने कहा कि बच्चों को उच्च दर्जे की हिंदी सिखाने के लिए जरूरी है कि उनके शिक्षक हिंदी के जानकार हों।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के 84वें स्थापना दिवस के इस समारोह में समिति की ओर से बंगाईगांव कॉलेज के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष तथा हिंदी एवं असमीया के लेखक श्री गोपेश्वर तालुकदार को 'राष्ट्रभाषा साहित्य सम्मान', बिपुल शर्मा को 'राष्ट्रभाषा प्रचारक सम्मान' के अलावा पूर्वोत्तर के राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे मिजोरम के एसके लियानचेता, मणिपुर की रोहिणी मार, मेघालय की डॉ. अरुणा कुमारी उपाध्याय, सिक्किम की बीना कुमारी लिंबू को हिंदी सेवा सम्मान प्रदान किया गया। साथ ही, गुवाहाटी के कन्या महाविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर तथा समिति के पूर्व सहायक परीक्षा सचिव डॉ. नवकांत शर्मा द्वारा लिखित और समिति द्वारा प्रकाशित 'माँ कामाख्या' नामक पुस्तक का विमोचन किया गया। वहीं प्रवीण फुकन द्वारा रचित और छगनलाल जैन द्वारा अनूदित नाटक लाचित बरफुकन के द्वितीय संस्करण का भी विमोचन किया गया। कार्यक्रम का संचालन समिति के प्रभारी साहित्य सचिव रामनाथ प्रसाद ने किया। ❑

जुलाई 2022 सत्र में आयोजित विशारद और प्रवीण परीक्षाओं के स्थानप्राप्त परीक्षार्थी

विशारद

पहला स्थान
भनिता देवी
चराइबाही केंद्र
अनुक्रमांक : 1558

दूसरा स्थान
सबिता दास
टिहू केंद्र
अनुक्रमांक : 2475

तीसरा स्थान
गीतांजली मेधी
दक्षिण बिजनी केंद्र
अनुक्रमांक : 2176

चौथा स्थान
आराधना विश्वास
चंद्रपुर केंद्र
अनुक्रमांक : 2795

पाँचवाँ स्थान
सुरुचि कुमारी जायसवाल
ढेकियाजुली केंद्र
अनुक्रमांक : 878

प्रवीण

पहला स्थान
ज्योतिस्मिता तालुकदार
मंगलदै केंद्र
अनुक्रमांक : 1150

दूसरा स्थान
आटलान्ता बरपुजारी
डिब्रुगढ़ (क) केंद्र
अनुक्रमांक : 239

तीसरा स्थान
पिंकुमनि बरदलै
कठालगुरि केंद्र
अनुक्रमांक : 354

चौथा स्थान
परिस्मिता डेका
ढकुवाखाना केंद्र
अनुक्रमांक : 817

पाँचवाँ स्थान
डिम्पी डेका
डाँही केंद्र
अनुक्रमांक : 1582

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 50/-	प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 550/-	वार्षिक	: रु. 1,000/-
दो वर्षों के लिए	: रु. 1,000/-	दो वर्षों के लिए	: रु. 2,000/-
पाँच वर्षों के लिए	: रु. 2,500/-	पाँच वर्षों के लिए	: रु. 4,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

समिति के 84वें स्थापना दिवस समारोह की एक झलक

पाँच मंजिले **महारजत जयंती भवन** का विधिवत् फीता काटकर उद्घाटन करते हुए माननीय विधायक श्री सिद्धार्थ भट्टाचार्य।

स्थापना दिवस समारोह पर डॉ. नवकांत शर्मा द्वारा रचित **माँ कामाख्या** और प्रवीण फुकन द्वारा रचित व छगनलाल जैन द्वारा अनूदित नाटक **लाचित बरफुकन** के द्वितीय संस्करण का लोकार्पण करते हुए।

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 30th November, 2022 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

नवनिर्मित महारजत जयंती भवन

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com